हेमचंद्र और उनका त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित

जैन रामायण

-डॉ. विष्णुदास वैष्णव

हेमचंद्र और उनका त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित
(जैन रामायण)

हेमचंद्र और उनका त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित
(जैन रामायण)

डॉ. विष्णुदास वैष्णव
एम.ए., पीएच.डी.
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग (स्नातक, स्नातकोत्तर)
श्री अंबाजी आर्ट्स कॉलेज
कुंभारिया - अंबाजी
बनासकाँठा (उत्तर गुजरात)

शान्ति प्रकाशन

© : लेखकाधीश

प्रकाशक : शान्ति प्रकाशन
1780, न्यू हाउसिंग, सेक्टर-१.
दिल्ली बाइपास, रोहतक-124001
(हरियाणा)

प्रकाशन वर्ष : 2001

मूल्य : रु. 500/-

HEMCHANDRA AUR UNAKA
TRISHASHTISHALAKAPURUSHACHARITA
(JAIN RAMAYANA)
--*Dr. VISHNUDAS VAISHANAVA*
Rs. 500/-

समर्पण

तुम उड़ चली, ले स्वप्न संग
दे नवल शक्ति, नव रंग-ढंग
वह नवल सृजन का स्वप्न आज साकार।
लो, तुम्हें समर्पित है, करो स्वीकार ॥

शुभासंशा

डॉ. विष्णुदास वैष्णव का शोध-कार्य - ''त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित (जैन रामायण) और मानस का तुलनात्मक अध्ययन'' आज जब संशोधित रुप में ''हेमचंद्र एवं उनका त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित (जैन रामायण)'' प्रकाशित हो रहा है तो मैं अपनी समस्त हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हुआ परम हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ।

डॉ. वैष्णव का यह शोध-विषय मौलिक एवं उपादेय है। सामग्री का विभाजन ऐतिहासिक ढंग से करके लेखक ने प्रतिपादन शैली को मौलिक एवं सरल बना दिया है। कृति की विशेषता उसकी व्यवस्था एवं अध्यायीकरण में भी परिलक्षित होती है। प्रस्तुत कृति के सात अध्यायों के संबंधीकरण से यह बात सिद्ध होती है।

प्रथम अध्याय में भारतीय रामकाव्य परंपरा में संस्कृत, प्राकृत व उपभ्रंश में उपलब्ध जैन रामकथाओं के वैविध्यपूर्ण पहलुओं का निरुपण किया गया है, उससे कृति की सम्यक् पृष्ठभूमि व प्रतिपादन की भूमिका प्रस्तुत हुई है।

दूसरे अध्यय में हेमचंद्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर दृष्टिपात किया गया है। इसमें हेमचंद्राचार्य के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं के निर्देश के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व के विविध पक्षों को भी रेखांकित किया गया है जिससे आगे के अध्यायों के अनुशीलन की सुयोग्य पीठिका निर्मित हो गई है।

तृतीय अध्याय दर्शन, भक्ति एवं अध्यात्म से संबंधित है। चतुर्थ अध्याय में वस्तु भावादि की गवेषणात्मक मीमांसा है। कृति का यह भाग बड़ा महत्वपूर्ण एवं शोध का सुमेरु है। प्रधान पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का निरुपण एवं कथावस्तु के विविध महत्वपूर्ण अंगों के सूत्रों के तारतम्य को अक्षुण्य रखकर जो समीक्षा प्रस्तुत हुई है, वह सराहनीय है तथा नवीन उद्भावनाएँ भारतीय रामकथा साहित्य में लेखक का मौलिक प्रदान है।

भाषा-शैली प्रौढ-प्रांजल एवं स्तरीय है। यह मौलिक, बोधवर्धक, उपेक्षित तथापि महत्वपूर्ण कृति जैन रामकथा परंपरा को समुचित रुप में समझने तथा भावात्मक एकता के लिए भी महत्वपूर्ण है। इस शोध-कार्य से ज्ञान की सीमाओं का विकास तथा रामकाव्य के अध्यापन के कई नये परिप्रेश्य उद्घाटित होते हैं।

पुनः हार्दिक शुभकामनाओं एवं बधाई के साथ

डॉ. हरीश शुक्ल
निवृत्त आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
आर्ट्स कॉलेज
पाटण (उ.गुज.)

निवेदन

'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित (जैन रामायण) और मानस का तुलनात्मक अध्ययन' शोध प्रबंध की स्वीकृति पर उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय ने १९९२ में मुझे पीएच.डी. की उपाधि प्रदान करने के साथ-साथ इस विश्वविद्यालय के प्रथम शोध-छात्र होने का गौरव भी दिया। शोध-ग्रंथ की आत्मा ''जैन रामायण'' को लोकाभिमुख बनाने के लिए मैंने 'हेमचंद्र एवं उनका त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित ''जैन रामायण'' पुस्तकाकार रुप में प्रस्तुत किया है। कृति में उत्तर गुजरात के प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचंद्र के जीवन-वृत के साथ-साथ उनका संपूर्ण कृतित्व विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया गया है।

हेमचंद्राचार्य की कृतियों में जैन रामायण (संस्कृत) का विशेष महत्त्व है। ब्राह्मण परंपरा के रामकथा-काव्यों में जो स्थान मानस का है, वही स्थान श्रमण परंपरा के रामकथा-काव्यों में हेमचंद्रकृत त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित (जैन रामायण) पर्व 7 का है। हेमचंद्र के पूर्व की जैन रामकथा परंपरा में जिनसेनकृत आदिपुराण, गुणभद्रकृत उत्तरपुराण, पुष्पदंतकृत महापुराण, जिनदासकृत रामायण, पद्मसेन विजय्गणिकृत रामचरित, सोमसेनकृत रामचरित तथा हरिषेणकृत कथाकोष प्रकरण प्रमुख ग्रंथों की श्रेणी में आते हैं। विमलसूरि (पउमचारिउ), रविणेश (पद्मपुराण) तथा स्वयंभू (रामायण) में भी इसी परंपरा को विकसित किया है।

अनेक जैन कवियों की रामकथात्मक रचनाओं के बीच हेमचंद्रकृत जैन रामायण अलग छवि लिए हुए है। आज जैन साधु अपने मुमुक्षुओं को जिस रामकथा का पान करवाते हैं, वह है हेमचंद्रकृत त्रिषष्टिशलाकापुरुष पर्व ७ अर्थात् जैन रामायण।

ग्रंथ में जैन रामकाव्य परंपरा, हेमचंद्राचार्य का व्यक्तित्व एवं कृतित्व, जैन दर्शन, वस्तु वर्णन, कलापक्ष एवं जैन रामायण की नवीन उद्भावनाओं को उद्घाटित किया गया है। कृति के अध्याय छः का विशेष महत्त्व है क्योंकि इसमें ऐसे प्रसंगों की विवेचना है जो प्रसंग ब्राह्मण रामकथा परंपरा से जैन रामकथा परंपरा को अलग साबित करते हैं। जैन रामकथात्मक के भव्य प्रसंग अजैन पाठकों को आश्चर्य में डालते हुए नये चिंतन व नयी शोध के लिए प्रेरित करते हैं। इन नव प्रसंगों की जानकारी ब्राह्मण परंपरानुगामी पाठकों के लिए कृति के आकर्षण का कारण बनेगी। संस्कृत भाषा के इस हेमचंद्रकृत ग्रंथ पर हिन्दी भाषा में कोई शोध कार्य अब तक प्राप्त नहीं है, ऐसा मेरा विश्वास व विद्वानों का मंतव्य है।

मैने अंतिम अध्याय में, वर्तमान समय में रामद्वारा प्रस्थापित आदर्शों की आवश्यकता पर बल दिया है। रामकथा किसी भी भाषा या परंपरा में क्यों न हो, उसमें निहित आदर्शों की वर्तमान भटके मानव के चरित्र को उज्जवल बनाने के

लिए अत्यंत आवश्यकता है। रामकथात्मक आदर्श कलियुगी डूबते मानव की पतवार है।

यह पुस्तक शोध-ग्रंथ से संशोधित (संक्षिप्त) हेमचंद्र की कृति जैन रामायण को सरल भाषा में जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास है। मूल शोध-ग्रंथ हेमचन्द्रकृत त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित (जैन रामायण) एवं तुलसी के मानस का तुलनात्मक अध्ययन' शीघ्र प्रकाशित होगा ऐसा मेरा विश्वास है। विद्यार्थियों तथा पाठकों की सुविधा के लिए मैंने इसे अलग पुस्तकाकार प्रदान करने का प्रयत्न किया है।

शोध-प्रवंध के मार्गदर्शक परमादरणीय डॉ. हरीश गजानन शुक्ल (निवृत्त आचार्य, आर्ट्स एवं सायंस कॉलेज, पाटण) के प्रति मै नतमस्तक हूँ जिनके सफल मार्गदर्शन एवं आत्मिक स्नेह के कारण मुझे सफलता प्राप्त हुई। डॉ. नरसिंह गजानन साठे (निवृत्त प्रोफेसर, पूना विश्वविद्यालय), श्री रमानाथ त्रिपाठी (रीडर, दिल्ली विश्वविद्यालय), डॉ. रामचरण महेन्द्र (कोटा) तथा पूज्य मुनि श्री कीर्तिरत्न विजयजी ने समय-समय पर मेरा मार्ग प्रशस्त किया, एतदर्श मैं आप सभी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

डॉ. हुसेन खाँ शेख (प्रधानाचार्य), श्री कोजाराम बिश्नोई (उप जिल्ला शिक्षाधिकारी), श्री रतनलालजी परमार (निवृत्त उपाचार्य), श्री पूनमचंदजी जैन (निवृत्त उपाचार्य) एवं श्री कल्याणसिंह चौहान (पुस्तकालयाध्यक्ष) जैसे आत्मिकों ने मुझे आत्मविश्वास व उत्साह से भरा-भरा रखा अत: मैं आप सभी का आभार व्यक्त करता हूँ।

इस कार्य में मेरे सखा-भातृ जावतसिंह राव का व्यक्तिगत सहयोग मात्र अनुभवजन्य है। ईश्वर यही भाव बनायें रखे ऐसी प्रार्थना है। अग्रज श्री राधेश्यामजी के प्रति नमन करता हूँ जिन्होंने स्वयं पारिवारिक झंझावतों को झेलकर मुझे प्रेरणा व प्यार दिया। अनुज ओम, जो मेरी हर सफलता पर मौन मुष्कान बिखेरता हुआ मुझ में प्रेरणा सींचन करता रहा उसे भुलाया नहीं जा सकता।

अंत में शांति प्रकाशन के संचालक भाई श्री तेजपाल जी,कु. संगीता आर. भोगले एवं कु. आशा एस. दातनिया के सहयोग के कारण यह रचना पाठकों के हाथों में है, मैं इनका आभार मानता हूँ। मुझे विश्वास है कि मेरा यह लघु प्रयास हिन्दी रामकथात्मक साहित्य के अध्ययन में नई दिशाएँ उद्घाटित करेगा।

अंबाजी

डॉ. विष्णुदास वैष्णव
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
(स्नातक, स्नातकोत्तर)
श्री अंबाजी आर्टस् कॉलेज
अंबाजी (उ. गुज.)

अनुक्रम

शुभाशंसा 9-10

निवेदन 11-12

1 जैन रामकथा परंपरा 13-22

जैन रामकथा परंपरा/13

जैन रामकथा परंपरा में त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित पर्व-7 (जैन रामायण) का स्थान/18

संदर्भ-सूची/21

2 आचार्य हेमचंद्र का व्यक्तित्व एवं कृतित्व 23-52

जीवन/23

कृतित्व/33

हेमचंद्र की प्रमुख कृतियों का संक्षिप्त परिचय/35

संदर्भ-सूची/47

3 जैन रामायण का दर्शन 53-67

दर्शन क्या है /53

दर्शन और जीवन/54

जैन दर्शन/55

जैन रामायण में दर्शन/58

संदर्भ-सूची/64

4 जैन रामायण की कथावस्तु 68-130

उपोद्घात/68

रावण : जन्म, शिक्षा एवं दिग्विजय/69

राम : जन्म, शिक्षा-दिक्षा एवं किशोरावस्था का पराक्रम/71

धनुष प्रकरण एवं राम-सीता-विवाह /73

राम के तिलक का आयोजन और उनका अयोध्या से प्रस्थान/74

राम का परिभ्रमण (अयोध्या से चित्रकूट तक)/79

राम का परिभ्रमण /81

रावण द्वारा सीता का अपहरण/85

राम-लक्ष्मण द्वारा सीता की खोज एवं वानरों से मित्रता/89

सीता की खोज करने में वानरों का योगदान/91

राम-रावण युद्ध और रावण वध/94

राम आदि का अयोध्या में आगमन/101

राम का राज्य स्वीकार करना/102

परवर्ती घटनाएँ/103

संदर्भ-सूची /112

5 त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित पर्व-7 (जैन रामायण)का काव्य सौष्ठव 131-187
रस व्यंजन/131
छंद विधान/139
अलंकार विधान/142
वर्णन कौशल/147
भाषा/155
संवाद/159
काव्य-रूप/163
सूक्तियाँ/169
संदर्भ-सूची/172
6 त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित पर्व-7 (जैन रामायण) की नवीन उद्भावनाएँ 188-206
रावण के जन्म से लेकर यौवनवय तक के अनेक प्रसंग/189
हनुमान की माता अंजना का भावपूर्ण चित्रण/189
हनुमान का हजारों कन्याओं से विवाह एवं रतिक्रिड़ा-चित्रण/191
राम के पूर्वजों का भव्य इतिहास/192
दशरथ की मगध-विजय/194
राम-वनवास के नव्य प्रसंग/194
राम का ससैन्य, सेतु निर्माण कर नहीं, आकाशमार्ग से लंका गमन/196
लक्ष्मण को मेघनाद ने नहीं, स्वयं रावण ने मूर्छित किया/196
लक्ष्मण की मूर्छा, हनुमान द्वारा संजीवनी लाने से नहीं, विशल्या के जल स्पर्श से दूर हुई/196
रावण का वध राम ने नहीं लक्ष्मण ने किया/196
राम का सीता समेत रावण के महलों में छः माह तक निवास करना/197
अयोध्या आगमन पर प्रथम लक्ष्मण का राज्याभिषेक/197
लक्ष्मण की सोलह हजार तथा राम की भी अनेक रानियों का होना/198
सीता का स्वयं के हाथों केश उखाड़ कर जैन धर्म में दीक्षित होना/198
रामकथा के समस्त पात्रों का जैनधर्म में दीक्षित होना/199
संदर्भ-सूची/200
7 उपसंहार 207-213
संदर्भ-ग्रंथ-सूची/212

1

जैन रामकाव्य परंपरा

प्राचीन जैन साहित्य में रामकथा के सूत्र एवं विकास

जैन रामकथा परंपरा : ''रामकथा का मूल स्रोत क्या है तथा यह कथा कितनी पुरानी है, इन प्रश्नों का समाधान अभी तक नहीं हो पाया है। इतना सत्य है कि बुद्ध और महावीर के समय जनता में राम के प्रति अत्यंत आदर का भाव था, जिसका प्रमाण यह है कि जातकों के अनुसार बुद्ध अपने पूर्वजन्म में एक बार राम होकर भी जन्मे थे। इसी प्रकार जैनग्रंथों में तिरसठ महापुरुषों में राम और लक्ष्मण की भी गिनती की जाती है।[1]''

दिनकर के उपर्युक्त शब्द यह साबित करते हैं कि जैन धर्मान्तर्गत रामकथा को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। तिरसठ महापुरुषों में से ''राम'' भी एक है। आदि कवि वाल्मीकि ने जिस रामायण कथा को जगत के समक्ष प्रस्तुत किया था उसके प्रभाव से कोई धर्म या संस्कृति बच न सकी। सभी धर्मों की साहित्यिक कृतियों में रामकथा को शीर्षस्थान मिला है। आश्चर्य है कि इस्लाम के कवि अनुयायिओं ने भी रामकथा पर छुटपुट रचनाएँ लिखी हैं।

डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने डॉ. शुक्ल के शोध ग्रंथ की सम्मति में लिखा है —''भारतीय बाङ्मय में रामकथा से अधिक व्यापक दूसरी कोई कथा नहीं है। रामायण को उपजीव्य बनाकर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी तथा अन्य भारतीय (क्षेत्रीय) भाषाओं में अनेक काव्य, नाटक आदि लिखे गये हैं। जिन धर्मों में राम को अवतार नहीं माना गया और ईश्वर का स्थान नहीं दिया गया उनमें भी रामकथा के आधार पर काव्यादि का प्रणयन हुआ।

विशेषकर जैन कवियों ने रामकथा के आधार पर प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत काव्य लिखे हैं।[2]''

''जैन साहित्य का अन्वेषण करने से ज्ञात होता है कि जैन धर्म उतना ही पुराना है जितना वैदिक धर्म।[3] मनु चौदह हुए, अंतिम मनु का नाम नाभिराम माना गया। नाभिराम के पुत्र थे ऋषभदेव, जिन्होंने जैन धर्म का प्रवर्तन किया। नेमिनाथ को कृष्ण का चचेरा भाई कहा गया है, अर्थात् कृष्ण बाइसवें तीर्थंकर थे, अत: कृष्ण से पूर्व इक्कीस तीर्थंकर और हो चुके थे। अगर यह सत्य है तो जैन धर्म की परंपरा कृष्ण से बहुत पूर्व कायम हो जाती है। तब हमें जैनों की साहित्य-परंपरा को भी अति प्राचीन मानने में संकोच नहीं करना चाहिए।''

ईसा से ६०० या ४०० वर्ष पूर्व वाल्मीकि ने रामायण की रचना द्वारा सर्वप्रथम रामकथा को जनसमाज के सम्मुख प्रस्तुत किया था।[4] रामकथा की बढ़ती ख्याति का लाभ बौद्धों एवं जैनों ने अपने-अपने ढंग से उठाने का प्रयास किया। ''रामकथा की बढ़ती ख्याति से जैन लोग भी अप्रभावित नहीं रहे। उन्होंने अपने सम्प्रदाय के अनुसार कथा में अनेक परिवर्तन कर डाले।'' जैन रामकथाएँ अप्रमाणिक एवं रामादि के चरित्र का पतन करने वाली है,[5] यह डॉ. त्रिपाठी का मत है, जो जैन रामकथाकारों पर कटु प्रहार करता है।

हम प्रारंभ में स्पष्ट कर चुके हैं कि जैन साहित्य की प्रारंभिक तीन भाषाएँ रहीं संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश। रामकथात्मक काव्यों की भाषा अधिकांशत: संस्कृत व अपभ्रंश रही। जैन रामकथा की प्रमुख विशेषता यह रही कि यह बौद्धों के समान सांकेतिक न होकर विस्तृत एवं संपूर्ण कथासाहित्य में मिलती है। जैन धर्म के तिरसठ महापुरुषों में राम, लक्ष्मण एवं रावण क्रमश: आठवें बलदेव, वासुदेव एवं प्रतिवासुदेव घोषित हैं। जैन रामकथाओं में राक्षस व वानर दोनों विद्याधर-वंशीय शाखाएँ हैं। विभिन्न प्रकार की विद्याओं पर अधिकार होने से इन्हें विद्याधर की उपाधि से विभूषित किया गया है।

''हस्तिनाताड्यमानेऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्'' जैसी उक्तियों ने साम्प्रदायिकता की बीमारी को तो बढाया ही, साथ में अपार ज्ञानराशि के संचित कोषों के लाभ से भी जिज्ञासुओं को वंचित रखा। कुछ हद तक इस कृत्य में स्वयं जैन दोषी हैं। आज भी उनके साहित्य में असूर्यम्पश्य रखने की प्रवृत्ति दिखाई देती हो। हम आशा करें, औदार्य का आलोक प्रकीर्ण हो।

प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत तीनों में ''प्राकृत साहित्य की रचना अपेक्षाकृत लोकोन्मुखी वातावरण में हुई। प्राकृत जहां बोलचाल की भाषा थी वहाँ जैन मतावलम्बियों के धार्मिक प्रचार-प्रसार का साधन भी बन गयी।''[6] अपभ्रंश साहित्य की रचना सातवीं से बारहवीं शताब्दी तक होती रही और

उसकी कई विशेषताएं राजस्थानी तथा गुजराती साहित्य में मिल गयीं।[7] संस्कृत का प्रयोग चरितकाव्यों में अधिक रहा। ''चरितकाव्यों में अधिकतर संस्कृत की प्रचलित परंपराओं का ही प्रभाव ग्रहण किया। जैन कवियों द्वारा रचित प्रबंध काव्य के अंतर्गत कहा (कथा), चरिउ, चरित व पुराणादि मिलते हैं।''[8]

जैन रामकथात्मक ग्रंथों की रचना का उद्देश्य मर्यादा पुरुषोत्तम राम के औदात्य को अभिव्यक्त करने की अपेक्षा अपने धर्म की सैद्धान्तिक मान्यताओं के अनुकूल रामकाव्य की नयी भावभूमि प्रदान करना रहा है। [9] जैन धर्म के रामकथा ग्रंथों की रचना जैन धर्म की दार्शनिक व धार्मिक मान्यताओं की पृष्ठभूमि में हुई। रामकथा के अनेक प्रसंग भी इन ग्रंथों में जैन धर्म की पुष्टि के लिये परिवर्तित रुप में प्रस्तुत किये गये हैं। [10] अत: सिद्ध है कि जैन रामकथा का रुप आदि रामकथात्मक रुप से परिवर्तित ही है।

रामकथा को जैन धर्म के सांचे में ढालने का प्रथम प्रयास विमल सूरि ने अपने 'पउमचरियं' (तीसरी-चौथी शती) में किया था। जैन-महाराष्ट्री में लिखित इस ग्रंथ का संस्कृत रुपान्तर रविणेश ने ६०० ई. में किया।[11] विमलसूरि एवं गुणभद्र, दोनों धाराओं में विमलसूरि की धारा महत्त्वपूर्ण है।[12]

विमलसूरि की परंपरा : विमलसूरि ने पउमचरियं ग्रंथ की रचना की। इसका समय चौथी ई. शती माना जाता है।[13] विमलसूरि ने रामकाव्य में परंपरागत ब्राह्मणपरंपरानुसार कथा का सृजन किया है। इसकी भाषा जैन-महाराष्ट्री रही।

रविणेशकृत पद्मपुराण : जैन काव्यों में राम का नाम 'पद्म' है। राम वासुदेव हैं तथा रावण प्रतिवासुदेव है। विमलसूरि की परंपरा का अनुसरण करते हुए उनके पउमचरियं का संस्कृत रुपान्तरण आचार्य रविणेश ने किया।[14] यह रचना आठवी ई. शती की है।[15] डॉ. कामिल बुल्के ने रविणेश के पद्मपुराण के बारे में लिखा है कि ''इसकी समस्त रचना पउमचरियं का (विमलसूरि)'' पल्लवित छायानुवाद मात्र प्रतीत होता है।[16] इस ग्रंथ में वानरवंश की व्याख्या सविस्तार की गयी है। पद्मपुराण में बौद्धिक दर्शन सर्वत्र दिखायी पड़ता है। सभी असंभव तथा अतिमानुषीय घटनाओं की बौद्धिक व्याख्या इसमें की गयी।[17] पद्मपुराण की कथा छ: भागों में विभक्त है —(१) विधाधरकाण्ड, (२) रामसीता जन्म व विवाह, (३) वनगमन, (४) सीताहरण-खोज, (५) युद्ध एवं (६) उत्तरचरित।

रविणेश के पद्मचरित की कथा अधिकांशत: वाल्मीकि रामायण पर ही आधृत है।[18] परंतु सूक्ष्म दृष्टिपात करने से जो परिवर्तन दिखायी देते हैं वे निम्न लिखित हैं—

१. राक्षस, वानरादि को विधाधर मान उनकी वंशावली देना
२. बालि का रावण से साथ संघर्ष
३. रावण की भव्य विजयों का वर्णन
४. रावण का उदार चरित, रावण मंदिरों का उद्धारक
५. लक्ष्मण का विवाह सैकड़ों रानियों से
६. हनुमान के अनेक विवाहों का वर्णन।
७. सीताहरण-खोज में लक्ष्मण द्वारा शंबूक का वध।
८. सुग्रीव द्वारा राम को अपनी तेरह कन्याएँ देना आदि।

(क) विमलसूरि परंपरा की रामकथात्मक प्राकृत रचनाएँ—
१. विमलसूरिकृत-पउमचरियं (प्रथम शताब्दी ई. से पूर्वी २१० ई.)
२. शीलाचार्यकृत-चउपनमहापुरिस चरिय (रामलक्ष्मण चरिय), ९वीं श. ई.
३. भद्रेश्वरकृत-कहाबली (रामायणम्), ११वीं श. ई.
४. भुवनतुंगसूरिकृत-सीयाचरिय तथा रामलक्ष्मण चरिय

(ख) विमलसूरि परंपरा की रामकथात्मक 'अपभ्रंश' रचनाएँ—
१. स्वयंभूदेवकृत - पउमचरिउ या रामायण पुराण (८वीं. श. ई.)
२. रइधूकृत - "पद्मपुराण अथवा बलभद्रपुराण '(१५वीं श. ई.)'

(ग) विमलसूरि परंपरा की रामकथात्मक 'संस्कृत रचनाएँ'—
१. जिनदासकृत "रामायण" (१५वीं ई. शती)
२. हेमचंद्रकृत योगशास्त्र की टीका के अंतर्गत सीतास्वयंवर रावण-कथानकम्
३. पद्मसेन विजयगणिकृत रामचरित (१६वीं ई. शती)
४. सोमदेवकृत रामचरित (१६वीं शती. ई.)
५. सोमप्रभकृत लघुत्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र
६. मेघविजय मणिवर कृत-लघु त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित (१७वी श. ई.)
७. हरिषेणकृत कथाकोष-प्रकरणान्तर्गत रामायणकथानकम् व सीताकथानकम्
८. आलोच्य कृति हेमचंद्रकृत त्रिषष्टि.-चरित (जैन रामायण) १२वीं शती, ई.
९. रामचंद्र मुमुक्षुकृत पुण्याश्रवकथा कोष व लवकुशकथा (१९०७ ई.)
१०. हरीभद्रकृत धूर्तायानम् (८वीं. शती. ई.)
११. अमितगतिकृत धर्मपरीक्षा (११वीं. शती, ई.)
१२. शत्रुंजय महात्म्य (१२वीं शती, ई.)

उपर्युक्त ग्रंथों के अलावा भी "जिनरत्न कोष" में विमलसूरि की परंपरा के कई रामकथात्मक ग्रंथों का उल्लेख आया हुआ है।

गुणभद्र की परंपरा : जैनाचार्य जिनसेन ने आदिपुराण की रचना की। परंतु इस कृति के पूर्ण होने से पूर्व ही जिनसेनाचार्य चल बसे। इस कार्य को पूरा किया कर्नाटक निवासी जिनसेना के शिष्य गुणभद्र ने। इन्होंने आदिपुराण को पूरा कर उत्तरपुराण की रचना की। गुणभद्र परंपरा की मुख्य

बात यह है कि सीता रावण की पुत्री है।[19] वह मंदोदरी की औरस पुत्री है। सीता जन्म का यह रुप पहले-पहल संघदास के वसुदेव हुंडी में आया हुआ है।[20] गुणभद्राचार्य के उत्तरपुराण (९वीं शती) में कथा का दूसरा रुप मिलता है। ''विमलसूरि की परंपरा में रामकथा परंपरानुकूल है परंतु गुणभद्राचार्य की परंपरा में'' उत्तरपुराण में ब्राह्मण परंपरा से भिन्न जैन साम्प्रदायिकता का अनुकरण करके चली है।[21] आदिपुराण में प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ का चरित है। उत्तरपुराण में शेष तेइस तीर्थंकरों और अन्य शलाकापुरुषों का चरित आया है। आदिपुराण में बारह हजार श्लोक और सैंतालिस अध्याय हैं। ''इसमें से बयालिस पर्व पूरे और तैंतालिसवें पर्व के तीन श्लोक जिनसेन के एवं शेष चार पर्वों के सोलह सौ बीस श्लोक उनके शिष्य के हैं।''[22] इस प्रकार आदिपुराण के १०३८० श्लोक जिनसेनकृत हुए। गुणभद्र परमेश्वरकवि की रचनाओं पर निर्भर माने गये हैं।

उत्तरपुराण : उत्तरपुराण में राम को वाराणसी का राजा माना गया है। राम की माता सुबाला तथा लक्ष्मण की माता कैकेयी है। सीता की उत्पत्ति मंदोदरी के गर्भ से बताई गई हैं। इस ग्रंथ में भरत व शत्रुघ्न की माता का नाम नहीं दिया गया है। इस कृति में लंकादहन व सीता-त्याग प्रसंग अप्राप्य है। लक्ष्मण को सौलह हजार रानियों का पति तथा राम को आठ हजार रानियों का पति बताया गया है। सीता को यहाँ आठ पुत्रों की माता बतायी गयी है। उत्तरपुराण की यह कथा श्वेताम्बर संप्रदाय में प्रचलित नहीं है।

महापुराण : गुणभद्र की परंपरा का अनुसरण पुष्पदंत ने अपनी महापुराण में किया। महापुराण का अन्य नाम ''पउमचरिउ'' या पद्मपुराण भी है। पुष्पदंत ने अपनी रामकथा को रामायण कहा है। अर्थात् वाल्मीकि रामायण के अनुकरण की आग्रहशीलता प्रतीत होती है।[23] महापुराण की रचना दसवीं शती ई. में हुई। ग्रंथ के ''उत्तरपुराण खंड में ६९वीं संधि से ७९वीं संधि तक रामकथा वर्णित है। चामुंडराय के अनुसार इस परंपरा के नाम से ग्रंथ लिखने वाले कवि हैं— कूचिभट्टारक, नन्दिमुनीश्वर, कविपरमेश्वर, जिनसेन और गुणभद्र। अधिकतर जैन रामकथाओं में गुणभद्र की रामकथा-परंपरा ही मिलती है। गुणभद्र की परंपरा भी संस्कृत, प्राकृत, कन्नड आदि में फली-फूली जिसे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

<u>संस्कृत</u> १. गुणभद्रकृत ''उत्तरपुराण'' (नवीं श. ई.)

२. कृष्णदासकविकृत ''पुण्यचंद्रोदयपुराण'' (१०वीं श. ई.)

<u>प्राकृत</u> १. पुष्पदंतकृत ''तिसरही महापुरिस-गुणालंकार'' (११वीं श. ई.)

<u>कन्नड़</u> १. चामुडरायकृत त्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराण (११वीं श. ई.)

२. बंधुवर्माकृत ''जीवनसंबोधन'' (१२०० ई.)

३. नागराजकृत - पुण्याश्रवकथासार (१३३१ ई.)

प्रश्न यह उठता है कि विमलसूरि के बाद की परंपरा होने पर भी गुणभद्र ने विमलसूरि व रविषेश की कथाओं का अनुकरण क्यों नहीं किया। इस प्रश्न का उत्तर नाथूराम प्रेमी ने इस प्रकार दिया है— ''इन दोनों धाराओं में गुरु-परंपरा भेद भी हो सकता है। एक परंपरा ने एक धारा को अपनाया, दूसरी ने दूसरी को। ऐसी दशा में गुणभद्रस्वामी ने ''पउमचरिय'' की धारा से परिचित होने पर भी उस ख्याल से उसका अनुकरण किया होगा कि यह हमारी गुरु-परंपरा की नहीं है। यह भी संभव हो सकता है कि उन्हें ''पउमचरिय'' के कथानक की अपेक्षा यह कथानक अच्छा मालूम हुआ हो।''[24]

सारांशत: विमलसूरि ने जैनरामकथा परंपरा का सूत्रपात कर जो स्रोतवाहिनी प्रवाहित की थी, आज भी उसका छलछलाता नीर जनमानस के कंठ को गीला कर रहा है। इतना अवश्य है कि भारतीय ब्राह्मण परंपरा जैन-श्रमण परंपरा के इस रामकथा साहित्य को शत-प्रतिशत मान्यता देने को तैयार नहीं है। इसके कुछ वास्तविक कारण भी हैं जैसा कि डॉ. रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है— ''रामकथा की बढ़ती ख्याति का लाभ बौद्ध एवं जैनों ने अपने ढंग से उठाया। यह अनुरुप कथानक जैन धर्म के प्रचार के लिए ग्रहण किया गया अन्यथा वाल्मीकि व तुलसी की कथा पर्याप्त थी।[25] ब्राह्मण परंपरा की रामकथा को संशोधित कर उसे अपने धर्म के अनुरुप आयाम देकर जैन कवियों ने मूलकथा को नया मोड़ दिया।''

जैन रामकथा परंपरा में त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व-७ (जैन रामायण) का स्थान : ब्राह्मण परंपरा में रामकाव्य के अनेक ग्रंथरत्न उपलब्ध होने के बावजूद भी तुलसी के मानस को जिस आसन पर आरुढ़ किया है वह स्थान सर्वोच्च है। जैन परंपरा में भी इसी प्रकार रामकथात्मक अनेक ग्रंथों की रचना होने के पश्चात् भी जो स्थान जैन रामायण (हेमचंद्र) ने प्राप्त किया है वह दूसरों के लिए अप्राप्य है। वैसे जैन धार्मिक साहित्य पर संप्रदायवाद का आरोप लगाया जाता रहा है। जैनेत्तर साहित्यकारों के अनुसार जैन धर्मग्रंथों को धर्मानुसार ढाल दिया गया एवं स्वीकृत सिद्धांतों के अनुसार जीवन बिताने का उपदेश दिया गया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं— ''*स्वभावत:* ही इसमें जैन धर्म की महिमा बताई गई हैं और उस धर्म के स्वीकृत सिद्धांतों के अनुसार जीवन बिताने का उपदेश दिया गया है परंतु इस कारण से इन पुस्तकों का महत्त्व कम नहीं होता। परवर्ती हिन्दी साहित्य के काव्यरुप अध्ययन के लिए ये पुस्तकें सहायक हैं''।[26] धार्मिक ग्रंथों पर दृष्टि डालते हुए आचार्य द्विवेदी लिखते हैं— ''उपदेश विषयक इन रचनाओं को, जिसमें केवल सूखा धर्मोपदेश मात्र लिखा गया है, साहित्यिक विवेचना के योग्य नहीं समझना उचित ही है, परंतु ऊपर जिस सामग्री की चर्चा की गई है उसमें कई रचनाएँ ऐसी हैं जो धार्मिक तो हैं किंतु उनमें साहित्यिक सरसता बनाए रखने का पूरा प्रयास है। धर्म

चरित आदि का एक साथ ज्ञान होता है।[34] जैन रामायण में हेमचंद्र ने स्थान-स्थान पर व्यावहारिक ज्ञानका उपदेश देकर इस कृति के महत्त्व को बढ़ा दिया है। धार्मिक दृष्टि से यह कितना उपयोगी है इसका प्रमाण त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित की प्रस्तावना में लिखे ये शब्द हैं— ''इस ग्रंथ के मूल दस भाग हैं। इसमें सर्व सिद्धांतों का रहस्य छिपा है। अलग-अलग उपदेशों में नया स्वरुप, क्षेत्रसमास, जीवविचार, कर्मस्वरुप, आत्मा का अस्तित्व, वैराग्य, क्षणभंगुर जीवन एवं ज्ञान के सभी विषय सरल एवं आकर्षक भाषा में हेमचंद्र ने समन्वित किये हैं।[35]''

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित (जैन रामायण) में भक्ति एवं चरित्र का उत्कृष्ट समन्वय है अर्थात् इस में चरित्र की भी भक्ति की गई हैं। उनका आराध्य दर्शन व ज्ञान तो हैं ही, अलौकिक चरित्रों का वर्णन भी हेमचंद्र की कृतियों को अलंकृत करता रहा है। जैन रामायण की विशेषताओं पर मुनिराज श्री तरुणविजय जी ने लिखा है— ''रामायण अद्‌भुत प्रेरणादायक एवं आदर्शभूत अद्वितीय ग्रंथरत्न हैं। मानव उसमें चित्रित उच्च आदर्श को दृष्टि में रखकर प्राप्त प्रेरणा को जीवन साकार बनाने के लिए ग्रहण करे तो उसका जीवन धन्य-धन्य और कृतकृत्य हुए बिना नहीं रहता।[36]''

आगे लिखते हैं— ''जीवन को कैसे जिया जाता है। राज्य वा कुटुम्ब का पालन पोषण कैसे होता हैं। मानव जीवन के एकमात्र ध्येय मोक्षप्राप्ति को अनासक्तभाव व त्यागभाव के लिये किस प्रकार पुरुषार्थ किया जाय, आदि अनेक भावी प्रश्नों का समाधान व मार्गदर्शन रामायण द्वारा मिलता है।[37] हिन्दुस्थान का धनाढ्य वर्ग हैं जैन समाज। आज इस वैज्ञानिक युग में बाह्य सुख को प्राप्त करने के अनेक साधन हैं। हम मौलिक रुप से समृद्ध हैं परन्तु आज हमारे पास आंतरिक शांति, श्रद्धा, सद्‌भावना एवं आत्मिक बल की कमी है। उसकी प्राप्ति का एकमात्र साधन हैं रामायण। संकीर्ण विचारों के लोग जहां ब्राह्मणवाद की आलोचना करते हैं उनके लिए यह जैन रामायण रामबाण औषधि है। वे लोग इसे अपनी (जैनों की) रामायण समझकर सुनते हैं एवं धर्मलाभ प्राप्त करते हैं। जीवन के वास्तविक संस्कारों का शिक्षणालय है— रामायण की कथा। मुनि जी के अनुसार रामायण जिस तरह रामचंद्र भगवान के जीवन की आदर्श रीति, नीति और पद्धति का सच्चा ज्ञान देती हैं उसी प्रकार जीवन की अनेक समस्याओं का समाधान करने में भी सहायता देती है।[38] वे लिखते हैं— ''अनेक संतों और पंडितों ने रामायण की रचना की है, इन सब में कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यकृत यह रामायण अनोखी छाप छोड़ जाती है।''[39]

आचार्य हेमचंद्र ने अनेक कृतियों की रचना की। विदेशी लेखकों के साथ-साथ भारतीय साहित्यविदोंने अनेक कृतियों पर टीकाएँ प्रस्तुत की है।

चरित आदि का एक साथ ज्ञान होता है।[34] जैन रामायण में हेमचंद्र ने स्थान-स्थान पर व्यावहारिक ज्ञानका उपदेश देकर इस कृति के महत्त्व को बढ़ा दिया है। धार्मिक दृष्टि से यह कितना उपयोगी है इसका प्रमाण त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित की प्रस्तावना में लिखे ये शब्द हैं— "इस ग्रंथ के मूल दस भाग हैं। इसमें सर्व सिद्धांतों का रहस्य छिपा है। अलग-अलग उपदेशों में नया स्वरुप, क्षेत्रसमास, जीवविचार, कर्मस्वरुप, आत्मा का अस्तित्व, वैराग्य, क्षणभंगुर जीवन एवं ज्ञान के सभी विषय सरल एवं आकर्षक भाषा में हेमचंद्र ने समन्वित किये हैं।[35]"

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित (जैन रामायण) में भक्ति एवं चरित्र का उत्कृष्ट समन्वय है अर्थात् इस में चरित्र की भी भक्ति की गई है। उनका आराध्य दर्शन व ज्ञान तो हैं ही, अलौकिक चरित्रों का वर्णन भी हेमचंद्र की कृतियों को अलंकृत करता रहा है। जैन रामायण की विशेषताओं पर मुनिराज श्री तरुणविजय जी ने लिखा है— "रामायण अद्‌भुत प्रेरणादायक एवं आदर्शभूत अद्वितीय ग्रंथरत्न है। मानव उसमें चित्रित उच्च आदर्श को दृष्टि में रखकर प्राप्त प्रेरणा को जीवन साकार बनाने के लिए ग्रहण करे तो उसका जीवन धन्य-धन्य और कृतकृत्य हुए बिना नहीं रहता।[36]"

आगे लिखते हैं— "जीवन को कैसे जिया जाता है। राज्य वा कुटुम्ब का पालन पोषण कैसे होता है। मानव जीवन के एकमात्र ध्येय मोक्षप्राप्ति को अनासक्तभाव व त्यागभाव के लिये किस प्रकार पुरुषार्थ किया जाय, आदि अनेक भावी प्रश्नों का समाधान व मार्गदर्शन रामायण द्वारा मिलता है।[37] हिन्दुस्थान का धनाढ्य वर्ग है जैन समाज। आज इस वैज्ञानिक युग में बाह्य सुख को प्राप्त करने के अनेक साधन हैं। हम मौलिक रुप से समृद्ध हैं परन्तु आज हमारे पास आंतरिक शांति, श्रद्धा, सद्‌भावना एवं आत्मिक बल की कमी है। उसकी प्राप्ति का एकमात्र साधन है रामायण। संकीर्ण विचारों के लोग जहां ब्राह्मणवाद की आलोचना करते हैं उनके लिए यह जैन रामायण रामबाण औषधि है। वे लोग इसे अपनी (जैनों की) रामायण समझकर सुनते हैं एवं धर्मलाभ प्राप्त करते हैं। जीवन के वास्तविक संस्कारों का शिक्षणालय है— रामायण की कथा। मुनि जी के अनुसार रामायण जिस तरह रामचंद्र भगवान के जीवन की आदर्श रीति, नीति और पद्धति का सच्चा ज्ञान देती है उसी प्रकार जीवन की अनेक समस्याओं का समाधान करने में भी सहायता देती है।[38] वे लिखते हैं— "अनेक संतों और पंडितों ने रामायण की रचना की है, इन सब में कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यकृत यह रामायण अनोखी छाप छोड़ जाती है।"[39]

आचार्य हेमचंद्र ने अनेक कृतियों की रचना की। विदेशी लेखकों के साथ-साथ भारतीय साहित्यविदोंने अनेक कृतियों पर टीकाएँ प्रस्तुत की है।

आश्चर्य है कि त्रिष्टिशलाकापुरुष, पर्व ७ (जैन रामायण) पर अद्यतन अपेक्षित कार्य नहीं हुआ। इस संस्कृत की मूल कृति का हिन्दी अनुवाद आज भी अप्राप्य है। छुटपुट गुजराती भाषांतर अवश्य प्राप्त होते हैं। जर्मन लेखक डॉ. जी. वूलर ने भी अपनी पुस्तक "लाइफ ऑफ हेमचंद्र" में जैन रामायण का केवल नामोल्लेख ही किया है अधिक कुछ भी नहीं। शायद यह कृति उस समय उन्हें प्राप्त न हुई हो यह भी संभव है।[40] वास्तविकता यह है कि जैन रामकाव्य के संपूर्ण ग्रंथों में "जैन रामायण" नाम से जो कथा या कृति विख्यात है वह हेमचंद्रचार्यकृत त्रिषष्टिशलाकापुरुष, पर्व ७ में आई हुई रामकथा है। इस दृष्टि से जैन रामायण का महत्त्व सर्वोच्च हो जाता है। इसी कारण तो हेमचंद्र के काव्य का मूल्यांकन श्री विटरनीज, वरदाचारी एवं एस. के. डे ने उचित रुप से किया है।[41] त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित-जैन रामायण में कथा के प्रवाह के बीच-बीच में जैन धर्म के सिद्धांतों का आकर्षक रुप से प्रतिपादन किया गया है। कहीं-कहीं गूढ़ दार्शनिक तत्त्वों को काव्य रुप में प्रस्तुत करने के फलस्वरुप शैली में शिथिलता व दुरूहता आ गई है।[42]

फिर भी अध्ययन, मनन, एवं अनुशीलन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जैन रामायण में त्रैलोक्य का वर्णन है। इसमें परलोक, आत्मा, ईश्वर, कर्म, धर्म, सृष्टि आदि विषयों पर विशद् व्याख्या आई हुई है। दार्शनिक मान्यताओं का स्पष्ट सूक्ष्म विवेचन है। इतिहास, कथा एवं पौराणिक तथ्यों का यथेष्ट समावेश किया गया है। सृष्टि, विनाश, पुनःनिर्माण, देवता-वंश, मानव युग, राजाओं के वंश आदि पुराणीय लक्षण मिलते हैं अतः यह निश्चित रुप से महद् ग्रंथों की कोटि में आता है।

गुजरात-नरेश कुमारपाल की प्रार्थना पर लिखा गया यह भव्य ग्रंथ जैन रामकाव्य परंपरा में तो विशिष्टता लिए हुए है ही, साथ ही ब्राह्मण एवं श्रमण परंपरा को संयुक्त करने में सेतुवत् कार्य कर रहा है जिसकी आज के संदर्भ में महति आवश्यकता है।

: संदर्भ-सूची :

१. संस्कृति के चार अध्याय : दिनकर, पृ. १२९
२. जैनाचार्य रविणेशकृत पद्मपुराण और मानस : रमाकांत शुक्ल, सम्मति से (डॉ. विजयेन्द्र स्नातक)
३. संस्कृति के चार अध्याय : दिनकर, पृ. ८१
४. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ. ३४०
५. हिन्दी शोध - नये प्रयोग : डॉ. रमानाथ त्रिपाठी, पृ. ८१
६. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ. १२७
७. वही, पृ. १२८ ८. वही, पृ. १२७
९. वही, डॉ. विजयेन्द्र स्नातक का निबंध, पृ. १९७

१०. वही, पृ. ११७
११. हिन्दी शोध नये प्रयोग : डॉ. रमानाथ त्रिपाठी, पृ. ८१
१२. रामकथा : उत्पत्ति व विकास, फादर कामिल बुल्के, पृ. ६७
१३. रामकाव्य का स्वरुप व विकास: प्रेमचंद्र माहेश्वरी, पृ. २५
१४. रामकाव्य परंपरा - आविर्भाव व विकास : आशा भारती, पृ. ३३
१५. रामकाव्य स्वरुप और विकास : प्रेमचंद्र माहेश्वरी, पृ. २५
१६. रामकथा - उत्पत्ति एवं विकास : फादर कामिल बुल्के, पृ. ६८
१७. जैनाचार्य रविणेशकृत पद्मराज और तुलसीकृत मानस : डा. रमाकांत शुक्ल, वाणी परिषद, नयी दिल्ली।
१८. रामकाव्य परंपरा-आविर्भाव व विकास : आशाभारती, पृ. ३७
१९. रामकाव्य परंपरा - अविर्भाव व विकास : आशाभारती, पृ. ३५
२०. आचार्य रविणेशकृत पद्मपुराण व मानस : रमाकंत शुक्ल, पृ. ५७
२१. हिन्दी रामकाव्य का स्वरुप और विकास : प्रेमचंद्र माहेश्वरी, पृ. २५
२२. आचार्य रविणेशकृत पद्मपुराण व मानस : रमाकांत शुक्ल, पृ. ७
२३. महापुराण:६९/१/१-२, संपा.-पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी
२४. जैन साहित्य का इतिहास : नाथूलाल प्रेमी, पृ. २५२
२५. हिन्दी शोध - नये प्रयोग: डॉ. रमानाथ त्रिपाठी, पृ. ५२
२६. हिन्दी साहित्य का आदिकाल : हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. ५
२७. वही, पृ. १०
२८. डॉ. जेकोबी-स्थाविरावलीचरित, इन्ट्रोडक्शन, पृ. २४, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता
२९. आचार्य हेमचंद्र : डॉ. वि. भा. मुसलगांवकर, पृ. ५७
३०. स्थविरावलीचरित जेकोबी इन्ट्रोडक्शन पृ. १६
३१. लाइफ ऑफ हेमचंद्र : वुलर, पृ. ४८
३२. वही, ४८
३३. हेमसमीक्षा : मधुसूदन मोदी, पृ. २७८
३४. वही, पृ. २८३
३५. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित (गुजराती अनुवाद) पर्व, १ व २, प्रस्तावना, पृ. ३
३६. जैन रामायण (गुजराती व्याख्यान), मुनि तरुणविजय "आवेदक नूं निवेदन" से
३७. वही, "आवेदक नु निवेदन" से
३८. जैन रामायण (त्रिशुपुव. पर्व ७), मुनि तरुणविजय, प्रस्तावना से
३९. वही
४०. हेमचंद्राचार्य जीवन चिरत : कस्तूरमल बांठिया, पृ. २५
४१. आचार्य हेमचंद्र : डॉ. वि. भा. मुसलगांवकर पृ. ३६
४२. आचार्य हेमचंद्र : डॉ. वि. भा. मुसलगांवकर

2

आचार्य हेमचंद्र का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

जीवन : भारतवर्ष के प्राचीन विद्वानों में जैन श्वेताम्बराचार्य हेमचंद्रसूरि का अत्यंत उच्च स्थान है। संस्कृत साहित्य एवं विक्रमादित्य के इतिहास में जो स्थान कालिदास का है और हर्ष के दरबार में बाणभट्ट का है प्रायः वही स्थान ईसवी सन् की बारहवीं सदी के चालूक्यवंशी सुप्रसिद्ध गुर्जरनरेन्द्रशिरोमणि सिद्धराज जयसिंह के इतिहास में हेमचंद्र का है।[1] हेमचंद्र बहुमुखी साहित्य प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जैन धर्म के प्रचार में अपने देश में प्रमुख स्थान प्राप्त किया था।

भारतीय साहित्याचार्यों की प्रमुख विशेषता रही है कि उन्होंने अपने जीवन का कम से कमग्परिचय अपनी कृतियों में दिया है। हेमचंद्र के जीवन तथ्यों को ज्ञात करने में भी हमें निराशा ही हाथ लगती है, फिर भी शोधकर्ताओं ने अथक परिश्रम कर उनकी जीवनी को लेखबद्ध करने का प्रयास किया है। हेमचंद्र के प्रायः सभी ग्रंथों में यत्र तत्र अनेक बातें लिखी मिलती हैं। प्रामाणिक आधार ग्रंथों के बिना हेमचंद्र की जीवन की खोज का परिणाम विश्वसनीय नहीं हो सकता है। फिर भी इनकी सहायता से उनके जीवन संबंधी रुपरेखा तो कम से कम खींची ही जा सकती है। इसमें अवश्य ही कुछ महत्व की बातें छूट सकती हैं, परंतु वे हाल के आधारों से पूरी नहीं की जा सकतीं।[2]

हेमचंद्र महान् साधक, चिंतक व साहित्य सृजक थे। लोग उन्हें कलिकालसर्वज्ञ की संज्ञा से विभूषित करते हैं। वे महान जैनाचार्य तो थे ही,

साथ ही साथ समाज सुधारक, धर्माचार्य एवं अद्भुत प्रतिभा तथा सृजन क्षमता सम्पन्न मनीषी भी थे। अहिंसा के पुजारी हेमचंद्र ने समस्त गुर्जर भूमि को अहिंसामय बनाने का सफल प्रयास किया। गवेषणा एवं शोध के पश्चात् अब हेमचंद्र का जीवन, रचनाकाल, कृतियाँ तथा उनके जीवन की प्रमुख घटनाँए लगभग विवादशून्य हो चुकी हैं। जैन इतिहास उन्हें सम्हाल रहा है व संजोए हुए है। प्रभावचरित्र, प्रबंधचिंतामणि, प्रबंधकोश, कुमारपालचरित आदि अनेक ग्रंथों में हेमचंद्र के जीवन की जानकारी प्राप्त होती है।

अंत: साक्ष्य : संस्कृत-कवियों का जीवन चरित लिखना एक कठिन समस्या है। इन कवियों ने अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखा है।[3] उस युग के महापुरुषों एवं धर्मप्रचारकों के बारे में समकालीन तथा परवर्ती लेखकों ने अपनी जीवनी में प्रकाश डाला है। हेमचंद्र गुजरात के तत्कालीन प्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिंह एवं कुमारपाल के धर्म उपदेशक होने के नाते ऐतिहासिक लेखकों ने भी हेमचंद्र के चरित्र पर अपना मत प्रकट किया है। मुनि जिनविजय जी के अनुसार भारत के किसी प्राचीन ऐतिहासिक पुरुष के विषय में जितनी प्रमाणिक ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होती है, उसकी तुलना में हेमचंद्र विषयक सामग्री विपुलतर कही जा सकती है।[4] फिर भी आचार्य हेमचंद्र का जीवन चित्रित करने में वह सर्वथा अपूर्ण है।[5] वि. सं. १२४१ में श्री सोमप्रभसूरि ने "कुमारपाल प्रतिबोध" की रचना की। उसी समय में यशपाल ने "मोहराज पराजय" की रचना की। सोमप्रभसूरि एवं यशपाल दोनों हेमचंद्र के लघु वयस्क समकालीन थे अत: इन दोनों की रचनाएँ हेमचंद्र की जीवनकथा का मुख्य आधार मानी गयी है।[6] फिर भी कुछ अन्य ग्रंथ भी उपलब्ध हैं जिनसे हेमचंद्र की जीवनसामग्री को एकत्रित किया जा सकता है।

बाह्य साक्ष्य : हेमचंद्र ने अपने स्वरचित ग्रंथों में कहीं-कहीं अपने विषय में संकेत दिये हैं। अंत:साक्ष्यान्तर्गत निम्न ग्रंथ हैं[7] —

१. द्वयाश्रय महाकाव्य (संस्कृत व प्राकृत)
२. सिद्धहेमशब्दानुशासन प्रशस्ति
३. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित (महावीर चरित)

डॉ. वि. भा. मुसलगाँवकर ने बाह्य साक्ष्यान्तर्गत निम्न ग्रंथों को रखा है :

१. शतार्थकाव्य
२. कुमारपाल प्रतिबोध
३. मोहराज पराजय-मंत्री यशपाल-वि. सं. १२२८ से १२३२
४. पुरातन प्रबंध संग्रह— अज्ञात
५. प्रभावक चरित— श्री प्रभाचंद्रसूरि, वि. सं. १३३४
६. प्रबंध चिंतामणि— श्री मेरूतुंगाचार्य, वि. सं. १३६१
७. प्रबंध कोश— श्री राजेशेखरसूरि, वि. सं. १४०५

८. कुमारपाल प्रबंध— श्री उपाध्याय जिनमंडल, वि. सं. १३९२

९. कुमारपाल प्रतिबोध प्रबंध— श्री जयसिंह सूरि, वि. सं. १४२२

१०. कुमारपाल चरितम्— श्री जयसिंह सूरि, वि. सं. १४२२

११. विविधतीर्थ कल्प— श्री जिनप्रभ सूरि, वि. सं. १३८९

१२. रसमाला— श्री अलेक्जेन्डर तथा किन्लांक फार्ब्स, वि. सं. १८७८

१३. लाइफ ऑफ हेमचंद — डॉ. बूलर, ई. सन् १८८९।७

"लाईफ ऑफ हेमचंद्र" आधुनिक युग की आधार सामग्री है जिसे जर्मन विद्वान डॉ. वूलर ने वियना में लिखा था। इस कृति की भाषा जर्मन है। जर्मन भाषा में प्रकाशित होने के पश्चात् ई. सं. १९३६ में डॉ. मणिलाल पटेल ने इसका अंग्रेजी अनुवाद किया। अंग्रेजी में सिन्धी जैन ज्ञानपीठ, विश्वभारती, शांतिनिकेतन से प्रकाशित होने के बाद ई. सन् १९६७ में कस्तूरमल बांठिया ने इसका हिन्दी अनुवाद किया। हिन्दी अनुवाद की यह कृति चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी से प्रकाशित है। डॉ. वूलर ने अपनी पुस्तक 'लाईफ ऑफ हेमचंद्र' में जिन कृतियों को आधार माना है वे ये हैं —प्रभावक चरित, प्रबंध चिंतामणि, प्रवंधक कोष, कुमारपाल प्रवंध, द्वयाश्रय काव्य, सिद्धहेमप्रशस्ति, एवं महावीर चरित।

उपर्युक्त आधार ग्रंथों में हेमचंद्र के जीवन विवरणों के साथ-साथ तत्कालीन राजाओं व आचार्यों के चरित्रों का भी वर्णन है। मूलाधार ग्रंथ 'मोहराज पराजय' में राजा कुमारपाल को व्यसन से मुक्ति दिलाकर वैराग्य धारण करवाने का विशद् वर्णन है। 'कुमारपाल प्रतिबोध' में हेमचंद्र द्वारा कुमारपाल को दिए गए उपदेश संग्रहित हैं।

जन्म एवं बाल्यावस्था : हेमचंद्र की जन्मभूमि गुजरात व काठियावाड के बीच सीमा पर स्थित "धूधँका" है जो आजकल अहमदाबाद जिले में है।[8] इनका जन्म वि. सं. ११४५ में कार्तिक शुक्ल १५, रात्रि को तदनुसार सन् १०८८ या १०८९ को नवम्बर-दिसम्बर माह में हुआ था।[9] "धुँधका" नगर को संस्कृत ग्रंथ में धुन्धुक्क या धुन्धुकपुर नाम भी दिया गया है। हेमचंद्र की माता का नाम पाहिणी व पिता का नाम चाचिग था। इनके माता-पिता मोढ वंशीय वैश्य थे।[10] पिता के लिये चाच्य, चाच, चाचिग—तीन नामों का उल्लेख हुआ है। मोढेरा गाँव से इनके वंशजों का निकास होने के कारण ये मोढ वंशीय कहलाए। हेमचंद्र के माता-पिता जैन श्रद्धालु थे। इनकी कुलदेवी चामुण्डा तथा कुलयक्ष गोनस था।[11] देवताओं के प्रतीक अर्थ से आदि अंत के अक्षर लेकर हेमचंद्र का नाम भी चाऽगदेव पड़ा।[12] डॉ. मुसलगांवकर लिखते हैं कि प्रबंध चिंतामणि के अनुसार इनके पिता शैव प्रतीत होते हैं। क्योंकि उदयन मंत्री द्वारा धनराशि देने पर उसे शिव निर्माल्य सम कहा है।[13] इनके पिता देव व गुरुजनों की अर्चना करने वाले थे। इनके

मामा नेमिनाग भी जैन- धर्मानुरागी थे।[14] हेमचंद्र की माता ने अपने पुत्र चाऽगदेव को देवचंद्र नामक मुनि को सौंप दिया था, इस प्रकार यह बालक मुनि बना दिया गया।

चाऽगदेव को मुनि को सुपुर्द करने की कथा अलग-अलग जैनाचार्यो ने अपने-अपने ग्रंथों में अलग-अलग तरीकों से प्रस्तुत की है। 'प्रभावकचरित' के अनुसार पाहिनी स्वप्न में अपने गुरु को चिंतामणि रत्न भेंट करती है। गुरु से पाहिनी स्वप्न वृतांत कहती है तब गुरुजी ने कहा—तुम्हें शीघ्र ही पुत्र रत्न प्राप्त होगा।

राजशेखर के अनुसार—नेमिनाग ने अपनी बहन का स्वप्न गुरु को सुनाया कि "मेरी बहन ने स्वप्न में एक आम का सुन्दर वृक्ष देखा था। वह वृक्ष अतिफलवान दिख रहा था। गुरु ने कहा—तुम्हारी बहन के सुलक्षण सम्पन्न पुत्र होगा जो दीक्षा लेने के योग्य होगा।[15] इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि हेमचंद्र के जन्म से पूर्व ही उनकी भवितव्यता के शुभ लक्षण प्रकट होने लगे थे। भारतीय इतिहास में इस प्रकार के अनेक प्रसंग देखने को मिलते हैं कि जन्म से पूर्व जन्म लेने वाली महान् आत्मा के लक्षणों के संकेत प्राप्त होने लगते हैं। माता-पिता द्वारा जिस संतान को शुभ संस्कार प्राप्त होते हैं वह संतान आगे चलकर निश्चित ही युग का इतिहास कायम करती है।'

शिक्षादीक्षा एवं आचार्यत्व : बालक चाङ्गदेव बाल्यकाल में होनहार था। प्रारंभ से ही उसमें धार्मिक संस्कार देखने को मिले। एक बार वह अपनी माता के साथ गुरु के पास गया। गुरु के उपदेशों से प्रभावित होकर उसने गुरु से दीक्षा देने की मांग की। गुरु की स्वीकृति के बाद बालक का साधु बनना तय हो गया। प्रभावकचरित्र के अनुसार बालक चाङ्गदेव जिन मंदिर में जाकर गुरू की पीठ पर बैठ गया। गुरु ने उसकी माता से पुत्र सौंपने को कहा। माँ ने पिता को पूछने की बात कही तब गुरु मौन हो गये। फिर माता ने अनिश्चित होते हुए भी पुत्र को सौंप दिया। इस प्रकार गुरु देवचंद्र उसे स्तम्भतीर्थ (वर्तमान 'खंभात') को विहार कर गये। खंभात में पार्श्वनाथ के मंदिर में वि. सं. ११५० 'माघ शुक्ल १४' शनिवार के दिन चाङ्गदेव की प्रथम दीक्षा हुई। दीक्षा के पश्चात् चाङ्गदेव का नाम सोमचंद रखा गया।[16] मेरुतुंग एवं राजशेखर ने अपनी-अपनी कृतियों में इस कथा का विस्तारपूर्वक औपन्यासिक रुप दिया है।

कुमारपालचरित के रचयिता जयसिंहसूरि ने अपनी कथा में विभिन्न कथाओं का एकीकरण कर अपने ढंग से कथा को सजाया है। उसने तीन बार दीक्षा ११५० वि. सं. के स्थान पर ११५४ वि. सं. में बताकर ९ वर्ष बाद दीक्षा लेने की बात भी दोहरायी गयी है।

डॉ. वूलर इस बात को अस्वीकार करते हैं कि हेमचंद्र की दीक्षा पाँच वर्ष की उम्र में हुई। 'लाइफ ऑफ हेमचंद्र' में वूलर ने प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि पाँच वर्ष में दीक्षा होना विश्वास के योग्य नहीं है।[17]

दीक्षा लेने के बाद हेमचंद्र ने अपना समय अध्ययन में लगाया। विद्यार्जन के अंतर्गत उन्होंने न्याय, तर्क एवं व्याकरण के साथ-साथ काव्य का भी ज्ञान प्राप्त किया। तर्क, लक्षण व साहित्य उस युग की महाविधाएं कहलाती थीं। इस महत्त्रयी का पाणिडत्य राजदरबार व जनसमाज में कीर्ति उपलब्ध करने हेतु अनिवार्य था। सोमचंद का तीनों विद्याओं पर अधिकार होने लगा। सोमचंद की शिक्षा का प्रबंध स्तम्भ- तीर्थ में उदयन के घर हुआ। प्रो. पारीख लिखते हैं— उन्होंने व्यावहारिक ज्ञान की अभिवृद्धि की।[18] प्रभावकचरित के अनुसार उन्होने (सोमचंद के गुरु ने) सात वर्ष, आठ मास परिभ्रमण व चार माह सद्गृहस्थ के यहां बिताये। उनका शिष्य सोमचंद उनके साथ था अत: अल्पायु में ही विद्या-निपुण बन गया।

डॉ. नेमीचंद शास्त्री लिखते हैं कि हेमचंद्र नागपुर (नागौर मारवाड़) में ''धनद'' सेठ के यहाँ व अपने गुरु के साथ गौड़ प्रदेश में खिल्लर गाँव व कश्मीर में भी गये थे।[19] इक्कीस वर्ष की अवस्था तक उन्होंने समस्त शास्त्रों को टटोल लिया। इन सभी आधार ग्रंथों के निष्कर्ष पर हम कह सकते है कि हेमचंद्र की शिक्षा १६६६ में पूर्ण हो गयी तथा इसी वर्ष उन्हें सूरि अर्थात् आचार्य पद भी मिल गया।[20] इस नवीन आचार्य को विद्वत्ता, तेज, प्रभावादि गुणों से युक्त देखकर दर्शक इनकी और होने लगे। सोमचंद्र जब हेमचंद्रसूरि बन गये तब इनकी माता पाहिनी ने भी दीक्षा ग्रहण की।[21]

आचार्य हेमचंद्र के गुरु के संबंध में साहित्यकार अस्पष्ट हैं। डॉ. जी. वूलर का मत है कि उन्होंने अपने गुरु का नामोल्लेख किसी भी कृति में नहीं किया। शायद वूलर हेमचंद्र के समस्त ग्रंथों का अध्ययन न कर पाए हों। प्रभावकचरित व कुमारपालचरित के अनुसार इनके गुरु देवेन्द्रसूरि ही थे। बिंटरनिज ने अभयदेवसूरि को इनका गुरु बताया।[22] प्रबंधचिंतामणि के अनुसार गुरु व शिष्य में मनमुटाव अवश्य रहा होगा। वरना वे अपनी कृतियों में गुरु का उल्लेख अवश्य करते।

प्रभावकचरित से ज्ञात होता है कि उन्होंने ब्राह्मीदेवी की उपासना के लिये कश्मीर की यात्रा की एवं कश्मीरी पंडितों से अध्ययन किया था। यह बात संभव भी हो सकती है क्योंकि अभिनवगुप्त, मम्मट, रुद्रट आदि पंडितों ने कश्मीर में जन्म लिया था जिनकी महिमा से हेमचंद्र भी वहां पहुँच कर ज्ञान प्राप्त करना चाहते हों। आचार्य सोमप्रभ के अनुसार हेमचंद्र ने परोपकार के लिये विविध देशों में विहार किया। गुरुदेव के बाद में निषेध करने पर इन्होंने गुर्जर देश के अहिल्वाडा (पाटननगर) में स्थिर होकर अपनी ज्ञान

कुमारपालचरित की रचना प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचंद्र सूरि ने की थी। इसमें सिद्धराज जयसिंह एवं कुमारपाल का इतिहास है। इसकी रचना सं. १२१८ और १२२९ के बीच किसी समय हुई। न तो हेमचंद्र राजपूताना के कवि थे और न ही कुमारपाल बौद्ध थे। हेमचंद्र गुजरात के थे एवं कुमारपाल शैव थे।[30] वे आगे लिखते हैं—इन्होंने १०८८-११७२ ई. में शासन किया। प्रसिद्ध हेमचंद्र इन्हीं के दरबार में थे।[31]'' जॉर्ज ग्रियर्सन के विवरणानुसार कुमारपाल व हेमचंद्र का समय ठीक ही बैठता है।

सिद्धराज जयसिंह के पश्चात् इनका पौत्र कुमारपाल गुजरात के राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। हेमचंद्र के धार्मिक उत्साह एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व ने इस चालुक्य राजा को शैव से जैन बना दिया।[32] डॉ. वूलर का मत है कि हेमचंद्र कुमारपाल को शैव मत से एकदम विमुख नहीं कर सके थे। परंतु उन्हें आवश्यक जैन व्रतों को पालने वाला तो बना ही दिया था।

कुमारपाल वि. सं. ११९९ के मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्दशी को राज्याभिषिक्त हुए। यह हेमचंद्र के आशीर्वाद का ही परिणाम था। राजा बनने पर कुमारपाल की आयु ५० वर्ष की थी, कुमारपाल के राज्याभिषिक्त होते ही हेमचंद्र पाटन आये एवं चमत्कार[33] द्वारा कुमारपाल को स्मरण कराया। स्मरण होते ही कुमारपाल ने हेमचंद्र का स्वागतादि कर कहा-लीजिए, अब आप अपना राज्य सम्हालिए। हेमचंद्र बोले—अगर प्रति उपकार की भावना है तो जैन धर्म स्वीकार कर उसका प्रसार करें। कुमारपाल ने हेमचंद्र के आदेश को शिरोधार्य कर राज्य में प्राणिवध, मांसाहार, असत्य भाषण, द्यूत, व्यसन, वेस्यागमन, पर-धनहरण एवं मद्यपान आदि का निषेध किया।

कुमारपाल व हेमचंद्र के मिलन के समय एवं घटनाओं के संबंध में महावीरचरित, लाइफ ऑफ हेमचंद्र, काव्यानुशासन की भूमिका, कुमारपाल प्रतिबोध, प्रभावकचरित आदि में अलग-अलग मत दिये गये हैं। श्री ईश्वरलाल जैन के अनुसार कुमारपाल ने मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशी, सं. १२१६ को श्रावक धर्म के १२ व्रत स्वीकार कर विधिपूर्वक जैन धर्म में दीक्षाग्रहण की। द्वादशव्रत-अणुव्रत-५, गुणव्रत-३, शिक्षाव्रत-४ आदि में इस बात की पुष्टि होती है।[34] अधिकतर प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि कुमारपाल शैव ही रहा। हो सकता है कि जीवन की उत्तरावस्था में वह द्वादशव्रतधारी श्रावक जैसा हो गया हो।[35]

राजा कुमारपाल ने हेमचंद्र की प्रेरणा से तालाब, विहार, धर्मशालाएँ, दीक्षाविहार, मंदिर, शिखर आदि बनवाए। उन्होंने केदार व सोमनाथ का उद्धार किया। सात बड़ी यात्राएं कर नौ लाख रत्न पूजा में चढ़ाए।[36] कुमारपाल की प्रार्थना पर हेमचंद्र ने 'योगशास्त्र' वीतरागस्तुति एवं त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित पुराण की रचना की। हेमचंद्र के द्वारा रचित काव्यादि को लेखबद्ध करने हेतु

कुमारपालचरित की रचना प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचंद्र सूरि ने की थी। इसमें सिद्धराज जयसिंह एवं कुमारपाल का इतिहास है। इसकी रचना सं. १२१८ और १२२९ के बीच किसी समय हुई। न तो हेमचंद्र राजपूताना के कवि थे और न ही कुमारपाल बौद्ध थे। हेमचंद्र गुजरात के थे एवं कुमारपाल शैव थे।[30] वे आगे लिखते हैं—इन्होंने १०८८-११७२ ई. में शासन किया। प्रसिद्ध हेमचंद्र इन्हीं के दरबार में थे।[31]'' जॉर्ज ग्रियर्सन के विवरणानुसार कुमारपाल व हेमचंद्र का समय ठीक ही बैठता है।

सिद्धराज जयसिंह के पश्चात् इनका पौत्र कुमारपाल गुजरात के राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। हेमचंद्र के धार्मिक उत्साह एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व ने इस चालुक्य राजा को शैव से जैन बना दिया।[32] डॉ. वूलर का मत है कि हेमचंद्र कुमारपाल को शैव मत से एकदम विमुख नहीं कर सके थे। परंतु उन्हें आवश्यक जैन व्रतों को पालने वाला तो बना ही दिया था।

कुमारपाल वि. सं. ११९९ के मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्दशी को राज्याभिषिक्त हुए। यह हेमचंद्र के आशीर्वाद का ही परिणाम था। राजा बनने पर कुमारपाल की आयु ५० वर्ष की थी, कुमारपाल के राज्याभिषिक्त होते ही हेमचंद्र पाटन आये एवं चमत्कार[33] द्वारा कुमारपाल को स्मरण कराया। स्मरण होते ही कुमारपाल ने हेमचंद्र का स्वागतादि कर कहा-लीजिए, अब आप अपना राज्य सम्हालिए। हेमचंद्र बोले—अगर प्रति उपकार की भावना है तो जैन धर्म स्वीकार कर उसका प्रसार करें। कुमारपाल ने हेमचंद्र के आदेश को शिरोधार्य कर राज्य में प्राणिवध, मांसाहार, असत्य भाषण, द्यूत, व्यसन, वेस्यागमन, पर-धनहरण एवं मद्यपान आदि का निषेध किया।

कुमारपाल व हेमचंद्र के मिलन के समय एवं घटनाओं के संबंध में महावीरचरित, लाइफ ऑफ हेमचंद्र, काव्यानुशासन की भूमिका, कुमारपाल प्रतिबोध, प्रभावकचरित आदि में अलग-अलग मत दिये गये हैं। श्री ईश्वरलाल जैन के अनुसार कुमारपाल ने मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशी, सं. १२१६ को श्रावक धर्म के १२ व्रत स्वीकार कर विधिपूर्वक जैन धर्म में दीक्षाग्रहण की। द्वादशव्रत-अणुव्रत-५, गुणव्रत-३, शिक्षाव्रत-४ आदि में इस बात की पुष्टि होती है।[34] अधिकतर प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि कुमारपाल शैव ही रहा। हो सकता है कि जीवन की उत्तरावस्था में वह द्वादशव्रतधारी श्रावक जैसा हो गया हो।[35]

राजा कुमारपाल ने हेमचंद्र की प्रेरणा से तालाब, विहार, धर्मशालाएँ, दीक्षाविहार, मंदिर, शिखर आदि बनवाए। उन्होंने केदार व सोमनाथ का उद्धार किया। सात बड़ी यात्राएं कर नौ लाख रत्न पूजा में चढ़ाए।[36] कुमारपाल की प्रार्थना पर हेमचंद्र ने 'योगशास्त्र' वीतरागस्तुति एवं त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित पुराण की रचना की। हेमचंद्र के द्वारा रचित काव्यादि को लेखबद्ध करने हेतु

कुमारपाल ने छः सौ लेखकों को बुलाया एवं इस साहित्य की सुरक्षा हेतु इक्कीस बड़े ज्ञान भंडार निर्मित करवाए। जैन लोगों का अभिमत है कि लगभग एक सौ शिष्यों का परिवार हेमचंद्र को घेरे रहता था। जो ग्रंथ गुरु हेमचंद्र लिखवाते थे उन्हें वे शिष्य लिख दिया करते थे। हेमचंद्र का प्रमुख शिष्य था रामचंद्र, जिसने हेमचंद्र के स्वर्गवास के बाद भी उनके बारे में अनेक ग्रंथों की रचना की।

व्यक्तित्व, साहित्यिक जीवन एवं अवसान : कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचंद्र ने अपने साहित्य सर्जन के जादू से केवल भारतीय जन-जीवन को ही मंत्र-मुग्ध नहीं किया बल्कि पाश्चात्य जगत में भी अपने ज्ञान की दुंदुभि बजायी थी, इसी कारण पाश्चात्य विद्वानों ने उन्हें ज्ञान का सागर (ओशियन ऑफ नॉलेज़) कहा है। हेमचंद्र के ज्ञान का प्रकाश साहित्यिक क्षेत्र के अतिरिक्त अध्यात्म, धर्म, भाषा, विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों में प्रदीप्त रहा। इनमें एक साथ ही वैयाकरण, आलंकारिक, दार्शनिक, साहित्यकार, इतिहासकार, पुराणकार, कोशकार, छन्दोऽनुशासन, धर्मोपदेशक तथा महान् युगकवि का अनन्यतम समन्वय हुआ है। हेमचंद्र का व्यक्तित्व सर्वकालिक, सार्वदैशिक एवं विश्वजनीन रहा। इनका कार्य सम्प्रदायातीत एवं सर्वजनहिताय रहा, परंतु खेद है कि अभी तक इनके व्यक्तित्व को संप्रदाय विशेष की धरोहर समझ कर उसे बाह्य रुप में प्रसारित, प्रचारित नहीं किया गया है। हेमचंद्र सच्चे अर्थ में आचार्य थे। वे अनेक विद्याओं एवं शास्त्रों के ज्ञाता थे। आचार्य सोमप्रभसूरि ने अपनी रचना 'शतार्थकाव्य' में इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा है— ''विद्याम्भोनिधिमन्थ मन्दरगिरि श्रीहेमचन्द्रोगुणज्ञ :''।

हेमचंद्र की क्षमता, योग्यता, जीवन, कार्य, व्यवहार, आचार एवं चरित उन्हें सौ फीसदी आचार्य सिद्ध करते हैं। 'कालिकाल सर्वज्ञ' में एक रहस्य छिपा हुआ है, वह है हेमचंद्र का चमत्कारीपन। हेमचंद्र मंत्र विद्या के ज्ञाता थे। उन्हें दैविक सिद्धियाँ प्राप्त थीं, किन्तु उस मानत्यागी ने इनका उपयोग इस नश्वर संसार की भौतिक सामग्री को प्राप्त करने हेतु नहीं किया। हाँ, परोपकार का प्रश्न है, उन्होंने उसका उपयोग किया। उदाहरणार्थ उन्होंने अपने आश्रयदाता कुमारपाल की बीमारी अपनी मंत्र-शक्ति से दूर की थी।[37] इसी प्रकार वृद्धावस्था में लूता रोग हो जाने पर ''अष्टांगयोगान्यास'' द्वारा लीला के साथ उन्होंने रोग को जड़ से समाप्त कर दिया था।[38] विभिन्न टीकाओं में जड़ पदार्थों को चेतन करने की इनकी कला का वर्णन मिलता है। अन्हिलवाडा (पाटण) में आज भी आचार्य हेमचंद्र की मंत्र-तंत्र आदि अलौकिक शक्तियों की देन की कथा अनायास कानों को सुनने को मिल जाती है। हेमचंद्र अपने आप में एक ''साहित्य कोष'' थे। लक्षणा, तर्क व व्याकरण पर उनका असाधारण अधिकार था। वे तपोनिष्ठ, शास्त्रवेत्ता, तेजस्वी, आकर्षक, कवि, आत्मनिवेदक, योगी, सर्वज्ञ-उपासक, भविष्यवेत्ता, महर्षि,

पूर्ण संयमी, जितेन्द्रीय, अखंड ब्रह्मचारी, निर्भय, सर्वधर्म समभावी, सत्योपासक, धर्मप्रचारक, राजनीतिज्ञ, गुरुभक्त, भक्तवत्सल, मातृभक्त एवं सच्चे देशोद्धारक थे। उनकी प्रशस्ति में डॉ. पीटर्सन लिखते हैं — "दुनिया के किसी भी पदार्थ पर उनका तिलमात्र भी मोह नहीं था। उनके प्रत्येक ग्रंथ में विद्वता की झलक, ज्ञानज्योति का प्रकाश, राजकार्य में औचित्य, अहिंसा प्रचार में दीर्घ दृष्टि, योग में स्वानुभव का आदर्श, प्रचार कार्य में व्यवस्था, उपदेश में प्रभाव, वाणी में आकर्षण, स्तुतियों में गांभीर्य, छन्दों में बल, अलंकारों में चमत्कार, भविष्यवाणी में यथार्थता एवं उनके संपूर्ण जीवन में कलिकाल सर्वज्ञता, झलकती है।[39] हेमचंद्र अहिंसा के सच्चे पुजारी थे। हिन्दुस्थान के इतिहास में यदि सर्वथा मद्यविरोध या मद्यनिषेध हुआ है तो वह सिद्धराज एवं कुमारपाल के समय में ही। इसका पूर्ण श्रेय आचार्य हेमचंद्र को ही जाता है। कुमारपाल ने हेमचंद्र के उपदेशों पर अमल कर अपने अधीन अट्ठारह देशों में चौदह वर्ष तक प्राणी हत्या को समाप्त कर दिया था।"

गुजरात के विद्वानों ने हेमचंद्र के समय को हेमचंद्र युग "से अलंकृत कर उन्हें" गुजरात का ज्योतिर्धर उपाधि से विभूषित किया है। हेमचंद्र ने गुजरात को संवारा है, सजाया है एवं लोगों में जीवन शक्ति का मंत्र फूंका है। हेमचंद्र गुजरात की अक्षय निधि थे, हैं एवं रहेंगे। गुजरात में न केवल जैन अपितु प्रत्येक संप्रदाय के लोग उन्हें आदर की दृष्टि से देखते हैं। इसी कारण कनैयालाल माणेकलाल मुंशी ने उन्हें "गुजरात का चेतनदाता" कहा है।

साहित्यिक जीवन : "हेमचंद्राचार्य प्राचीन भारत के बहुत ही भाग्यशाली ग्रंथकार हैं। सिद्धराज एवं कुमारपाल जैन गुजरात के स्वर्णयुगीन दो राजाओं ने हेमचंद्र की साहित्य रचनाओं में केवल सहायता ही नहीं दी परंतु उनसे नम्रतापूर्वक प्रार्थना करके साहित्य सृजन में भव्य प्रेरणाएं भी दी थीं।[40] सिद्धराज व कुमारपाल ने हेमचंद्र की रचनाओं पर करोड़ों रुपये खर्च कर उनकी असंख्य प्रतिलिपियां तैयार करवाई एवं उन्हें कश्मीर से कन्याकुमारी तक गुजरात से आसाम तक संपूर्ण भारत के भारती-भंडारों में स्थापित करवाया। संपूर्ण हिन्दुस्थान का शायद ही कोई एकाध अभागा जैन ज्ञान भंडार रहा होगा जहां हेमचंद्र की कृतियाँ अपनी ज्ञानकिरणों से जनमन को प्रकाशित न करती होंगी। भव्य लोकप्रियता के पीछे जो मुख्य कारण है वह है - हेमचंद्र की शैली सुपाठ्यता, भाषा की सरलता पूर्ण रचना, तटस्थ व निष्पक्ष विवेचन, अकाट्य प्रमाण एवं संग्रह की सुगमता।

हेमचंद्र की साहित्यिक कृतियों पर अनुसंधित्सुओं ने छानबीन कर जो निष्कर्ष प्रस्तुत किया है उस पर दृष्टिपात करने से सिद्ध हो जाता है कि वे जीवन के किसी भी क्षेत्र से अछूते नहीं थे। दर्शन, धर्म, भाषा, व्याकरण, काव्य, अलंकारादि संपूर्ण विषयों पर आपने रचनाओं का सृजन किया। डॉ.

पुष्करदत्त शर्मा लिखते हैं — "मंत्रीपद पर रहते हुए भी इन्होंने ११६३ ई. में कुमारपालचरित महाकाव्य की रचना की। इनकी अन्यान्य रचनाओं में त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, (काव्य) काव्यानुशासन (काव्यशास्त्र), देशीनाममाला, अभिज्ञानचिंतामणी, अनेकार्थसंग्रह, निधण्टुकोष (कोषग्रंथ), स्याद्वादमंजरी व जिनेन्द्रस्तोत्र (स्तोत्र), शब्दानुशासन व लिंगानुशासन नामक व्याकरण ग्रंथ तथा योगशास्त्र (दर्शन) प्रसिद्ध हैं।[41] हेमचंद्र को कुमारपाल ने सांस्कृतिक विषयों का मंत्री बनाया था।[42] ११६३ ई. में कुमारपालचरित की रचना के अतिरिक्त इन्होंने निम्न कृतियों की रचनाएं कीं :-

१. सिद्धहेमशब्दानुशासन प्रशस्ति, २. चालुक्य वंशोत्कीर्तन योनद्वयाश्रय

आगम प्रभाकर मुनि श्री पुण्यविजय जी द्वारा प्रस्तुत हेमचंद्राचार्य की कृतियों का निर्माण - संख्यादि निम्नानुसार हैं।

१.	सिद्धहेम लघुवृत्ति	६०००	श्लोक
२.	सिद्धहेम वृद्धवृत्ति	१८०००	श्लोक
३.	सिद्धहेम वृहन्न्यास	८४०००	श्लोक
४.	सिद्धहेम प्राकृतिवृत्ति	२२००	श्लोक
५.	लिङ्गानुशासन	३६८४	श्लोक
६.	उणादिगण विवरण	३२५०	श्लोक
७.	धातुपारायण विवरण	५६००	श्लोक
८.	अभिधान परिशिष्ट	१०००००	श्लोक
९.	अभिधान परिशिष्ट	२०४	श्लोक
१०.	अनेकार्थ कोश	१८२८	श्लोक
११.	निघंटु कोश	३९६	श्लोक
१२.	देशीनाममाला	३५००	श्लोक
१३.	काव्यानुशासन	६८००	श्लोक
१४.	छन्दोनुशासन	३०००	श्लोक
१५.	संस्कृत द्वयाश्रय	२८२८	श्लोक
१६.	प्राकृत द्वयाश्रय	१५००	श्लोक
१७.	प्रमाण मीमांसा (अपूर्ण)	२५००	श्लोक
१८.	वेदांकुश	१०००	श्लोक
१९.	त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित	३२०००	श्लोक
२०.	परिशिष्ट पर्व	३५००	श्लोक
२१.	योगशास्त्र स्वोपज्ञवृत्ति	१२७५०	श्लोक
२२.	वीतराग स्तोत्र	१८८	श्लोक
२३.	अन्ययोग व्यवच्छेद द्वात्रिंशिका	३२	श्लोक
२४.	अयोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिका	३२	श्लोक
२५.	महादेव स्तोत्र	४४	श्लोक

इन ग्रंथों के अतिरिक्त सातसंधान महाकाव्य, नाभघनेमि, द्विसंधान काव्य, द्रौपदीनाटक, हरिश्चंद्र चम्पु, लघु अर्हन्नीति आदि ग्रंथों की रचना भी हेमचंद्र ने ही की थी ऐसा माना जाता है। परन्तु उपर्युक्त ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हैं। ''हेमचंद्र की प्रतिभा, उनका सूक्ष्मदर्शीपन, उनका सर्वदिग्गामी पांडित्य और उनके बहुश्रुतत्व का परिचय हमें उपर्युक्त सूची से मिल जाता है।''[43]

अवसान : हेमचंद्राचार्य के अवसान पर विद्वान अधिक सामग्री नहीं जुटा पाए हैं। हम पहले ही बता चुके हैं कि वृद्धावस्था में इन्हें ''लूता'' हो गया था जिसे इन्होंने ''अष्टांगयोगाभ्यास'' द्वारा नष्ट कर दिया था। चौरासी वर्ष की आयु होने पर हेमचंद्र ने अनशन पूर्वक अंत्याराधन क्रिया प्रारंभ की। प्रभावकचरितनुसार वि. सं. १२२९ में इनका स्वर्गवास हुआ।[44] मेरुतुंग ने इस घटना को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार ८४ वर्ष की उम्र में हेमचंद्र ने कुमारपाल से कहा — ''तुम्हारी आयु के भी मात्र छः माह शेष हैं।'' इस प्रकार कुमारपाल को धर्मोपदेश देकर दसमद्वार से हेमचंद्र ने प्राण त्याग दिए।[45] जैन क्रियानुसार उन्होंने संथार लिया था।

राजाकुमारपाल ने हेमचंद्र का दाह संस्कार करवाया एवं भस्म को माथे पर लगाया। राजा का यह अनुकरण समस्त अन्हिलवाड़ा की प्रजा ने भी किया। मेरुतुंग के अनुसार तिलक लगाने हेतु भस्म ले-लेकर आज अन्हिलवाड़ा के उस स्थान पर गहरा खड्डा बन गया है। हेमचंद्र का समाधि स्थल एक पहाड़ पर स्थित है जिसका नाम है— शत्रुंजय पहाड़। जैनधर्म के संप्रदायद्वय आज भी इस स्थान पर भक्तिपूर्वक यात्रा करते हैं। प्रभावक चरित के अनुसार हेमचंद्र की मृत्यु का दुःख राजा कुमारपाल सहन नहीं कर सके तथा हेमचंद्र की भविष्यवाणी के अनुसार ही हेमचंद्र के स्वर्गवास के छः मास पश्चात् स्वयं कुमारपाल भी स्वर्ग सिधार गए।

हेमचंद्र की मृत्यु के उपरांत उनके कुछ शिष्यों ने उनके विचारों के प्रतिकूल आचरण किया था। बालचंद्र नामक एक शिष्य हेमचंद्र की जीवितावस्था में भी हेमचंद्र विरोधी व्यवहार करने लगा था। किंतु रामचंद्र एवं गुणचंद्र नामक शिष्यद्वय गुरु के प्रति निष्ठावान बने रहे। राजा कुमारपाल ने अपने उत्तराधिकारियों को चुनने में भी अंत तक आचार्य हेमचंद्र की प्रेरणा को ही स्वीकार किया था।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर सहज पहुंचते हैं कि हेमचंद्र की मृत्यु राजा कुमारपाल से कुछ पूर्व वि. सं. १२२९ में हुई। मरणोपरांत भी हेमचंद्र का साहित्यिक यश आज यथावत बना हुआ है।

कृतित्व : ''पाटण ५०० वर्ष तक गुजरात की राजधानी रहा। वहां लक्ष्मी एवं सरस्वती का सरस समन्वय था। 'कलिकाल सर्वज्ञ' हेमचंद्राचार्य

का ज्ञान, साहित्य एवं संस्कार के क्षेत्र में महान् उपलब्धि था। वे (हेमचंद्र) गुजराती भाषा के जन्मदाता एवं गुजरात की अस्मिता के प्रथम गायक थे''।[46] इनका जन्म ग्यारहवीं शताब्दी के अंत में माना गया है। प्रभावक चरित से इस बात की पुष्टि हो जाती है।[47] ई. सन् १०८८-८९ में जन्म होने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि हेमचंद्र के साहित्य सृजन का समय बारहवीं शताब्दी रहा चूंकि इनका राज्याश्रय जयसिंह एवं कुमारपाल से जुड़ा है अत: ऐतिहासिक तथ्यों से भी स्पष्ट हो जाता है कि आपकी अधिकांश रचनाए बारहवीं शताब्दी में ही रची गईं। डॉ. वूलर के अनुसार उन्हें ११६६ वि. सं. में सूरि पद प्राप्त हुआ था, अत: सिद्धराज जयसिंह से उनका प्रथम परिचय ११६६ वि. सं. के बाद ही संभव लगता है। जयसिंह ने ११९१-९२ वि. सं. में मालवा को परास्त किया। तब सिद्धराज के आग्रह पर ''शब्दानुशासन सिद्धहेम'' ग्रंथ की रचना हेमचंद्र ने की। परंतु प्रबंध चिंतामणि के अनुसार यह ग्रंथ एक वर्ष में पूरा हुआ था। डॉ. वूलर आदि इस ग्रंथ की रचना में कम से कम तीन वर्ष का समय लगा बताते हैं।

मालव विजय के तीन वर्ष बाद ११९२-९५ तक शब्दानुशासन पूर्ण हुआ होगा। इसी प्रकार संस्कृत द्वयाश्रय काव्य भी वि. सं. १२२० के पूर्व पूर्ण नहीं हुआ होगा।[48] काव्यानुशासन ग्रंथ भी जयसिंह के समय का माना गया है क्योंकि इसमें कुमारपाल राजा का नाम कहीं नहीं आया है। इस प्रकार ११९६ वि. सं. में काव्यानुशासन की रचना हुई होगी। पंडित चंद्रसागर सूरि के मतानुसार हेमचंद्र ने व्याकरण की रचना सं. ११९३-९४ में की थी।[49] डॉ. वूलर काव्यानुशासन एवं छन्दोऽनुशासन को कुमारपाल के प्रारंभिक समय में रचा मानते हैं। इन ग्रंथों में जयसिंह के लिए चार स्तुतियां एवं अन्य उनचास स्तुतियां भी हैं।

कुमारपाल का समय वि. सं. १२२९ तक था तथा हेमचंद्र का स्वर्गवास कुमारपाल से छ: माह पूर्व हुआ था अत: हेमचंद्र का रचनाकाल स्पष्ट रुप से ११९२ से १२२८ वि. सं. तक लक्षित होता है। डॉ. वूलर के मत से कुमारपाल के प्रारंभिक राज्य काल में कोशों के शेष परिशिष्ट तथा देशीनाममाला की रचना हुई।[50] देशीनामामाला की विस्तृत टीका १२१४-१२१५ वि. सं. में मानी गई है।[51] योगशास्त्र वीतरागस्तोत्रादि ग्रंथ १२१६ वि. सं. के बाद लिखे गये होंगे।

आलोच्य कृति त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित का रचनाकाल डॉ. वूलर वि. सं. १२१६-१२२८ के बीच मानते हैं। कुमारपाल चरित, संस्कृत द्वयाश्रय काव्य, अभिज्ञान चिंतामणी की टीका आदि इसी समय की रचनाएं हैं। इनके शिष्य महेन्द्रसूरि ने १२१६ के बाद अनेकार्थ कोष की टीका लिखी होगी। डॉ. वूलर प्रमाण मीमांसा का समय वि. सं. १२१६ से १२१९ के बीच रखते हैं।[52] इस प्रकार हेमचंद्र का रचनाकाल ११९२ से १२२९ वि. सं. ही ठीक बैठता है।

हेमचंद्र की प्रमुख कृतियों का संक्षिप्त परिचय : सिद्धहेम-शब्दानुशासन -सिद्धहेमशब्दानुशासन हेमचंद्रकृत व्याकरण ग्रंथ है। इसकी रचना वि. सं. ११९३ में हुई। सिद्धराज जयसिंह ने मालव नरेश यशोवर्मा को परास्त कर पाटण की राजसभा में विद्वानों को आमंत्रित किया। मालवा की राजधानी ''धारा'' के साहित्य भंडार को भी सिद्धराज पाटण उठा लाया था। जयसिंह को लगा कि गुर्जर भूमि पर इस प्रकार के व्याकरण की रचना अभी तक नहीं हुई हैं। यह सोचकर जयसिंह ने हेमचंद्र की और देखा। हेमचंद्र ने बात को समझकर शीघ्र ही यह चुनौती स्वीकार कर ली।[53] हेमचंद्र ने उस कृति को एक वर्ष में तैयार किया। इसमें सवालाख श्लोक थे।[54] इस कृति के प्रचार के लिए तीन सौ लेखकों से ३००० प्रतियों को लिखवाकर भिन्न-भिन्न धर्माध्यक्षों को भेंट दी गईं एवं ईरान, सीलोन, नेपाल आदि देशों में इसकी हस्तलिखित प्रतियां भेजी गईं।[55] इस कृति की रचना में हेमचंद्र ने पाणिनी का अनुकरण किया है।

सिद्धहेमशब्दानुशासन के प्रथम सात अध्यायों में ४५६६ सूत्र हैं आठवें अध्याय में १११९ सूत्र हैं। इस प्रकार लगभग चार हजार श्लोकों का यह ग्रंथ है। सिद्धहेमशब्दानुशासन के विषय में यह भी कहा गया है कि वैयाकरण कक्कल जो प्रचारक व शिक्षक था, उसने व्याख्याता के रूप में इस कृति की रचना में योग दिया।[56] सिद्धहेम शब्दानुशासन के सूत्रों की रचना पाणिनी की अष्ठाध्यायी के सूत्रों से सरल एवं विशिष्ट मानी गई है।[57] इस व्याकरण ग्रंथ के पांच अंग हैं।

१. सूत्रपाठ, २. उणादिगणसूत्र, ३. लिगांनुशासन,
४. धातूपारायण, ५. गणपाठ।

प्रभावकचरित में इस ग्रंथ को विश्व विद्वानों हेतु उपयोगी माना है।[58]

हेमचंद्र के शब्दकोश : भाषाज्ञान के पूर्व शब्दज्ञान अत्यावश्यक है। हेमचंद्र ने भी संस्कृत एवं देशज भाषा के कोशों की रचना की। ''१२वीं शताब्दी के कोशग्रंथों में हेमचंद्र के कोशग्रंथ सर्वोत्कृष्ट हैं। ए. वी. कीथ ने अपने 'संस्कृत साहित्य के इतिहास' में इस कथन को स्वीकारा है।[59]''

प्रमुख शब्दकोश : १. अभिधान चिंतामणि, २. अनेकार्थ संग्रह, ३. निघण्टु संग्रह, ४. देशीनाममाला।

अभिधानचिंतामणि : इस ग्रंथ का रचनाकाल वि. सं. १२०६ -८ के आसपास रहा होगा। यह छः काण्डों का समानार्थक शब्दों का संग्रह है। छः काण्ड— १. देवाधिदेवकांड, २. देवकांड, ३. मर्त्यकांड, ४. भूमिकांड, ५. नारदकांड, ६. सामान्यकांड हैं। इसमें १५४१ पद्य हैं। इसमें रुढ़, यौगिक एवं मिश्र शब्दों के अर्थ दिये गए हैं। इतिहास की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। विभिन्न परिभाषाओं द्वारा साहित्य के अनेक सिद्धांतों की व्याख्या की गई है।

छः कांडों में क्रमश : ८६, ३५०, ५९७, ४२३, ०७ एवं १७८ श्लोक हैं। इस प्रकार कुल १५४१ श्लोकों का यह ग्रंथ है।[60]

इस शब्दकोष में हेमचंद्र ने स्वोपज्ञवृत्ति टीका में पूर्ववर्ती ५६ ग्रंथाकारों[61] तथा ३१ ग्रंथो[62] का उल्लेख किया है। प्रथम कांड में देवताओं व गणधरों के नाम तथा त्रिकोण के अर्हन्तों के नाम दिये गए हैं। द्वितीय कांड में सभी देवों का अंगों सहित वर्णन है। तृतीय कांड में मानवों तथा चतुर्थ कांड में तिर्यच्चों का वर्णन है। चतुर्थ कांड में एक इन्द्रीय,[63] दो इन्द्रीय,[64] त्रि इन्द्रीय,[65] चतुः इन्द्रीय,[66] पंचेन्द्रीय जीवों[67] का वर्णन है। कृति के पांचवें कांड में नारकीय जीवों का वर्णन है। हेमचंद्र ने जीवों की पांच गतियां बताई हैं।[68] ऋतुओं के संबंध में उस कोश में मनोरंजक जानकारी मिलती है। सेना के अंग, जाति-वर्णन आदि प्रकरण रोचकतापूर्ण हैं। यह कोशग्रंथ इतिहास तुलना, पर्यायशब्द, एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अगर इसे अमरकोश से भी उत्तम शब्दकोश कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी।

अनेकार्थ संग्रह : यह ग्रंथ अभिज्ञानचिंतामणी के बाद की रचना है। इसमें एकस्वरकांड, द्विस्वरकांड, त्रिस्वरकांड, चातुःस्वरकांड, पंचस्वरकांड, षट्स्वरकांड एवं अव्ययकांड, इस प्रकार सात कांड हैं। इन कांडों में क्रमश : १६, ९१, ७६६, ३४३, ४८, ०५ एवं ६० श्लोक हैं। इस प्रकार १८२९ श्लोक आए हुए हैं।[69] डॉ. वि. भा. मुसलगांवकर इस श्लोक संख्या से सहमत नहीं है।[70] अभिज्ञानचिंतामणि में एक ही अर्थ के विभिन्न पर्यायवाचक शब्द दिये गए है। जबकि इस कृति में एक ही शब्द के अनेक अर्थ दिये गए हैं। कोशग्रंथों के रचनाकर हेमचंद्र ने संस्कृत कोशकार के रुप में यश अर्जित किया है। हेमचंद्र के समय से लगाकर आज दिन तक ये ग्रंथ प्रमाण के रुप में कार्य कर रहे हैं।

इसीलिए तो कहा है—''हेमचन्द्रश्च रुद्रश्चामरोऽयं सनातनः''

देशीनाममाला : देशीनाममाला कुमारपाल से हेमचंद्र का परिचय होने के कदाचित् कुछ ही पूर्व लिखी गई होगी। क्योंकि हेमचंद्र उसके उपोद्धात के ''तीसरे'' श्लोक में संकेत करते हैं कि ''मैंने केवल अपना व्याकरण ही नहीं अपितु संस्कृत कोश एवं अलंकार शास्त्र भी पूर्ण कर दिए थे।[71] इसका समय वि. सं. १२१४-१५ माना गया है। यह प्राकृत व्याकरण का शब्दकोष है। इधर मधुसूदन मोदी ने अपनी गुजराती भाषा की कृति 'हेमसमीक्षा' में देशीनाममाला का समय वि. सं. ११९९ के बाद तथा तेरहवीं सदी के प्रारंभ में माना है।[72]

दण्डी नें अपने काव्यादर्श में शब्दों के तीन प्रकार-तद्भव, तत्सम व देशज माने। हेमचंद्र ने मात्र देशज शब्दों के लिए अलग कोश देशीनाममाला की रचना की। इसके नामकरण पर मतभेद है। कुछ विद्वानों ने इसे

''देशीसहसंग्रह'' देशीशब्दसंग्रह कहा है। ग्रंथ के अंत की गाथा में ''रयणावलि'' नाम भी आया है।[73] प्रो. बनर्जी के अनुसार इसमें १९७८ देशी शब्दों का संकलन है।[74] डॉ. वूलर ने तो इस ग्रंथ की निरर्थक कह कर आलोचना कर डाली। आलोचना का उत्तर प्रो. मुरलीधर बेनर्जी ने देशीनाममाला की प्रस्तावना में दिया है। प्रो. पिशेल ने भी इसकी आलोचना की है।[75] प्रो. बेनर्जी ने लिखा है—''यदि गाथाओं को शुद्ध रुप में पढ़ा जाए तो उनसे ही सुन्दर अर्थ निकलते हैं। प्रत्येक रसिक उन गाथाओं को सुन्दर कविता समझकर पढ़ता है।[76] यह ग्रंथ वर्णक्रम से लिखा गया है। इसके आठ अध्यायों में सात सौ तिरासी गाथाएं हैं। इन गाथाओं के लिए मुसलगांवकर लिखते हैं — ''विश्व की किसी भी भाषा के कोश में इस प्रकार के सरस पद्य उदाहरण के रुप में नहीं मिलते।[77] विद्वानों के अनुसार इस कोश में मराठी, कन्नड़ी, द्राविड़ी, फ़ारसी आदि शब्द भी हैं। मुख्यतया गुजराती शब्द अधिक हैं।''

निघुण्टु संग्रह : इस वनस्पति कोश की रचना हेमचंद्र ने अभिज्ञान चिंतामणि, अनेकार्थ संग्रह एवं देशीनाममाला के बाद में की। इस ग्रंथ में तमाम बनौषधियों का विवरण दिया गया है। अन्य कोशों के बाद की रचना का प्रमाण ग्रंथ का प्रथम श्लोक है —

विहितैकार्थ नानार्थ देश्यशब्दसमुच्चयः
निघण्टुशेष वक्ष्येडहं नत्वार्हत्पदपऽकजम्॥

इस कोशग्रंथ में छः काण्ड एवं तीन सौ छियानवें श्लोक हैं।[78] वृक्ष, गुल्म, लता, शाक, तृण एवं धान्य, इस प्रकार छः काण्ड हैं। प्रत्येक काण्ड में क्रमशः १८१, १०५, ४४, ३४, १७, १७ एवं १५ श्लोक हैं।[79] डॉ. वूलर ने अपने ग्रंथ में लिखा है —''निघंटु या निघंटुशेष संबंधी भी कोई वक्तव्य करना चाहिए। यह ग्रंथ इतना प्रसिद्ध नहीं है। जैनाचार्यों के सांप्रदायिक कथनानुसार हेमचंद्रने निघंटु नामक छः ग्रंथ लिखे हैं।[80] परंतु अभी तक मात्र तीन का पता चला है। इसमें से दो वनस्पतियों के नाम की सूक्ष्म जानकारी देते हैं। प्राचीन धन्वंतरी निघंटु एवं रत्नपरीक्षा में से यह ग्रंथ अनुकरण करके लिखा गया है। तो यह भी न हो ऐसी बात नहीं।[81]

इस प्रकार ''पंचांग सहित सिद्धहेमशब्दानुशासन (अनेक वृत्तियों सहित) तथा वृत्ति सहित तीनों कोश एवं निघंटुशेष, यह सब मिलकर हेमचंद्र का शब्दानुशासन पूर्ण होता है।[82]

द्वयाश्रय महाकाव्य : अपने व्याकरण की सफलता ने हेमचंद्र को अपना साहित्यिक कार्यक्षेत्र विस्तृत करने और अनेक संस्कृति-शिक्षा की पुस्तकें लिखने के लिये प्रेरित किया है, जो विद्यार्थियों के संस्कृत रचना और विशेषतः काव्य में शुद्ध और अलंकारिक भाषा के प्रयोग में पूर्ण निर्देशन करें।

इसी प्रयत्न में अनेक संस्कृत कोश एवं अलंकार, छंदशास्त्र और उनमें उल्लिखित सिद्धांतों के उदाहरणीकरण के लिए एक सुन्दर काव्य तक की रचना उनसे करवाई थी और वह काव्य है — द्वयाश्रयमहाकाव्य, जिसमें चौलुक्यराजवंशीय इतिहास संकलित है[83] उनका यह काव्य व्याकरण, इतिहास एवं काव्य तीनों का वाहक है।[84] "यथा नामा तथा गुणा" पर आधारित इस ग्रंथ में दो तथ्य सन्निबद्ध हैं। संस्कृत के इस ग्रंथ में २० सर्ग हैं तथा २८८८ श्लोक हैं। इस कृति में एक तरफ चालुक्यवंशीय चरित के साथ-साथ दूसरी तरफ व्याकरण के उदाहरण प्रस्तुत किये गए हैं।[85] इसमें कुमारपाल व उनके पूर्वजों का विस्तृत वृत्तांत दिया गया है। साथ ही सृष्टिवर्णन, ऋतुवर्णन, रसवर्णानादि सभी महाकाव्योचित गुण विद्यामान हैं।[86]

काव्यशास्त्रीय नियमों का अनुसरण करने वाला यह पूर्ण महाकाव्य है। महाकाव्य की मर्यादाओं में चालुक्यों की जीवनगाथा समाहित करने के लिए, वंश के महान नायकों का गौरव निभाने के लिए, सिद्धराज व जयसिंह पर कोई लांछन न लगे यह देखने के लिए हेमचंद्र ने कितनी ही बातें छोड़ दी हैं। नायक के वर्णन में अनेक कार्यों में विचित्रता का आरोप कर नायक का गौरव बढाने के लिए, कवि इतिहास को वास्तविक न्याय नहीं दे सका है।[87] इस काव्य के वि. सं. १२२० में पूर्ण होने का अनुमान विद्वानों का है। परंतु वूलर का मत है कि "जिस रुप में आज यह काव्य प्राप्त है वैसा वि. सं. १२२० में यह संपूर्ण नहीं हो सकता था क्योंकि हेमचंद्र ने अपने जीवनकाल के अंतिम वर्ष में एक दूसरे ही ग्रंथ के संशोधन में हाथ लगाया था। वहुत संभव है कि द्वयाश्रय महाकाव्य की रचना जयसिंह की इच्छा देखकर प्रारंभ की गई थी और उस राजा के कार्यकलापों के वर्णन तक ही अर्थात् चौदहवें वर्ष तक ही रची गई थी।"[88]

ग्रंथ के प्रारंभ में चालुक्य वंश की स्तुति एवं मूलराज का वृतांत है। एक से पांच सर्ग तक मूलराज के राज्य के अनेक प्रसंगों के वर्णन के बाद छठे सर्ग में मूलराज पुत्र चामुन्डराय का वर्णन आता है। अगले सर्गों में चामुन्डराय के तीन पुत्रों — वल्लभराय, दुलर्भराज एवं नागराज के वर्णन हैं। आगे क्रमशः अनेक पुत्र—भीम, खेमराज, कर्णदेव, देवप्रसाद, जयसिंह, त्रिभुवनपाल सिंह, कुमारपाल आदि राजाओं के वृत्तांत चित्रित किये गए हैं।

कुमारपालचरित : प्राकृत द्वयाश्रय महाकाव्य का अन्य नाम कुमारपालचरित है। द्वयाश्रय काव्य के अर्थ पर टिप्पणी करते हुए मधुसूदन मोदी लिखते हैं—"द्वयाश्रयकाव्य अर्थात् एक तरफ व्याकरण सूत्रों के उदाहरण और दूसरी तरफ अलंकारों से युक्त संपूर्ण महाकाव्य"[89]। यह एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें ऐतिहासिकता कम एवं काव्यत्व ज्यादा है। ग्रंथावलोकन से ज्ञात होता है कि हेमचंद्र का उद्देश्य कुमारपाल के चरित का वर्णन करना न

होकर सुन्दर महाकाव्य पर आधारित व्याकरण सूत्रों को निर्देशित करना एवं गौणरुप से राजा कुमारपाल की यशवृद्धि करना रहा है। संस्कृत में जो स्थान भट्टिकाव्य का है प्राकृत में वही स्थान हेमचंद्र कृत द्रयाश्रय का है। परंतु भट्टिकाव्य से भी अधिक पूर्णता व क्रमबद्धता इस ग्रंथ में लक्षित होती है।[90] इस काव्य में आठ सर्ग हैं। प्रथम छः सर्गों में अपभ्रंश के उदाहरण हैं। महाकाव्य की कथावस्तु अत्यंत संक्षिप्त है। काव्य में कथा विस्तार की दृष्टि से यत्र-तत्र ऋतुवर्णन, चंद्रोदय वर्णन एवं ऋतुओं में सम्पन्न होने वाली विभिन्न क्रीड़ाओं का वर्णन किया है। डॉ. मुलसगाँवकर ने इसकी कथावस्तु पर प्रहार करते हुए लिखा है — "इतना ही कहा जा सकता है कि इस महाकाव्य की कथावस्तु का आयाम बहुत छोटा है। एक अहोरात्र की घटनाएँ इसे संचार करने की पूर्ण क्षमता नही रखती हैं।"[91]

संक्षेप में इसके प्रथम सर्ग में ९० गाथाएँ, जिसमें कुमारपाल की प्रातःकालीन पूजा का वर्णन है। द्वितीय सर्ग में ९१ गाथाएं, जिसमें राजा का व्यायाम, गजारुढ़ होना, मंदिर जाना, पुनः महलों में आगमनादि वर्णन हैं। तृतीय सर्ग में ९० गाथाएं, राजा के उद्यान गमन व वसंतोत्सव का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग में ७८ गाथाएं, जिसमें गीष्म ऋतु का वर्णन है। पंचम सर्ग में १०६ गाथाएं, इस सर्ग में शरद, हेमंत, शिशिर वर्णन व संध्या-रात्रि आदि का वर्णन है। षष्टम सर्ग में १०७ गाथाएं, चंद्रोदय वर्णन, कोंकण पर विजय, राजा के शयनादि का वर्णन है। सर्ग सप्तम में १०२ गाथाएं, जिसमें राजा के परामर्श व चिंतन का वर्णन है। अंतिम सर्ग की ८३ गाथाओं में — श्रुति देवी का उपदेश देना व उसके अदृश्य होने का वर्णन है। इस प्रकार ७४७ गाथा छंदों का यह महाकाव्य है। प्रथम छः सर्गों की भाषा प्राकृत तथा सातवें एवं आठवें सर्ग की क्रमशः सौरसैनी एवं मागधी है। इनके साथ-साथ[92] पैशाची, चूलिका आदि का भी प्रयोग हुआ है। इस तरह यह ग्रंथ भी हेमचंद्र की महत्वपूर्ण कृतियों में से एक है।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित : बारहवीं शताब्दी में हेमचंद्राचार्य ने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित नामक पुराण काव्य की रचना की। गुर्जर नरेश कुमारपाल की प्रार्थना पर लिखा यह ग्रंथ ई. सन् ११६० के मध्य पूर्ण हुआ।[93] तिरसठ महापुरुषों के चरित की गाथायुक्त यह ग्रंथ दस पर्वों में विभक्त है। जैकोबी लिखते हैं—

"Hemachandra on the other hand writing in Sanskrit, in Kavya Style and fluent verses, has produced an epical poem of great length (some 3700 verses) Intended as if were as a Jaina Substitute for the great epics of the Brahmans."

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित में ३६०० श्लोक हैं। इस ग्रंथ की रचना योगशास्त्र के बाद हुई। कुमारपाल ने हेमचंद्र से प्रार्थना की कि — "हे

स्वामी, अकारण उपकारक, बुद्धियुक्त आप, आपकी आज्ञा पाकर नरक संबंधी आयुष्य के निमित्त शिकार, जुआ तथा सुरापान आदि दुर्गुण मेरे राज्य में निषिद्ध किए हैं। पुत्रहीन जिसकी मृत्यु हो जाती है उसका धन लेना भी मैंने बंद कर दिया है। संपूर्ण पृथ्वी पर अरिहंत के मंदिर बनाकर उसे सुशोभित किया है, तो अब इस समय वर्तमान राजा के समान हुआ हूं।

पहले भी आपने मेरे पूर्वज सिद्धराज की भक्तिभरी प्रार्थना पर व्याकरण की रचना की है। मेरे लिए आपने पवित्र योगशास्त्र की भी रचना की है। जनता के लिए द्वयाश्रय काव्य, छंदोनुशासन, काव्यानुशासन, नामसंग्रह एवं अन्य ग्रंथ आपने रचे हैं। हे स्वामी, आप लोकोपकार के लिए स्वयं तैयार हैं परंतु मेरी प्रार्थना है कि मेरे जैसे मानव को प्रतिबोध देने के लिये आप त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित को प्रकाशित करें।[94] कुमारपाल राजा की ऐसी प्रार्थना को सुनकर हेमचंद्राचार्य ने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित ग्रंथ को वाणी से विस्तारित किया। इस कृति का प्रधान फल है—धर्मोपदेश।[95] इससे यह जानकारी मिलती है कि कुमारपाल के जैन धर्म स्वीकारोक्ति के पश्चात् ही यह ग्रंथ रचा गया। डॉ. वूलर इस ग्रंथ की रचना वि. सं. १२१६ से १२२९ के बीच की मानते हैं। यह वास्तविक ही है।[96] यह ग्रंथ हेमचंद्र की उत्तरावस्था में लिखा गया था।

यह एक ऐसा ग्रंथ है जिसे पढ़कर पाठक को शब्दशास्त्र, अलंकार शास्त्र, छंदशास्त्र, जैन पौराणिक कथाओं, जैन तत्वज्ञान, इतिहास, तीर्थंकरों के इतिहास आदि की जानकारी एक साथ होती है। इस ग्रंथ में सामाजिकता भी कूट-कूट कर भरी हुई है। धर्म की दृष्टि से यह ग्रंथ महान है ही। इसके १० पर्वों में जैन तीर्थंकरों का स्वरुप वर्णन, जीवविचार, कर्मस्वरूप, आत्मा का अस्तित्व वैराग्य, क्षणभंगुर जीवन, आदि विषयों को सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह ग्रंथ तत्कालीन राजनैतिक उथल-पुथल को प्रस्तुत करता है।

काव्य एवं शब्दशास्त्र की दृष्टि से तो यह महाकाव्य उच्च शिखर पर विराजमान है। मोतीचंद कापड़िया लिखते हैं — "यह ग्रंथ प्रारंभ से अंत तक पूरा पढ़ा जाए तो संपूर्ण संस्कृत भाषा के कोश का अभ्यास स्वत: हो जाता है, ऐसी इसकी शब्द योजना है।[97] ग्रंथ का पर्व ७ जैन रामायण नाम से विख्यात है। तुलसी के मानस का ब्राह्मण संप्रदाय में जो स्थान है ठीक वही स्थान श्रमण या जैन संप्रदाय-द्वय में जैनरामायण का है। विमलसूरि, रविणेश आदि द्वारा प्राकृत में रामकथा लिखे जाने के उपरांत भी हेमचंद्र के इस संस्कृत ग्रंथ का वर्तमान में अधिक महत्त्व है। चूंकि त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व-७, जैन रामायण ही यहां आलोच्य कृति है अत: इसकी विषयवस्तु आदि का विस्तृत वर्णन अग्रिम पंक्तियों में करेंगे।"

काव्यनुशासन : अलंकार ग्रंथों की परंपरा का अनुपम ग्रंथ है काव्यानुशासन। यह ग्रंथ जयसिंह के शासनकाल में लिखा गया था। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से होती है कि इस अलंकार ग्रंथ में कुमारपाल का कहीं भी उल्लेख नहीं है। २०८ सूत्रों के इस ग्रंथ के तीन भाग हैं — सूत्र, व्याख्या एवं कृति। इसके ८ अध्यायों में क्रमशः २५, ५९, ९०, ९९, ३१, ५२ तथा १३ सूत्र आए हुए हैं। हेमचंद्र ने काव्यानुशासन के लिए राजशेखर (काव्यमीमांसा), मम्मट (काव्यप्रकाश), आनंदवर्धन (ध्वन्यालोक), अभिनवगुप्त (लोचन) आदि से पर्याप्त मात्रा में सामग्री ली।[98] काव्यानुशासन में काव्योत्पत्ति के कारण, काव्य-परिभाषा, अलंकारों के लक्षण व परिभाषा, रस विवेचन आदि पर विस्तृत, तुलनात्मक एवं सोदारहण व्याख्या प्रस्तुत की गई है। इस के प्रयोजन पर विचार करें तो लगता है कि लोकोपयोग ही इसका मुख्य हेतु है। ब्राह्मण पूर्वाचार्यों का अनुगमन करते हुए लोकहितार्थ यह ग्रंथ रचा गया। इस ग्रंथ में लोकोपयोग के अलावा दूसरा प्रयोजन नजर नहीं आता।[99]

कृति के प्रथम अध्यायान्तर्गत काव्यप्रयोजन, व्युत्पत्ति, काव्यगुण-दोष, शब्दशक्ति आदि चर्चित हैं। द्वितीय अध्याय में रसोत्पत्ति, रसाभास, भावाभास व उत्तम मध्यम एवं निम्न काव्य के लक्षण दिये गए हैं। तृतीय अध्याय में रस, भाव व शब्दार्थ वर्णन है। चतुर्थ अध्याय में काव्यगुण विवेचित हैं। पांचवे एवं छठे अध्याय में क्रमशः शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दिये गए हैं। सातवें अध्याय में नायक-नायिका लक्षण हैं। आठवें अध्याय में प्रबंध काव्य भेद की चर्चा आई है। इस प्रकार काव्यानुशासन एक अलग प्रकार का शिक्षा ग्रंथ है जो विद्यार्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी है।[100] इस ग्रंथ में संपूर्ण काव्याँगों की विवेचना है। अलंकारशास्त्र के उत्कृष्ट ग्रंथों में आज आचार्य हेमचंद्र के काव्यानुशासन की गणना होती है।[101]

छंदोनुशासन : शब्दानुशासन एवं काव्यानुशासन के बाद हेमचंद्र ने छंदोनुशासन की रचना की। उसका उल्लेख हेमचंद्र ने छंदोनुशासन के प्रथम अध्याय के प्रथम श्लोक में किया है।[102] यह भी आठ अध्यायों में विभक्त क्रमशः १६, ४१५, ७३, ९१, ४९, ३०, ७३ एवं १७ सूत्रों वाला ग्रंथ है। इस प्रकार ७६४ सूत्रों से युक्त छंद शास्त्रीय ग्रंथ है। हेमचंद्र ने इस ग्रंथ में तत्कालीन समय तक आविष्कृत एवं पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा प्रयुक्त समस्त संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश छंदों का समावेश करने का यथासंभव प्रयत्न किया है। ''संस्कृत में आज तक जितने छंदरचना संबंधी ग्रंथ प्राप्त हुए हैं उन सबमें हेमचंद्रकृत छंदोनुशासन सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा कथन करने में अत्युक्ति नहीं होगी।[103] इस शास्त्र में हेमचंद्र ने भरत, पिंगल, स्वयंभू, माण्डव्य, कश्यप, सैलव व जयदेवादि प्राचीन छंद शास्त्रियों का भी उल्लेख किया है।

छंदोनुशासन के प्रथम अध्याय में संज्ञाप्रकराणान्तर्गत वर्ण, मात्रा,

वृत, समवृत, विषमवृत, अर्द्धसमवृत, पद, यति आदि का विवरण है। दूसरे अध्याय में समवृत व दंडक की विवेचनान्तर्गत कुल ४११ छंद उपलब्ध होते हैं। तीसरे में अर्द्धसम, विषम, वैतालिप ७२ प्रकार के छंदों के लक्षण हैं। गालितक, खंजक, शीर्षक आदि के लक्षण चौथे अध्याय में हैं। पाँचवें अध्याय में उत्साह, रड्डा, धवलमंगल आदि छंदों की चर्चा है। छठे अध्याय में अपभ्रंश के छंदों का परिचय एवं षट्पदी व चतुष्पदी के नियमों का वर्णन है। सप्तम अध्याय में अपभ्रंश के द्विपदीयों का वर्णन है। अंतिम अध्याय में विभिन्न वृत्तों की विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। इस प्रकार छंदोनुशासन गेय तत्व के प्रकरणयुक्त सुन्दर व सफल प्रयास कहा जा सकता है।

प्रमाण मीमांसा : तत्वज्ञान की सिद्धि के लिए तर्कशास्त्र की आवश्यकता प्रत्येक आचायों को रही है। प्रमाण मीमांसा की रचना करके हेमचंद्र न्यायाचार्य के पद पर आसीन हो गए हैं। यह ग्रंथ पूर्णरुप से प्राप्त नहीं हो रहा है। इस ग्रंथ की रचना शब्दानुशासन, काव्यानुशासन एवं छंदोनुशासन के बाद हेमचंद्र द्वारा की गई।[104] यह ग्रंथ ''वादानुशासन'' नाम से भी जाना जाता है। सूत्र शैली के इस ग्रंथ को पांच अध्यायों में विभक्त किया गया है। अपूर्ण इस ग्रंथ के केवल ९९ सूत्र ही प्राप्त होते हैं। डॉ. वि. भा. मुसलगाँवकर १०० सूत्र उपलब्ध होना मानते हैं।[105] यह एक दर्शन ग्रंथ है। ''अनेकांतवाद, प्रमाण, पारमार्थिक प्रत्यक्ष की तात्विकता, इन्द्रिय ज्ञान का व्यापारक्रम, परोक्ष के प्रकार, अनुमानकाव्यों की प्रायोगिक व्यवस्था, विग्रह स्थान, जय-पराजय व्यवस्था, सर्वज्ञत्व का समर्थन आदि मूल विषयों पर इस ग्रंथ में विचार किया गया है।[106] इस ग्रंथ का प्रत्येक अध्याय दो आह्निक में परिसमाप्त होता है। यह हेमचंद्र के जीवन की अंतिम कृति मानी जाती है।

प्रथम अध्याय के प्रथम आह्निक में ४२ सूत्र हैं। इन सूत्रों में प्रमाण लक्षण, प्रमाण विभाग, प्रत्यक्ष के लक्षण, इन्द्रिय ज्ञान व्यापार, प्रमाणफल आदि की चर्चा है। द्वितीय आह्निक में परोक्ष लक्षण, स्मृति प्रत्यभिज्ञान, अनुमान के लक्षण, साध्य के लक्षण, स्वार्थ के लक्षण, दृष्टांत वर्णन आदि हैं। द्वितीय अध्याय के प्रथम आह्निक में ३४ सूत्र हैं जिनमें प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, व निगमन इन पांच अवयवों के लक्षण हैं। साथ ही हेत्वाभास, आठ प्रकार के सार्ध्म्यदृष्टांतभ्यास जाति, छल, वाद के लक्षण, गल्प, वितंडा आदि के लक्षण, जय-पराजय के लक्षण आदि का वर्णन मिलता है। सारंशत: केवल २ अध्याय व ३ आह्निक ही मिलते हैं।

प्रमाण मीमांसा की सर्वश्रेष्ठ देन है — अनेकांतवाद। हेमचंद्र ने सर्वधर्मसहिष्णुत्व व परमतसहिष्णुत्व की भावना को बल दिया है। इसके विचार संप्रदायातीत हैं। प्रमाणमीमांसा में, दर्शन जगत में तथा तर्क साहित्य में परमत के प्रति सहिष्णुता का प्रसार हुआ है। इस ग्रंथ के लेखन से न केवल

जैन दर्शन अपितु संपूर्ण भारतीय दर्शनशास्त्र के गौरव में वृद्धि हुई है। अतः भारतीय प्रमाणशास्त्र में हेमचंद्र की प्रमाणमीमांसा का स्थान अद्वितीय है।[107]

प्राकृत व्याकरण : सिद्धहेमशब्दानुशासन का आठवां अध्याय प्राकृत व्याकरण नाम से जाना जाता है। यह समस्त प्राकृत व्याकरणों की अपेक्षा व्यवस्थित एवं पूर्ण है। हेमचंद्र ने अपने शब्दानुशासन में प्राकृत के मुख्य स्वरुपान्तर्गत प्राकृत, शौरसैनी, मागधी, पैशाची तथा चूलिकापैशाची की चर्चा करने के पश्चात् अंत में अपभ्रंश की चर्चा की है। प्राकृत व्याकरण के इस अध्याय में चार पाद हैं। क्रमशः प्रथम से चतुर्थ पादान्तर्गत २७१, २१८, १८२ एवं ४४८ सूत्र हैं। प्रथम पाद में संधि, शब्द, अनुस्वर, लिंग, विसर्ग आदि का विवेचन है। द्वितीय पाद में समीकरण, स्वरभक्ति, वर्ण वैपर्यय, शब्दादेश, तद्धित, निपात आदि निरुपित किये गए हैं। तीसरे पाद में विभक्तियों, कारण, क्रिया आदि के नियम दिये गए हैं। चौथे पाद में (महाराष्ट्री प्राकृत) शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिकापैशाची आदि की विशेषताएं वर्णित हैं। अंतिम सूत्रों में अपभ्रंश की विभिन्न विशेषताओं का उल्लेख किया जाता है।

इस कृति के आठवें अध्याय की व्यवस्थित आवृत्ति प्रकाशित करवाने का प्रथम श्रेय प्रो. पिशेल को प्राप्त होता है।[108] हेमचंद्र ने व्याकरण की प्राचीन परंपरा को अपनाकर महान कार्य किया। आधुनिक युग में अपभ्रंश की खोज खबर का श्रेय हेमचंद्र को ही जाता है।[109] इस कार्य को पूर्ण करने में हेमचंद्र ने अपने से पूर्व व्याकरणाचार्यों से सामग्री प्राप्त की है। योगीन्द्रकृत परमात्मप्रकाश, रामसिंहमुनि-कृत पाहुड़ी दोहा आदि इसके उदाहरण हैं।

योगशास्त्र : पतंजलि के योगसूत्र की शैली परलिखा गया यह एक धार्मिक व दार्शनिक ग्रंथ है। यह गद्य-पद्यमय शैली में लिखा है। डॉ. कीथ आदि साहित्यकार इसे विशुद्ध साम्प्रदायिक ग्रंथ कह कर साहित्यिक महत्व देना नहीं चाहते।[110] योगशास्त्र की रचना हेमचंद्र ने राजा कुमारपाल की प्रार्थना पर की थी।[111] कुमारपाल को योग-उपासना पर श्रद्धा थी। अपनी श्रद्धा को पूर्ण करवाने के लिए उन्होंने योगशास्त्र की रचना करवाई। हेमचंद्र का योगशास्त्र रचने का उद्देश्य मात्र स्वामी को संतोष प्रदान न होकर लोकमानस को बोध देना भी रहा है।[112]

१२ प्रकाश तथा १०८ श्लोकयुक्त यह ग्रंथ जैन श्वेताम्बर संप्रदाय के लिए महत्वपूर्ण है। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित के उद्धरण भी इस ग्रंथ में मिलते हैं।[113] इसे "अध्यात्मोपनिषद" भी कहा जाता है। इस ग्रंथ की प्रशंसा सोमप्रभाचार्य व मेरुतुंग ने भी की है। "गृहस्थ जीवन में उच्च स्थिति में रहने के पश्चात् जीवन को योग की तरफ ले जाना ही इस कृति का हेतु है।" कृति के प्रथम चार प्रकार में गृहस्थाश्रम का धर्ममय जीवन तथा पांच से बारह प्रकाशों में योग के विभिन्न विषयों का वर्णन है। गृहस्थ जीवन को निर्देशित

करने हेतु पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत, बताये गए हैं। इस प्रकार द्वादशव्रत विवरण है।[114] योगशास्त्र में मदिरादोष, मांसदोष, नवनीतभक्षणादिदोष, मधुदोष, रात्रिभोजनदोष, श्रावक दिनचर्या, इन्द्रिय जय के प्रयत्न, मन शुद्धि, राग-द्वेष जय, मोक्ष, प्राणायाम, योग की आश्चर्यजनक शक्तियां, मन की एकाग्रता, ध्यान के इच्छुक जीवन, पदस्थ, रुपस्थ व रुपातीत ध्यान, चार प्रकार के शुक्लध्यान, जिन महात्म्य, चित्रभेद स्वरुप, परमात्मा स्वरुप, समाधि अवस्था आदि शीर्षकों पर विस्तृत व सारगर्भित विवेचन प्रस्तुत हुआ है।

परिशिष्ट पर्व : परिशिष्ट पर्व का नाम प्रो. याकोबी ने स्थविरावलीचरित दिया है।[115] हेमचंद्र इसे महाकाव्य कहते हैं।[116] डॉ. कीथ इसकी कथाओं को साधारण मानते हैं। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित का यह अंतिम हिस्सा है जो स्वतंत्र व ऐतिहासिक है। महावीर के पश्चात् अनेक केवली शिष्यों की परंपरा इसमें दी गई है। ग्रंथ में केवल नामावली ही न होकर उनसे संबंधित कथाएँ भी दी गई हैं। हेमचंद्र ने स्वयं स्वीकार किया है कि ''त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित ग्रंथ के बाद उसके अनुसार'' यह उसका परिशिष्ट पर्व में विस्तारित कर रहा हूं।[117] प्रो. याकोबी, प्रा. लायमन आदि ने इसके कथानक को पर्वग्रंथों से लिया हुआ बताया है। याकोबी ने लिखा है''

"The preceding table shows at a glance that the Substance of Hemchandra's Sthviravali Carita is almost entiorely derived from old sourcess" [118] & " On the Whole his marrative is a faithfull respresentation of the originals and may be Compared with theru verse to verse." [119]

इसमें तेरह सर्ग हैं। इसमें जम्बुस्वामी से लेकर वज्रसेन तक के राजाओं की ऐतिहासिक कथा दी गयी है। इसकी लोककथाएं व दृष्टांत सराहनीय हैं। लोकवार्ताओं (फोल्कटेल्स) की दृष्टि से भी यह ग्रंथ उपयोगी है। परिशिष्टपर्व की दो सुन्दर आवृत्तियां आज भी मुद्रितावस्था में मौजूद हैं। प्रथम प्रो. योकोबी संपादित विब्लिआथेका इन्किा सीरीज नं. ९६ द्वितीय-भावनगर की पं. हरगोविंददास की विस्तृत प्रस्तावना वाली संपादित कृति। जैन लोकाचार जानने एवं जैन प्रथाओं का उद्‌गम इस ग्रंथ में देखने को मिलता है।[120]

वीतरागस्तोत्र : यह स्तवन ग्रंथ है। अपने आश्रयदाता कुमारपाल के लिए भक्तिभावभरी स्तुतियों से युक्त यह महत्वपूर्ण ग्रंथ है। वीतरागस्तोत की रचना के समय कुमारपाल ने जैनधर्म ग्रहण कर लिया था।[121] इसके बीस प्रभाग ''प्रकाशों'' में बांटे गये हैं जिनमें १८३ श्लोक हैं।[122] इन श्लोकों में भक्ति व दर्शन का पुट नजर आता है। विषय विवरण के शीर्षक निम्नप्रकार से हैं —

१. प्रस्तावना स्तव, २. सहजातिशय वर्णन स्तव, ३. कर्मक्षय जातिशय वर्णन स्तव, ४. सुकृतिशय वर्णन स्तव, ५. प्रतिहार्य स्तव, ६.

विपक्षनिराश स्तव, ७. जगत् कर्तृत्वनिरास स्तव, ८. एकांत निरास स्तव, ९. कलिप्रश्न स्तव, १०. अद्‌भुत स्तव, ११. अचिंत्य महिमा स्तव, १२. वैराग्य स्तव, १३. विरोध स्तव, १४. योगसिद्ध स्तव, १५. भक्ति स्तव, १६. आत्मगर्हा स्तव, १७. शरणगमन स्तव, १८. कठोरोक्ति स्तव, १९. आज्ञा स्तव और २०. आशी स्तव।

वीतराग स्रोत रसयुक्त, आनंद देने वाला एवं सहज भक्तिप्रद ग्रंथ है। इसमें जैन भक्ति व दर्शन का काव्यमय सुन्दर वर्णन है।

महादेव स्तोत्र : महादेव स्तोत्र ४४ श्लोकों की लघु कृति है। संपूर्ण काव्य अनुष्टुप् छंद में है केवल अंतिम छंद आर्या है। यह सरल भाव-भाषायुक्त है। इस कृति में ''शिव'' का अर्थ समझाया गया है। उस समय गुजरात में सोमनाथ महादेव पर राजा-प्रजादि सभी की श्रद्धा होने के कारण हेमचंद्र को भी शिवस्तुति के रुप में यह कृति लिखने की प्रेरणा हुई होगी ऐसी विद्वानों की मान्यता है। कृति का अंतिम श्लोक सोमनाथ की पूजा करते समय कहा गया है— ऐसी साहित्यविदों की मान्यता है।[123] यह श्लोक निम्न है :

भव वीजाङ्कुरजनना रुगाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै॥[124]

सकलार्हत् स्तोत्र : त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित की तरह यह भी तीर्थंकरों की स्तुति का गान-ग्रंथ है जिसमें केवल ३५ श्लोक ही हैं। इसके प्रारंभिक छब्बीस श्लोक त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित से लिए गए हैं। अंतिम श्लोकों पर भी साहित्यशास्त्री शंका करते हुए उसे हेमचंद्रकृत नहीं मानते हैं।[125] यह कृति स्वयंभू (पद्‌मपुराण) पुष्पदंत (तिसद्धिपुरिसगुणालंकारचरिय) आदि की परंपरा में आती है। इन महाकवियों ने भी अपनी कृतियों के प्रारंभ में चौबीस अरिहंतों की स्तुतियां की है।

अन्ययोग व्यच्छेद द्वात्रिंशिका : द्वात्रिंशिका का महत्त्व भक्ति एवं काव्य दोनों दृष्टियों से है। इस कृति में बत्तीस श्लोक हैं। भगवान महावीर का महत्त्व, उनका यथार्थवाद, नयमार्ग, उनका निष्पक्ष शासन, भगवान जिन द्वारा अज्ञानी संसार को ज्ञानज्योति से प्रकाशित करना, सामान्य-विशेष वाद, अनित्य- नित्यवाद, ईश्वर, कर्म, धर्म व उसके भेद आदि इस कृति के वर्ण्य विषय हैं। आत्मा एवं ज्ञान की भिन्नता, बुद्धि, मोक्ष, वेदांत समीक्षा, सांख्यसिद्धांत समीक्षा, अकांतमहत्त्व, ज्ञानाद्वैत, शून्यवाद, क्षणभंगूरवाद, आदि विषयों की चर्चा भी इसमें की गई है। हेमचंद्र ने इस कृति में अन्य दर्शनों का खंडन किया है।[126] डॉ. आनंदशंकर ध्रुव के मतानुसार ''चिंतन व भक्ति का इतना सुन्दर समन्वय इस काव्य में हुआ है कि यह दर्शन तथा काव्य दोनों ही दृष्टि से उत्कृष्ट कहा जा सकता है।[127] हेमचंद्र ने इस कृति में अर्हन्‌मुनि के सिद्धांतों को निर्दोष बताते हुए अन्य दर्शनों के सिद्धांतों को मत्सर से भरपूर

बताया है।[128] अंतिम दो श्लोकों में महावीर की स्तुति के साथ यह ग्रंथ संपूर्ण हो जाता है। स्तुतिपरक ग्रंथों में अन्ययोग व्यवच्छेद का स्थान महत्वपूर्ण है।''

अयोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिका : इस कृति में हेमचंद्र ने जैनेत्तरमतवादियों के शास्त्रों पर दोषारोपण करते हुए अपनी प्रखर वाणी में जिनशासन की महत्ता को प्रतिपादित करने का प्रयास किया है।[129] हेमचंद्र ने इस कृति में जिन शासन को कल्याणमय व सर्वोत्कृष्ट बताया हैं। जनमत द्वारा उसकी उपेक्षा करने पर वे उन लोगों को दुष्कर्मी कहकर उनकी भर्त्सना करते हैं। इसमें महावीर के गुण, जैन धर्म के गुण, स्वरुप, मोक्ष का कारण आदि बातें वर्णित हैं। कृति के प्रारंभ में अन्य धर्म-संप्रदायों को दोषी बताया गया है परंतु अंत में स्वयं की समदृष्टि का उपयोग कर सार रूप में यथार्थवाद को कारण मानकर जिन शासन की महत्ता सिद्ध की है।[130]

अन्य संदिग्ध कृतियाँ : स्वयं हेमचंद्र ने अपनी कृतियों का परिचय इस प्रकार दिया है।

पूर्व पूर्वजासिद्धराज नृपते भक्ति स्पृशोयांचया।
सांगं व्याकरणं सुवृत्तिसुगमं च कुर्मवन्तः पुरा
मद्वेतोरथ योगशास्त्रममलं लोकाय च द्वयाश्रय -
च्छेदोडलंकृत्तिनाम संग्रह मुख्यान्यन्यानि शास्त्राण्यपि॥ [131]

अर्थात् सिद्धराज की याचना पर हेमचंद्र ने पांच अंग ग्रंथ, वृत्तियों एवं व्याकरण की रचना की। कुमारपाल के लिए योगशास्त्र की तथा जनता के लिए द्वयाश्रय, छंदोनुशासन, काव्यानुशासन, नामसंग्रहादि की रचना की। कुमारपाल की याचना पर त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित का सृजन किया। सिद्वहेमशब्दानुशासन हेमचंद्र की प्रथम रचना थी।

इन कृतियों के अतिरिक्त कुछ और ग्रंथ भी हेमचंद्रकृत माने जा रहे हैं परंतु उनकी प्रामाणिकता पर संदिग्धता के काले मेघ मंडराये हुए हैं। ये ग्रंथ निम्नलिखित हैं—

१. अर्हन्नामसमुच्चय
२. अर्हन्नीति[132]
३. चंद्रलेखाविजय प्रकरण[133]
४. द्विजवदन चपेटा
५. नाभेयनेमिद्विसंधानकाव्य
६. न्यायबलाबलसूत्र
७. बलाबलसूत्र वृहद्वृत्ति
८. बालभाषाव्याकरणसूत्रवृत्ति

उपर्युक्त ग्रंथों की सूची हीरालाल कापड़िया ने अपने लेख में भी दी है।[134] श्री कापड़िया कुछ और कृतियों का नाम देते हैं जो संदिग्ध हैं परंतु

आज तक अनुपलब्ध भी है। ये कृतियां निम्नलिखित हैं।

१. अनेकार्थ शेष
२. द्वात्रिंवाद् द्वात्रिंशिका
३. निघंटु
४. प्रमाण मीमांसा का अवशिष्ट भाग
५. स्वोपज्ञवृत्ति का अवशिष्ट भाग
६. प्रमाणशास्त्र
७. आठवें अध्याय की लघुकृति
८. वृहन्न्यास का अवशिष्ट भाग
९. वादानुशासन
१०. शेष संग्रह नाममाला
११. शेषसंग्रह नाममाला सारोद्धार
१२. सप्तसंधान महाकाव्य[135]

तर्कप्रधान युग में जब तक उपर्युक्त सभी कृतियों पर विस्तृत अनुसंधान नहीं होता तब तक इन्हें प्रमाणिकता का दर्जा भी नहीं मिल सकेगा। तब तक ये कृतियां संदिग्धावस्था की सूची में ही शोभित होंगी। इनके बारेमें मूल तथ्य तो यह है कि आज दिन तक ये अनुपलब्ध हैं अतः प्रधान कार्य तो इन कृतियों की खोज करना है। आज भी जैसलमेर, पाटण, खंभात आदि अनेक स्थानों के जैन भंडारों में हस्तलिखित कृतियां मौजूद हैं। खोज से अगर ये प्राप्त हो जाती हैं तो इन कृतियों को हेमचंद्र ने ज्ञान-गौरव पर तौलकर सहज ही विवाद का समाधान किया जा सकता है। आवश्यकता है अनुसंधान कर उन कृतियों को शोधने की, जिसे भावी अनुसंधानकर्ता पूर्ण करेगें यह आशा है।

: संदर्भ-सूची :

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, पं. शिवदत्त शर्मा, भाग-६, अंक ४-श्री हेमचंद्र.
२. हेमचंद्राचार्य जीवन चरित - कस्तूरमल बांठिया, पृ. ७
३. आचार्य हेमचंद्र : डॉ. वि. भा. मूसलगाँवकर, पृ. ५
४. वही, पृ. ५
५. प्रमाण मीमांसा : प्रस्तावना, जैन सिंधी ग्रंथमाला
६. आचार्य हेमचंद्र : डॉ. वि. भा. मूसलगाँवकर, पृ. ५
७. वही, पृ. ६ पर दी हुई सूची
८. हेमचंद्राचार्य जीवन चरित : डॉ. वूल्हर, अनुवाद - बांठिया, पृ. १०
९. प्रभावक चरित - प्रभाचंदसूरि-हेमसूरि, प्रबंध श्लोक, ११-१२
१०. मोढ नाम - अहिल्वाड़ा (पाटण) के दक्षिण में 'मांढेरा' से संबंधित है।

११. आचार्य हेमचंद्र : डॉ. मूसलगाँवकर, पृ. २०
१२. कुमारपाल प्रतिबोध, पृ. ४७८
१३. कयदेव गुरुज्जणच्चो चच्चो - कुमारपाल प्रतिबोध
१४. प्रबंध चिन्तामणि, पृ. २८३
१५. प्रबंधकोश, हेमसूरि प्रबंध। अस्मिश्च .... दीक्षणीयः।
१६. प्रभावक चरित्र - २२/१३-१४, १५, १६, २५, २६, २९-३४
१७. हेमचंद्राचार्य जीवन चरित - डॉ. वूलर, अनु. बांठिया, पृ. १५
१८. काव्यानुशासन की अंग्रेजी प्रस्तावना - प्रो. परीख
१९. आचार्य हेमचंद्र व उनका शब्दानुशासन - एक अध्ययन, पृ. १३
२०. हेमचंद्राचार्य जीवन चरित - डॉ. जी. वूलर, अनु. बांठिया, पृ. १८
२१. प्रभावक चरित - श्लोक ६१-६२
२२. हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिट्रेचर - विंटरनिज, वाल्यूम ५, पृ. ४८२, खंड ४
२३. हेमचंद्राचार्य जीवन चरित - डॉ. जी. वूलर, अनु. बांठिया, पृ. २५
२४. प्रबन्ध चिन्तामणि - जयसिंहदेव हेमसूरि सभागम, पृ. ६०
२५. हेमचंद्राचार्य जीवन चरित - डॉ. जी. वूलर, अनु. बांठिया, पृ. ५४
२६. संस्कृत द्वयाश्रय महाकाव्य-हेमचंद्र, सर्ग - १५, श्लोक - १६
२७. आचार्य हेमचंद्र - मूसलगाँवकर, पृ. २४
२८. प्रबन्ध चिन्तामणि, पृ. ६०
२९. लाइफ ऑफ हेमचंद्र : डॉ. वूलर
३०. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास : जॉर्ज ग्रियर्सन, पृ. ६१, टिप्पणी
३१. वही, पृ. ६१
३२. हेमचंद्राचार्य जीवन चरित - डॉ. वूलर, अनु. बांठिया, पृ. २५
३३. आचार्य हेमचंद्र : डॉ. वि. भा. मूसलगाँवकर, पृ. २८
३४. १२ व्रत, ५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत तथा ४ शिक्षाव्रत
३५. हेमचंद्राचार्यः ईश्वरलाल जैन - आदर्श ग्रंथमाला - मुलतानशहर, पृ. ४५
३६. वही
३७. आचार्य हेमचंद्र - डॉ. वि. भा. मूसलगाँवकर
३८. प्रबंध चिंतामणि : हेमचंद्र
३९. हेमचंद्राचार्य : ईश्वरलाल जैन
४०. हेम समीक्षा : मधुसूदन मोदी (गुजराती) पुरोवाच, पृ. १४
४१. संस्कृत साहित्य का इतिहास : डॉ. पुष्करदत्त शर्मा, पृ. १०३
४२. वही, पृ. १०३
४३. मुनि श्री पुण्यविजयकृत पत्रिका - भगवान श्री हेमचंद्राचार्य से
४४. हेमचंद्राचार्य जीवन चरित : डॉ. वूलर, अनु. बांठिया, पृ. ३९
४५. प्रबन्ध चिंतामणि : हेमचंद्राचार्य कुमारपालयो मृत्युवर्णनम्, पृ. ९५

४६. पाटण ए ५०० वर्ष सुधी गुजरात नी राजधानी हती। त्यां लक्ष्मी नुं ज्ञान साहित्य अने संस्कार क्षैत्रे अनन्य प्रदान हतुं। तेओ गुजराती भाषा ना जन्मदाता अने गुजरात नी अस्मिता ना प्रथम गायक हता। कुलीनचंद्र याज्ञिक, कुलपति उत्तर गुज. युनि. पाटण के जैन साहित्य समारोह में बोलते हुए - जनसत्ता, दि. १८-१०-८९
४७. प्रभावक चरित, प्रभाचंदसूरि - हेमसूरि प्रबंध - श्लोक ११ व १२
४८. आचार्य हेमचंद्र : डॉ. वि. भा. मूसलगाँवकर, पृ. ४०
४९. वही, पृ. ४१
५०. लाइफ ऑफ हेमचंद्र : डॉ. वूलर, अनु. बांठिया, पृ. ५९
५१. आचार्य हेमचंद्र : डॉ. वि. भा. मूसलगाँवकर, पृ. ४१
५२. हेमचंद्राचार्य: कस्तूरमल बांठिया, पृ. ६०
५३. प्रबंध चिंतामणि, पृ. ३०१, श्लोक ८५
५४. आचार्य हेमचंद्र : वि. भा. मूसलगाँवकर पृ. ८६
५५. प्रबंध चिंतामणि, श्लोक १०३-११०, पृ. ३०२
५६. हेमचंद्राचार्य जीवन चरित : कस्तूरमल बांठिया, पृ. २६
५७. पुरातत्व, पृ. ४, अंक १-२, पृ. ७५। गुजरात नूं प्रधान व्याकरण (निबंध) पं. बैचरदास
५८. प्रभावकचरित, श्री हेमचंद्रसूरि प्रबंध श्लोक ९६-९८, पृ. ३०२
५९. आचार्य हेमचंद्र : मूसलगाँवकर, पृ. १२०
६०. हेमसमीक्षा मधुसूदन शास्त्री (गुजराती) पृ. ७३-७४
६१. अमर, अमरादि, अलंकारकृत, आगमविद, उत्पल, काव्य, कामंदुकि, कालिदास, कैटिल्य, कौशिक, क्षीरस्वामी, गोड़, चाणक्य, चाँन्द्र, दंतिल, दुर्ग, द्रमिल, धनपाल, धनवंतरि, नंदी, नारद, नेरुतन, पदार्थविद्द, पालकाव्य, पौराणिक, प्राच्य, बुद्धिसागर, बौद्ध, भट्टलोल, भट्टि, भरत, भागुरि, भाष्यकार, भोज, मनु, माघ, मुनि व याज्ञवल्क्य।
६२. अमरकोश अमर्टीका, अमरमाला, अमरशेष, अर्थशास्त्र, आगम, चाँद्र, जैन समय टीका, तर्क, त्रिशपुंच., द्रयाश्रय, धनुर्वेद, धातुपारायण, नाट्यशास्त्र, निघंटु, पुराण, प्रमाण - मीमांसा, भारत, महाभारत, माला, योगशास्त्र, लिंगानुशासन, नामपुराण, विष्णुपुराण, वेद, वैजयंति, शाकटायन, श्रुति, संहिता, रति, याज्ञिक, लौकिक, वाग्मट्ट, वाचस्पति, वासुकी, विश्वदत्त, वैजयंतिकार, वैद्य, व्यादि, शाब्दिक, शाश्वत, श्रीहर्ष, श्रुतिज्ञ, सम्य, स्मार्त, हलायुध, हृदय।
६३. जलकायिक, हिम, वर्फ, शैवालादि।
६४. धुण, कृमि, काष्ठकोटादि।
६५. पीलक पीपिलीका आदि।
६६. मौंरा, मकडी आदि।

६७. जलचर, पक्षी, देवतादि।
६८. मुक्तगति, देवगति, मनुष्यगति, तिर्यग्गति, नारकीय गति।
६९. हेमसमीक्षा: मधुमृदन शास्त्री (गुजराती) पृ. ८०-८१
७०. मूसलगाँवकर के अनुसार सात काण्डों में क्रमश: १७, ६१७, ८१४,३५९, ५७, ०७ एवं ६८ = १९३९ श्लोक हैं।
७१. हेमचंद्राचार्य जीवन चरित : डॉ. वूलर, अनुवाद - बांठिया, पृ. ५८
७२. हेम समीक्षा: मधुसूदन शास्त्री (गुजराती) पृ. १३७
७३. इयं रयणावलि नामो देसीसहाण संग्रहो एसो। देशीनाममाला १-७७
७४. तत्सम - १००, तद्भव १८५०, संशययुक्त तद्भव - ५२५ देशी -१५००, कुल ३९७८ आ. हेमचंद्र : मूसलगाँवकर, पृ. १३२
७५. पिशेल एण्ड रामानुजास्वामी - देशीनाममाला इन्ट्रोडक्शन (पृ. २९-३०)
७६. इन्ट्रोडक्शन टू देशीनाममाला, पृ. ८
७७. हेम समीक्षा: मधुसूदन शास्त्री, पृ. ८५-८६
७८. आचार्य हेमचंद्र : मूसलगाँवकर, पृ. १३८
७९. हेम समीक्षा : मधु सूदन शास्त्री, पृ. ८५-८६
८०. वूलर ने छ: काण्डों को ही ६ ग्रंथ कहा है।
८१. लाईफ ऑफ हेमचंद्र : वूल्हर, पृ. ३७
८२. आचार्य हेमचंद्र : मूसलगाँवकर, पृ. १३९
८३. हेमचंद्राचार्य जीवन चरित : कस्तूरमल बांठिया, पृ. ३०
८४. विश्व साहित्य की रूपरेखा : भगवत्शरण उपाध्याय
८५. संस्कृत साहित्य का इतिहास : कीथ व बलदेव उपाध्याय
८६. आचार्य हेमचंद्र : डॉ. मूसलगाँवकर, पृ. ४७
८७. हेम समीक्षा: मधुमृदन मोदी (गुजराती) पृ. १०४
८८. हेमचंद्राचार्य जीवन चरित : डॉ. वूलर (अनु. बांठिया) पृ. ३१
८९. हेम समीक्षा: मधुमृदन मोदी (गुजराती) पृ. १५१-१५२
९०. आचार्य हेमचंद्र : डॉ. मूसलगाँवकर, पृ. ५१
९१. वही, पृ. ५१
९२. वही, पृ. ५२
९३. स्थविरावली चरित - जाकोबी - इन्ट्रोडक्शन - १६
९४. त्रिशपुच. पर्व १०/१६-१७
९५. वही, १०/३०
९६. लाइफ ऑफ हेमचंद्र : वूलर, पृ. ४८
९७. हेमचंद्र नी कृतिओं : मोतीचंद जी कापड़िया (गुजराती) पृ. ५४
९८. आचार्य हेमचंद्र : डॉ. वि. मा. मूसलगाँवकर, पृ. ११०
९९. त्रिशपुच. अंतिम पर्व - प्रशस्ति - श्लोक - ३

१००. हेमसमीक्षा : मधुसूदन मोदी (गुजराती) पृ. १७९
१०१. आचार्य हेमचंद्र : डॉ. मूसलगाँवकर, पृ. ११७
१०२. छंद शास्त्र, अध्याय - १, श्लोक - १
१०३. छंदोनुशासन की भूमिका : मुनि जिनविजय जी सं. एच. डी. वेलजकर, भारतीय विद्याभवन से प्रकाशित
१०४. शब्दकाव्यछन्दोनुशासनभ्यो डनन्तेर प्रमाणं मीमांस्थत इत्यर्थः। प्रमाण मीमांसा - १/१/१ टीका
१०५. आचार्य हेमचंद्र : डॉ. मूसलगाँकर, पृ. १४२
१०६. आचार्य हेमचंद्र : डॉ. वि. मा. मूसलगाँवकर, पृ. १४२
१०७. वही, पृ. १५१
१०८. पिशेल - ग्रामेटिक दर प्राकृत स्प्राचेन सिद्ध हेमचंद्र - अध्याय - ८
१०९. आचार्य हेमचंद्र : मूसलगाँवकर, पृ. ९२-९३
११०. वही, पृ. १५२
१११. योगशास्त्र प्र - १२, श्लोक - ५५। या.... हेमचंद्रेण सा।
११२. योगशास्त्र - वृत्तिका आदि श्लोक। प्रणम्य..... विद्यास्थते।
११३. आचार्य हेमचंद्र : मूसलगाँवकर, पृ. १५२
११४. अणुव्रत - अहिंसा, सत्य, अस्तय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, गुणव्रत - दिग्विरति, भोगोपभोगमान, अनर्थ दंड, विरमण, शिक्षाव्रत - सामायिक, देशावकाशिक, पोषध, अतिथि, संविभाग
११५. स्थविरावलीचरित : प्रो. याकोबी - बिब्लिथेका इंडिया, पृ. ९६
११६. आचार्य हेमचंद्र : डॉ. मूसलगाँवकर - पृ. ५८
११७. त्रिषष्टिशलाकापुसां दशपर्वो विनिर्मिता।
इदानीं तु परिशिष्ट पर्णस्यामिर्वितन्यते ॥
११८. परिशिष्ट पर्व - प्रो. याकोबी - इन्ट्रोडक्षन, पृ. १०
११९. वही, पृ. ११
१२०. हेलन एम. जोन्सन. त्रिशपुच. बुक २, प्रेफेस २०-४०. ग्रोस १९३१
१२१. वीतराग स्तोत्र, प्रकाश - १, श्लोक - ९
१२२. आचार्य हेमचंद्र, मूसलगाँवकर, पृ. ५९
१२३. हेमसमीक्षाः मधुसूदन मोदी (गुजराती), पृ. २४५
१२४. प्रबंध चिंतामणि : मेरुतुंग, प्रकाश - ४, पृ. ८५
१२५. श्री हिमांशु विजयजी का लेख (श्री विजय धर्मसूरि जैन ग्रंथमाला) पुस्तक - ४६, पृ. ३९७-४१६
१२६. आचार्य हेमचंद्र : मूसलगाँवकर, पृ. ३६१
१२७. हेम समीक्षाः मधुसूदन मोदी (गुजराती) पृ. २३३
१२८. अयोग्व्यवच्छेद द्वात्रिंशिका - श्लोक - १५

१२९. त्रिशपुच. पर्व ७-१०/१८

१३०. इस राजनीतिशास्त्रीय ग्रंथ को जिनविजयजी हेमचंद्रकृत नहीं मानते।

१३१. त्रिशपुच. पर्व ७ १०/१८

१३२. इस राजनीतिशास्त्रीय ग्रंथ को जिनविजयजी हेमचंद्रकृत नहीं मानते।

१३३. इसी नाम का नाटक हेमचंद्र के शिष्य देवचंद्र ने रचा है।

१३४. कलिकाल सर्वज्ञ ऐटले शुं। हीरालाल कापडिया (गुजराती) वर्ष ३, पृ. ५९

१३५. श्रीमद् हेमचंद्राचार्य नी कृतिओं (गुजराती) मोतीचंद्र कापडिया पृ. १९०

3

जैन रामायण का दर्शन

दर्शन क्या है : अतिप्राचीन काल से ही उपनिषदों में तथा अन्यत्र "आत्मा वा अरे दृष्टव्य:, अर्थात् आत्मा ही दर्शन एवं साक्षात्कार का विषय है, यह सिद्धांत मान लिया गया है। भारतीय दर्शन के मूल में विशुद्ध अनुभूत स्वरूप परम सत्य का प्रकाश है।[2] दर्शन[3] की व्याख्या भिन्न-भिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से की है। डॉ राधाकृष्णन ने अपनी पुस्तक इंडियन फिलोसफी में लिखा है— "दर्शन का कार्य जीवन को व्यवस्थित बनाना एवं कर्म का मार्ग प्रदर्शित करते रहना है"।[4] दर्शन जिन्दगी को समझने की एक कोशिश है। यह आवश्यक तथ्यों की जानकारी कर सुव्यवस्थित एवं विवेकशील दृष्टिकोण का निर्माता बनता है। यह कर्मद्वार को खोलता है तथा सत्यों को प्रकट करता है। सत्य के उद्घाटित होते ही मानव कर्मक्षेत्र में कूद पड़ता है। इसीलिए अरस्तू ने दर्शन को सत्य की विवेचना करने वाला कहा है। हम कौन है ? कहां से आए हैं ? यह विशाल संसार क्या है ? संसार से हमारा क्या संबंध है ? अनुभव क्या है ? जीवन क्या है ? जीवन का उद्देश्य क्या है ? उद्देश्य की सिद्धि कैसे होती है ? ये सभी दर्शन के मौलिक प्रश्न है।

साधारणत: दर्शन का अर्थ है— तत्व साक्षात्कार, सभी दार्शनिक अपने साम्प्रदायिक दर्शनों को साक्षात्कार रूप ही मानते आए हैं। साक्षात्कार वह है जिसमें भ्रम या सन्देह को अवकाश न हो तथा साक्षात्कार किये गये तत्व में फिर मत भेद या विरोध न हो।[5]

दर्शन का एक अर्थ और है-वह है- सबल प्रतीति।[6] वाचक उमास्वाति के "तत्वार्थश्रद्धांन सम्पडदर्शनम्" के अनुसार - प्रेमियों की श्रद्धा ही दर्शन है। दर्शन में कल्पना का भी समावेश होता हैं। कल्पनाओं का तथा

सत्य-असत्य एवं अर्द्धसत्य तर्कों का समावेश भी दर्शन के अर्थ में हो गया।[7] यदि किसी आधार में चित्रगत या देहगत मलिनता न रहे तो इस शब्द के श्रवणमात्र के साक्षात् रूप में या परंपरा क्रम से अप्रत्यक्ष ज्ञान का उदय होता है। इसे ही दर्शन कहते हैं।[8] चित्त के कर्तव्य- अकर्तव्यवृत्ति या असंभावना दोष के निवारणार्थ आश्यकता है मनन की। परंतु भारतीय दार्शनिकों का मत है कि मनन के द्वारा आप्तजन से, प्राप्त तत्व का अपरोक्ष ज्ञान पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं किया जा सकता।[9] ऐसे प्रकरणों में योगाभ्यास की आवश्यकता पर बल दिया जाता है।

श्रेतव्य श्रुतिवाक्येभ्यो मन्त्रध्य ओपत्तिभि:
मत्वं व सततं ध्येय: एवं दर्शनहेतव : ॥ [10]

अर्थात् श्रवण, मनन, निदिध्यासन-ये तीनों ही दर्शन के हेतु कहे जाते हैं। इसी प्रकार—'न्यायकुसुमांजलि' में उदयनाचार्य कहते हैं— ''न्यायचर्चेयम ईशस्थ मनन-वय्पदेशभाक श्रवणानस्तरगत'' अर्थात् श्रवण के बाद जो न्यायचर्चा होती है वह मनन का ही अंश है। यह उपासना का ही एक भेद है। दर्शन सोचना, समझना एवं विचारना सिखाता है। दर्शन जीवन धारणाओं का निश्चय करता है। विचारवेत्ता दर्शन को महज बाह्य जगत का व्याख्याकार नहीं मानते, उनके अनुसार दर्शन को यह भी बताना होगा कि बाह्य जगत पर मानव का नियंत्रण कैसे हो। पुनर्निर्माण कैसे संभव हो। लक्ष्य क्या हो,[1] आदि। दर्शन का कार्य गुणनिर्माण है। जिस व्यक्ति का दृष्टिकोण जीवन के प्रति स्वस्थ है वह दार्शनिक है। स्वस्थ दृष्टकोण स्वस्थ क्रिया प्रतिक्रिया को पैदा करता है। स्वस्थ क्रियाएं एवं प्रतिक्रियाएं अनेक स्वस्थ व्यक्तित्वों का विकास-निर्माण करती हैं। प्रकृति ने हमें जीवन दिया है, परंतु जीवन को सुखी, समृद्ध, उन्नत एवं सफल बनाने का मार्ग निर्देशित करने वाला हैं— दर्शन।[12] बाल्टेयर ने कहा है— ''न केवल सत्य'' बल्कि ''शिव'' (कल्याण) भी दर्शन की परिधि में सम्मिलित है।[13]

दर्शन और जीवन : दर्शन एवं जीवन का आपस में घनिष्ट संबंध है।[14] जीवनधारा ही दर्शन है। जीवन ही दर्शन का प्रथम एवं मुख्य वर्ण्य विषय है। दोनों एक दूसरे के अनुपूरक हैं। चाहे शिक्षा हो या व्यवहार हो, चाहे धर्म हो या विज्ञान हो, दर्शन के प्रभाव से कोई मुक्त नहीं हो सकता, जीवन का हर क्षेत्र दर्शन के लिए सामग्री जुटाता है। दर्शन-सत्य से जीवन व्यावहारिक बनता है। इस व्यवहार में समस्यात्मक तथ्य पुन: दर्शन के विचारार्थ प्रस्तुत हो जाते हैं। बस यही प्रक्रिया अनवरत रूप से दोहरायी जाती रहती है। दर्शन की क्रिया मानव शरीर की तरह क्रियाशील है। शरीर का क्रम रक्तसंचार से शाश्वत है। रक्त के स्थिर होते ही देह की सत्ता अस्तित्व एवं उपयोगिता शून्य हो जाती है। ठीक उसी प्रकार जीवन को भी दर्शन से शुद्ध विचार, शाश्वत

दृष्टिकोण, वास्तविक मूल्यों की प्राप्ति होती है और जीवन की सत्ता, अस्तित्व एवं उपयोगिता भी तब तक ही संभव है। इन दोनों प्रणालियों के अभाव में न तो दर्शन का न ही जीवन का अस्तित्व संभव है।

अगर हमारा दर्शन स्वस्थ है तो जीवन भी सुन्दर, स्थायी एवं सुखी, समृद्ध व विकासोन्मुख होगा। अगर जीवन-दर्शन अस्वस्थ है तो हमारा विचार, दृष्टिकोण एवं जीवन विकृत होगा। हमारा दर्शन आशावादी, रचनात्मक एवं सृजनात्मक होना चाहिए। ऐसा दर्शन अमरत्व की राह ले जाने वाला होता है।

जैन दर्शन : डॉ. राधाकृष्णन् ने जैन दर्शन की मुख्य विशेषताए बताते हुए लिखा है— "इसका प्राणिमात्र का यर्थाथ रूप में वर्गीकरण, इसका ज्ञान संबंधी सिद्धांत, जिसके साथ संयुक्त है, इनके प्रख्यात सिद्धांत "स्याद्वाद" एवं सप्तभंगी अर्थात् निरूपण की सात प्रकार की विधियां और इसका संयमप्रधान नीतिशास्त्र अथवा आचारशास्त्र। इस दर्शन में अन्यान्य भारतीय विचार-पद्धतियों की भांति क्रियात्मक नीतिशास्त्र का दार्शनिक कल्पना के साथ गठबंधन किया गया है। अर्थात् जैन धर्म की समस्त दार्शनिक विशेषताएं इन तीन शब्दों में नीहित है। — सम्यदर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चरित्र। इन तीनों के मेल से ही मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है।[16] सुबुद्धि के कारण समयग्ज्ञान की प्राप्ति होगी तथा समयग्ज्ञान से हमें सच्चरित्रता की प्राप्ति होगी तभी मोक्ष का प्रवेशद्वार हमारा स्वागत करेगा। "तत्वार्थश्रद्धान" सम्यग्दर्शन है, जीवादि व्यवस्थित पदार्थों की अवगति ही सम्यग्ज्ञान है तथा संसार से निवृत्ति के अर्थ से ज्ञानी के सुकर्म ही सम्यक्चरित्र है।

सम्यग्दर्शन : जैन दर्शन के दो तत्व हैं — जीव तथा अजीव। पांच अस्तिकाय, छः पदार्थ एवं सात या नौ तत्वों में इन मुख्य दोनो तत्वों का विस्तार समाहित है। [17] जीव, धर्म, अधर्म, आकाश एवं पुद्गल ये पाँच अस्तिकाय हैं। जीव, अजीव, आस्रव, संबर, बंध, निर्जरा, मोक्ष, पाप व पुण्य ये नव तत्व हैं। उपर्युक्त तत्वों की सरल एवं स्पष्ट विवेचना इस प्रकार की गयी है। —

जैन धर्म में मूल दो तत्व हैं—जीव एवं अजीव। इन दोनों का विस्तार पांच अस्तिकाय, छः द्रव्य एवं सात या नव तत्वों के रूप में पाया जाता है। चार्वाक केवल अजीव को पांच मूलभूत तत्व मानते थे। इन दोनों मतों का समन्वय जीव एवं अजीव ये दो तत्व मानकर जैन दर्शन में हुआ। संसार और सिद्धि अर्थात् निर्वाण और बंधन व मोक्ष तभी घट सकते हैं — जब जीव एवं जीव से भिन्न कोई हो। इसलिए जीव एवं अजीव दोनों के अस्तित्व की तार्किक संगति जैनों ने सिद्ध की तथा पुरुष व प्रकृति का संबंध मानकर प्राचीन सांख्यों ने भी वैसे संगति साधी। इसके अतिरिक्त आत्मा को या पुरुष

को केवल कूटस्थ मानने से भी बंधन-मोक्ष जैसी विरोधी अवस्थाएं जीव में नहीं घट सकतीं। इसमें सब दर्शनों से अलग पड़कर, बौद्धसम्मत चित्त की भांति, आत्मा को भी एक अपेक्षा से जैनों ने अनित्य माना एवं सबकी तरह नित्य मानने में भी जैनों को कुछ आपत्ति तो है ही नहीं, क्योंकि बंधन और मोक्ष तथा पुर्नजन्म का चक्र एक ही आत्मा में है। इस प्रकार आत्मा को जैन मतानुसार परिणामी नित्य माना गया। सांख्यों ने प्रकृति—जडतत्व को तो परिणामी नित्य माना था और पुरुष को कूटस्थ, परंतु जैनों ने जड़ और जीव दोनों को परिणामी नित्य माना। इसमें भी उनकी अनेकांत दृष्टि स्पष्ट होती है।

जीव को चैतन्य का अनुभव मात्र देह से ही होता है। जैनमतानुसार — जीव आत्मा देह परिणाम है। नए-नए जन्म जीव ही धारण करता है, इसलिए उसके लिए गमनागमन अनिवार्य है। इसी कारण जीव को गमन में सहायक द्रव्य धर्मास्तिकाय के नाम से और स्थिति में सहायक द्रव्य अधर्मास्तिकाय के नाम से, इस प्रकार दो अजीव द्रव्यों का मानस अनिवार्य हो गया। इसी कारण यदि जीव का संसार हो तो बंधन भी होना चाहिए। वह बंधन ही पुद्‌गल अर्थात् जड़ द्रव्य का है। अतएव पुद्‌गलास्तिकाय के रूप में एक दूसरा भी अजीव द्रव्य माना गया। इन सबको अवकाश देने वाला तत्व (द्रव्य) आकाश है — उसे भी जड़ रूप अजीव द्रव्य मानना आवश्क था। इस प्रकार जैन दर्शन में जीव, धर्म, अर्धम, आकाश एवं पुद्गल, ये पांच अस्तिकाय माने गये हैं। परंतु जीवादि द्रव्यों की विविध अवस्थाओं की कल्पना काल के विना नहीं हो सकती। फलतः एक स्वंतंत्र काल द्रव्य भी अनिवार्य था। इस प्रकार पांच अस्ति-कार्यों के स्थान पर छः द्रव्य भी हुए। जब काल को स्वतंत्र द्रव्य नहीं माना जाता तब उसे जीव एवं अजीव द्रव्यों के पर्याय रूप मानकर काम चलाया जाता हैं।

अब सात तत्व एवं नौ तत्व के बारे में भी थोड़ा स्पष्टीकरण कर लें। जैन दर्शन में तत्व विचार दो प्रकार से किया जाता हैं। एक प्रकार के बारे में हम स्पष्ट हो चुके हैं। दूसरा प्रकार मोक्ष मार्ग में उपयोगी हो उस तरह पदार्थों की गिनती करने का है। इसमें जीव, अजीव, आसुव, वर, बंध, निर्जरा व मोक्ष इन सात तत्वों की गिनती का एक प्रकार एवं उसमें पुण्य एवं पाप का समावेश करके कुल नौ तत्व गिनने का दूसरा प्रकार है। वस्तुतः जीव व अजीव का विस्तार करके ही सात और नौ तत्व गिनाए हैं, क्योंकि मोक्ष मार्ग के वर्णन में वैसा पृथ्थकरण उपयोगी होता है। जीव व अजीव का स्पष्टीकरण तो उधर किया ही है। अंशतः अजीव-कर्मसंस्कार-वन्धन का जीव से पृथक होना निर्जरा है और सर्वांशतः पृथक् होना मोक्ष है। कर्म जिन कारणों से जीव के साथ बंध में आते हैं वे कारण आसव हैं और उसका विरोध संवर हैं। जीव और अजीव कर्म का एकाकार जैसा संवंध वंधन है।

सारांश यह है कि जीव में राग, द्वेष, प्रमादादि जहां तक रहते हैं वहां तक बंध के कारणों का अस्तित्व होने से संसार की वृद्धि हुआ करती है। उस कारणों का विरोध किया जाए तो संसारभाव दूर होकर जीव सिद्धि अथवा निर्वाण अवस्था प्राप्त करता है। निरोध की प्रक्रिया को संबर करते हैं, और केवल विरति आदि से सन्तुष्ट न होकर जीव कर्म से छूटने के लिए तपश्चर्यादि कठोर अनुष्ठान आदि भी करता है, उससे निर्जरा-आदि का छुटकारा होता है और अंत में वह मोक्ष प्राप्त करता है। [18]

सम्यग्ज्ञान : येनयेन प्रकारेण जीवादय: पदाथा व्यवस्थितास्तेन तेनावगम: सम्यग्ज्ञानम्। यह पांच प्रकार का है—मति, श्रुति, अवधि, मन:पर्याय एवं केवल। [19] डॉ. राधाकृष्णन् ने कहा है:—वर्धमान का ज्ञानसंबंधी सिद्धांत उनका अपना है और दर्शनशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए अपना एक विशेषत्व रखता है।[20]

मतिज्ञान : यह साधारण ज्ञान है जो इन्द्रियों के प्रत्यक्ष संबंध द्वारा प्राप्त है। स्मृति, संज्ञा, पहचान, तर्क, आगमन, अनुमान, अभिनिबोध, निगमन, विधि का अनुमान[21] आदि इसी के अंतर्गत आते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान, स्मृति एवं अर्थग्रहण ये मति ज्ञान के तीन भेद हैं।[22] मतिज्ञान इन्द्रियों एवं मन के सहयोग से प्राप्त होता है।[23]

श्रुतिज्ञान : यह लक्षणों, प्रतीकों एवं शब्दों द्वारा प्राप्त होता है। इसके चार प्रकार हैं— संसर्ग, भावना, उपयोग और नय।[24]

अवधिज्ञान : देश-काल की दूरी के उपरांत भी वस्तुओं का जो प्रत्यक्ष ज्ञान है वह अवधिज्ञान है। यह इन्द्रियों से परे का ज्ञान है।

मन: पर्यय ज्ञान : मन: पर्यय, अन्य व्यक्तियों के वर्तमान एवं भूत विचारों का साक्षात् ज्ञान, जैसे टेलीपैथी द्वारा दूसरों के मन में प्रवेश किया जाता है।

केवलज्ञान : सभी पदार्थों एवं उनमें होने वाले परिवर्तनों के संबंध में पूर्ण प्राप्त ज्ञान केवल ज्ञान कहलाता है। [25] यह ज्ञान अनुभवजन्य है, इन्द्रियों से परे है, अवर्णनीय है, यह केवल बंधनमुक्त आत्माओं के लिए ही है।

पुन:ज्ञान के दो प्रकार—प्रमाण एवं नय। नय के विभिन्न प्रकार-नेगमनय, संग्रहनय, व्यवहारनय, श्रजुसूत्रनय, शब्दनय समभिरूढनय और सर्वभूतनय। [26]

नय के दो भेद — द्राव्यार्थक एवं पर्यायार्थक। नय का उपयोग स्याद्वाद परे "सप्तभंगी" में होता है। सप्तभंगी जैन तर्कशास्त्र का पारिभाषिक शब्द है— 1. स्याद् अस्ति 2. स्याद् नास्ति 3. स्याद् अस्ति नास्ति 4. स्याद् अवक्तव्यम् 5. स्याद् अस्ति च अवक्तव्यम् 6. स्याद् नास्ति अवक्तव्यम् 7. स्याद् अस्ति च नास्ति व अवक्तव्यम्।

सम्यग्चरित्र : वे कारण जिनसे जीव कर्मबंधन में आता है आसव कहे गएं हैं उनका विरोध संवर है।[27] मुक्ति के लिए विरक्ति, तप, साधनादि संबर हैं, कठोर तपश्चर्या निर्जरा हैं, अंत में मोक्ष होता है। संसार के कारणों की निवृत्ति के प्रति समुद्यत ज्ञानवान का कर्मादाननिमित्त क्रियोपरम् सम्यक् चरित्र है।[28] महाव्रत, अणुव्रत, गुप्तियों, समितियों, शिक्षाव्रत, गुणव्रत, एवं उनके नियम इस चरित्र के अंतर्गत आते हैं। यह एक तरह से अहिंसा दर्शन का क्रियात्मक पक्ष ही है।

जैन रामायण में दर्शन : निश्चय ही हेमचंद्र ने अपने पूर्ववर्ती जैन रामकथात्मक काव्यों का अध्ययन किया था इसी कारण उनके दर्शन पर रविणेश, स्वयंभू आदि का प्रभाव स्पष्ट रूप मे परिलक्षित होता है। हालांकि हेमचंद्र ने अपनी ''जैन रामायण'' में दार्शनिक शब्दों यथा — अनेकान्तवाद, स्याद्वाद, सप्तभंगी आदि का प्रयोग नहीं किया है फिर भी तात्विक दृष्टि से जैन दार्शनिक मान्यताओं का स्पष्ट विवेचन यत्र-तत्र मिलता है। स्थान-स्थान पर हेमचंद्राचार्य ने जैन धर्मशासन का वर्णन किया है। संपूर्ण ''पर्व''[7] में जिन जैन देवालयों, जिन देवताओं एवं जैन शासनान्तर्गत किये जाने वाले धार्मिक कृत्यों का समावेश किया गया है।

हेमचंद्र कहते हैं, धर्म का अभिमान सर्वोपरि है। अन्य अभिमान नश्वर एवं दुःखदाता हैं। बुरे कर्मों के नाश का केवल एक ही उपाय है— दीक्षा। दीक्षा के द्वारा समस्त दुःखों का नाश संभव हैं।[29] सत्य धर्म का सर्वोपरि अंग है। सत्य के द्वारा बड़ी से बड़ी विजय प्राप्त की जा सकती है। समस्त दिव्यताएं सत्य में निवास करती हैं। वर्षा सत्य के बल पर होती है। देवताओं की सिद्धि का एक मात्र कारण भी सत्य ही है।[30]

जैन धर्म में 'सत्य एवं अहिंसा' दो धुरी चक्र माने गए हैं। सत्य की तरह अहिंसा भी व्यक्ति के जीवन का आवश्यक अंग होना चाहिए हिंसा से विरक्त होना ही, मुक्त होना ही अहिंसा है। भगवान महावीर तथा उनके अनुयायी धर्माचार्यों ने अहिंसा के बारे में कहा है :

किं सुरगिरिणो गरूये। जलनिहिणो किं व होइज्जत गंभीर।
किं गयणाऊ विशलं। को वा अहिंसा समो धम्मो।[31]

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित (पर्व[7]) में हेमचंद्राचार्य ने पशुवध का विरोध[32] करते हुए स्पष्ट धोषणा की है कि पशुओं, बकरे आदि का वध करने वालों का स्थान घोर नरक में होता है।[33] हेमचंद्र कहते हैं कि धर्म की राह पशु का वध करना नहीं है वरन् अहिंसा का पालन सच्चा धर्मपथ है।[34] उन्होंने जैन धर्म को मद्यमांसादि का प्रयोग न करने वाला बताया है जो सत्य है।[35] जैन धर्म के दो पंथ हैं — मूर्तिपूजक एवं मूति की पूजा न करने वाले। हेमचंद्र ने मूर्तिपूजा का पक्ष लिया है। जैन रामायण के अंतर्गत दशरथ, बाली, रावण आदि अनेक राजाओं को हेमचंद्र ने चैत्यों की वंदना करते हुए बताया है।[36]

जैन रामायण में गुरुभक्ति के महत्व को उच्च स्थान दिया गया है। गुरू के साथ-साथ माता-पिता की वन्दना भी जैन धर्म का प्रमुख गुण रहा हैं। जैन रामायण में अनेक स्थलों पर जैन मुनि-वंदना आई है। जैन साधुओं को उच्चासन पर विराजित कर उसकी सेवा सुश्रुषा करने का वर्णन त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित में आता है। [37]

हेमचंद्राचार्य के अनुसार मानवजन्म दुर्लभ है। [38] इस जन्म में सुख-दु:खादि फल पूर्वजन्म-कर्मानुसार मानव को भोगने पडते हैं। सुख एवं दु:ख किसी अन्य की देन नहीं, यह तो मानव के पूर्व कर्मों का ही फल है। [39] हेमचंद्र ने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित पर्व में अनेक पात्रों के पूर्वजन्मों की लम्बी कथाएँ देकर पूर्वजन्म की मान्यता को स्वीकार किया है। [40] आत्मा अनेक जन्मों में भटकती हुई मानवदेह को प्राप्त करती है। हेमचंद्र ने दशरथ [41] आदि अनेक राजाओं के पूर्व जन्म के वृत्तांत जैन रामायण में विस्तारपूर्वक दिए हैं। सीता, अंजना आदि स्त्री पात्रों पर आने वाले दु:खों का कारण उनके पूर्वजन्म में किए गए कर्म ही हैं जिनका फल वे इस मानव जन्म में भुगत चुकी हैं। [42]

जैन धर्म में नमस्कार मंत्र की महिमा सर्वविदित है। [43] इस मंत्र में अरिहंतों को, सिद्धों को, आचार्यों को, उपाध्यायों को एवं सर्व मंगलों में मंगल रूप नमस्कार मंत्र को जैन रामायण में पूर्ण महत्व प्राप्त हुआ है। साधु लोग जिन शासित प्रजावर्ग को नमस्कार मंत्र देकर कृतार्थ करते हैं। हेमचंद्र ने जैन रामायण में नमस्कार मंत्र का प्रभाव प्रदर्शित किया है। इस महामंत्र के प्रभाव से जीवों की गति होती है। पक्षिराज जटायु को गोद में लिए हुए राम ने अंतिमसमय में उसे नमस्कार मंत्र दिया, जिसे पाकर जाटायु देवगति को प्राप्त हुआ। [44]

आचार्य हेमचंद्र ने जैन रामायण में अनेक दार्शनिक मुद्दों पर दृष्टिपात किया है। संक्षेप में उनका दार्शनिक पक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

माया : माया को आचार्य ने मनुष्यमात्र के लिए बाधक तथा पतनोन्मुख कहा है। वे उसे ठगिनी मानते हैं। माया विश्वमानवों को ठगती है। सांसारिक लोग माया से आस्वादित होकर भले ही प्रसन्न होते हैं परंतु अंत में उन्हें पछताना पड़ता हैं। हेमचंद्राचार्य ने माया को इन्द्रजालिक नगरी की तरह बताया है—

सांसारिकसुखास्वादवञ्चितेयं मनोरमा।
जीविष्यति कथं नाथ त्वया तृणव-दुज्झिता ॥ [45]
स ददर्श पुरीं तां व दध्यौ चैतसि विस्मयात्।
मायेयमिन्द्रजालं वा गान्धर्वमथवा पुरम ॥ [46]

जगत् : जैन दर्शन में जगत को मिथ्या माना गया है। हेमचंद्र के अनुसार ज़गत अशास्वत है। जिस तरह सूर्य के उदय होने की क्रिया में ही उसका अस्त होना छिपा हुआ, है ठीक उसी प्रकार जगत के प्रत्येक पदार्थ का नाश असंदिग्ध है।

एवं च दध्यावुदयो यथाह्यस्तं तथाखलु।
निदर्शनमयं सूर्यो धिग्धिक्सर्वमशाश्वतम् ॥[47]

ईश्वर : हेमचंद्राचार्य ने ईश्वर को जगत का रक्षक माना हैं। वह समस्त सिद्धियों का दाता है। ईश्वर ही समस्त जगत के नाथ हैं। ऐसे ईश्वर को कवि ने बार-बार नमस्कार किया है। ईश्वर समस्त जगत के प्राणियों को संसार-समुद्र से पार करते हैं। ईश्वर का नाम सर्वार्थ सिद्धिकारक है। परमात्मा के चरणस्पर्शमात्र से ही मनुष्यों का चित्रनिर्मित हो जाता है। हेमचंद्र परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हे पूज्य जगतपति ! मुझे जन्म-जन्म तक आपकी भक्ति प्राप्त हो।

देवाधिदेवाय जगत्तायिने परमात्मने।
श्रीमते शान्तिनाथाय शोडशायऽ र्हते नमः ॥[48]
श्रीशांतिनाथ भगवन् भवाऽम्भोनिधितारण।
सवार्थसिद्धिमन्त्राय त्वन्नाम्नेऽपिनमोनमः ॥[49]
ये तवाऽष्टविधां पूजां कुर्वन्ति परमेश्वर।
अष्टाऽपि सिद्धियस्तेषां करस्था अणिमादयः ॥[50]
देव त्वत्पादसंस्पर्शादपि यान्निर्मलो जनः।
अयोऽपि हेमीभवति स्पर्शवेधिरसात्र किम् ॥[51]

जीव : हेमचंद्राचार्य ने जैनरामायण में जीव को पंचेन्द्रियों से मुक्त संसारी कहा है। ये पंचेन्द्रियाँ जीव का बाह्य आवरण है। शरीर जीव से भिन्न है। जीवात्मा एवं जड़पदार्थ शरीर दोनो अलग-अलग हैं। जड़ शरीर की मृत्यु के पश्चात् भी जीव का अस्तित्व यथावत् रहता है तथा उसका आभासतत्व शाश्वत है।

जैन रामायण में हेमचंद्र कहते हैं—

"युच्यते न वधः प्राणिमात्रस्यापि विवेकिनाम्।
पञ्चेचेन्द्रियाण्णांहस्त्यादिजीवानां बत का कथा।[52]
एवमुक्तश्च मुक्तश्च सहस्रांशुरदोडवदत्।
न हि राज्येन मे कृत्यं वयुषावाप्यतः परम् ॥"[53]

भक्ति : साधक के परमात्मा तक पहुँचने का अवलंब है— भक्ति। जीव जब विषय-भोग से विरक्त हो जाता है तब उसकी सुषुप्तावस्था समाप्त होकर जागृतावस्था को प्राप्त होता है। भक्ति प्राप्त होने पर आत्माएँ कर्मबंधन का त्याग कर देती हैं।

हेमचंद्र ने जैन रामायण में अनेक स्थलों पर भक्ति-सूत्रों को बिखेरा हैं। उनके अनुसार परमात्मा केवल भक्तिमान् सेवकों पर ही प्रसन्न होते हैं। परमात्मा के अनुग्रह को प्राप्त करने के लिए उनकी भक्ति आवश्यक है। हेमचंद्र ने परमात्मा से निवेदन किया है कि संसार के अबोध प्राणियों को आप भक्तिदान दें। भक्ति के सहारे ही संसार के मायाजाल में पड़े हुए अबोध प्राणियों का उद्धार संभव है। इस प्रकार जैनाचार्य हेमचंद्र ने भक्ति को भक्त से उच्चस्थान दिया हैं।

सिंहोदरोऽपि प्रत्यूचे मृत्यानां भरतोकपि हि।
भक्तानामेव कुरुते प्रसांदं नाऽन्यथा पुनः। [54]
भूयो भूःभूयः प्रार्थये त्वामिदमेव जगद्विभो।
भगवन् भूयसी मूयात्त्वयि भक्तिर्भवे भवे। [55]

मोक्ष : जैन धर्म एक प्रकार से सभी धर्माचार्यों, साधुओं यहाँ तक कि धर्मसंस्थापकों, तीर्थंकरों आदि के मोक्षमार्ग की व्याख्या करता है। मोक्ष अर्थात् मुक्ति। संसार के आवागमन से छूटकर परमात्मा के ज्योति स्वरुप में मिलने का नाम है मोक्ष। हेमचंद्र ने जैन रामायण में अनेक साधुओं, राजाओं आदि के मोक्षगमन का वर्णन किया है। मोक्ष के लिए तपश्चर्या आवश्यक है। तप का प्रतिफल है— मोक्ष। हेमचंद्र कहते हैं— जो लोग अरिहंतो की स्तुति करते हैं उन्हें मोक्ष प्राप्त होता है।

'इति निर्वेदमापन्नः प्राव्राजीत् सद्य एव सः।
तपस्तीव्रतरं तप्त्वा सिद्धिक्षेत्रमियाम च। [56]
नरेन्द्र आदित्व्यरजा वालिने बलशालिने।
दत्त्वा राज्यं प्रवव्राज तपस्तप्त्वा ययो शिवम। [57]
व्याघ्रयैवं खाद्यमानोऽपि शुक्लध्यानमुपेयिवान।
तत्कालोत्केवलो मोक्षं सुकोशल मुनिर्ययो। [58]'

भक्ति के दो प्रकार हैं— सगुण तथा निर्गुण। सगुण भक्ति के अंतर्गत नाम-जप का विशेष महत्व है। महात्मा कहते हैं कि संपूर्ण संसार नाम से बंधा है। मूक चौपाये पशु भी जब मालिक से अपना नाम सुनते हैं, तो वशीभूत होकर आदेश का पालन करने लग जाते हैं। हेमचंद्र ने जैन रामायण में नाम-जप की महिमा का गुणगान किया है। उनके अनुसार सभी सिद्धियों को प्राप्त करने का मुख्य आधार है नाम-जप। जैन रामायण में मंत्रजप पर विशेष बल दिया गया है। ईश्वर का नामजप युगों-युगों के बंधन को काटने वाला है। हेमचंद्र ने मंत्रस्वरुप परमात्मा के नाम को बार-बार नमस्कार किया है।

श्री शातिनाथ भगवन् भवाऽम्मोनिधितारण।
सर्वार्थसिद्धमंत्रा त्वन्नाम्नेऽपि नमोनमः॥ [59]
दशकोटि सहस्त्राणि जपो यस्य फलप्रदः।
आरेभिरे ते जपितुं तं मन्त्रं षौडशाक्षरम्॥ [60]

स्वर्ग-नरक एवं कर्मफल : सांसारिक मानवों के कर्मफल है— स्वर्ग एवं नरक। समस्त जैन अरिहंतों, चक्रवर्तियों, वासुदेवों, प्रतिवासुदेवों आदि का मोक्ष या स्वर्ग-नरक में जाने का निर्णय जैन रामायण में प्राप्त होता है। हेमचंद्र ने राम, लक्ष्मण, दशरथ, रावण, हनुमान एवं अनेक राम-कथा पात्रों के कर्मफल पर भी विचार किया है। अशुद्ध कार्य करने वाले मरने के पश्चात् नरक में जाते हैं। नरक भी विभिन्न प्रकार के हैं। दुष्कर्मों के अनुसार

नरक में जाने पर यमदूतों द्वारा जीव को सजा मिलती है। यमदूत पृथ्वी लोक से जीवों को बंधन युक्त कर नरक में ले जाते हैं। वहाँ उन्हें कर्मानुसार अनेक प्रकार के नरकों का दंड भुगतने हेतु दिया जाता है। हेमचंद्र ने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व-७ में सात प्रकार के नरक बताए हैं— गरम-गरम शीशा पिलाना, पत्थरों पर पछाड़ना, फरसी के द्वारा शरीर छेदना आदि सजाएँ नरकों में दी जाती हैं। प्राणियों के कर्मों की सजा पूर्ण होने पर उन्हें नरक से छुटकारा मिलता है। तत्पश्चात् वे जीव पुनः संसार में जन्म लेते हैं।

हेमचंद्र कहते हैं कि प्राणियों को मृत्यु के पश्चात् नरक की यातनाओं से बचने के लिए सात्विक कर्म करने चाहिए। रावण जैसा पराक्रमी भी अपने कर्मों के कारण सातवें नरक में गया। उसे अग्निकुंड में डाला गया। उच्च स्वर से चिल्लाते उसे वहाँ से निकालकर गरमगरम तेल के कड़ाह में डाला गया। वहाँ से फिर उसे चिरकालिक भट्टी में डाला गया तब "तड़-तड़त-तड़" ऐसी आवाज फूट रही थी। हेमचंद्र कहते हैं कि उन्हें इस प्रकार की भयंकर यातनाएँ देने का कारण उनके दुष्कर्म हैं। अतः प्राणियों को दुष्कर्म से बचना चाहिए।

भूरनन्दनराजोडभूद्विपद्याडजगरो बने।
दग्धो दावेन सोऽयासीद् द्वितीयां नरकावनिम्। [61]
माहेन्द्रकल्पे देवोडभूश्चयुत्वा चेदृगिहा भवः
भ्रान्त्वा नरकमेषोडभूत कपिस्तेद्वैरकारणम्। [62]
विधाय नरकावासांस्तेन वैतरणीयुतान्।
छेदभेदादिदुखं तौ प्राप्येते सपरिच्छदौ ॥ [63]
त्रपुपानाशिलास्फालपर्युच्छेदादिदारुणान्
ददर्श नरकांस्तत्र सप्तापि दशकंधरः।. [64]

वेदमान्यता : जैन रामायण में हेमचंद्र ने वेद तथा शास्त्रों को सम्मानीय स्थान दिया है। हेमचंद्र ने वेदादि प्राचीन ग्रंथों को महान बताया है। उन्होंने ऋग्वेद के पाठ करने तथा सुनने के महत्व को स्पष्ट किया है। उनकी दृष्टि में वेद को मिथ्या मानने वाले एवं उस पर अविश्वास करने वाले पापात्मा हैं। हेमचंद्र वेद-शास्त्रों को धर्मस्वरुप मानते हैं।

तत्रान्यदाहमभ्यागामद्राक्षमथ पर्वतम्।
व्याख्यानयन्तमृग्वेदं शिष्याणां शेमुषीजुषाम। [65]
गुरुर्धर्मेपिदेष्टैव श्रुतिर्धर्मात्मकैव च।
द्वयमप्यन्यथा कुर्वन् मित्र मा पापमर्जय॥

भाग्यवाद : भाग्यवाद हिंदू संस्कृति का मूल तत्व रहा है। हेमचंद्र ने अपनी रामकथा में भाग्यवाद को स्वीकार किया है। दुःख का कारण भले ही जन्मजन्मांतर के कर्म हैं परंतु उसमें भाग्य का भी हाथ रहता है। हेमचंद्र ने भगवान राम द्वारा सीता के त्याग को सीता के भाग्य का खेल कहा है।

सद विमृश्य कर्तुस्टेडप्यविमुश्य विद्यापिता।
मन्ये भदभाग्यदोषेम निदेषिस्तवं सदाव्यासे। [67]

अहिंसा: परमो धर्म: जैन दर्शन का मूल मंत्र है। आज भी हिन्दुस्थान के कोने-कोने में जैनों द्वारा स्थापित गौशालाएँ एवं मूक पशुशालाएँ खोली हुई हैं जिनमें पशुओं का रक्षण-पोषण उपयुक्त सूत्र को प्रमाणित करता है। हेमचंद्र ने पशु वध का विरोध किया है। हिंसा का फल घोर नरक बताया गया है। हेमचंद्र कहते हैं कि पशुओं का रक्षण करना धर्म का अंग है, न कि पशुओं का वध करना। हालांकि सभी धर्म अहिंसा में विश्वास करते हैं परंतु जैन धर्म उस सिद्धांत पर अन्य धर्मों से एक कदम आगे हैं।

धर्म: प्रोक्तोह्यहिंसात्: सर्वज्ञैस्त्रिजागद्वितै:।
पशुहिंसात्मकाद्यज्ञात स कथम् नाम जायताम्। [68]
क्रव्यादतुल्या ये कुर्युर्यज्ञं छागवधादिना
ते मृत्वा नरके घोरे तिष्ठैयु: र्दुखिनश्चिरम्। [69]
घटप्रभृतिदिव्यानि वर्तन्ते हन्त सत्यत:
सत्याद् वर्षति पर्जन्य सत्यातसिद्धयंति देवता:। [70]
मद्यमासं परीदार प्रधानं धर्म:। [71]
यज्ञेवधाय चानीतान् सैनिकेरिव तद्द्विजै:।
पशुनारटतोडपस्यं पाशबद्धाननागस:॥ [72]

संत व सत्संग की महिमा : जैन रामायण में हेमचंद्र ने सज्जनो के ग्रंथों का बखान किया है। सज्जनों के उपकारी साधु वंदनीय होते हैं। सज्जन साधुओं का प्रेमभाव से आदर व सम्मान करते हैं। संत लोग किसी के दु:ख को देख नहीं सकते अर्थात दु:खी आत्माओं के उपकार का इन्तजार ही उनका जीवन धर्म बताया गया है। संतों की उपस्थिति में उनके सभी संगी सुखद जीवन व्यतीत करते हैं। संतो को नम्रता से प्यार होता है, अभिमान उन्हें स्पर्श नहीं करता।

प्राग्जन्म सोऽवधेर्ज्ञात्वाम्येत्यावंदिष्ट तं मुनिम्।
वंदनीय: सतां साधुर्ह्युपकारी विशेषत:। [73]
वंदित्वा तं महासाधुमहामान्योपकारिणम् [74]
तददु:खदु:खित इव तदा चास्तमगाद्रवि:।
सन्त: सतां न विपदं विलोकयितुमीश्वरा:॥ [75]
नृपतिर्मोचयामास धृतान्वान्दरिपुनपि
को वा न जीवति सुखं पुरुषोत्तमजन्मनि। [76]
संतो संगो हि पुण्यत:। [77]

गुरु भक्ति : जैन धर्म में गुरु की महिमा सर्वसिद्ध है। हेमचंद्र ने गुरु के लिए साधु शब्द प्रयुक्त किया है। क्योंकि जैन धर्म में दीक्षित होने वाला प्रत्येक साधु गुरुवर होता है। गुरु से ज्ञानोपदेश सुनना, गुरु की आज्ञा का

पालन, गुरु से धर्ममार्ग ज्ञात करना, जीवन भर गुरु का सम्मान करना आदि हेमचंद्र के अनुसार धर्म के प्रमुख अंग हैं। इस तरह त्रिषष्टिशलाकपुरुषचरित, पर्व-७ में गुरुमहिमा पर सम्यक् बल दिया गया है—

आसने चासयामास तं मुनिं स्वयमर्पिते।
प्रणम्य च दशग्रीव : स्वयमुर्व्यामुपाविशत॥ [78]
लज्जानम्राननः सोऽपि नमाम पितरं मुनिम्। [79]
गुरुर्धर्मोपदेष्टैव श्रुतिर्धर्मात्मकैव च।
द्वयमप्यन्यथा कुर्वन् मित्र मा पापमर्जय॥ [80]

इस प्रकार त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व-७ का दार्शनिक अन्वेषण करने पर ज्ञात होता है कि हेमचंद्र ने स्थान-स्थान पर आध्यात्मिक विचारों के साथ जैन दर्शन का सुर भी अप्रत्यज्ञ रुप से कृति में समाहित किया है। सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान तथा सम्यक् चरित जैन दर्शन के आधार बिंदु हैं परंतु इस कृति में जैन आचार्य ने अपने दार्शनिक विचार संकेतात्मक शैली में ही सूक्ष्म रुप में प्रस्तुत किए हैं। पुनर्जन्म, कर्म, आत्मा आदि पर अल्प विचार दिए हैं, परंतु तपस्या, अहिंसा, स्वर्ग-नरक जैसी धारणाओं पर हेमचंद्र ने व्यापक व विस्तृत विचार प्रस्तुत किए हैं।

वैसे दार्शनिक विचारों में हेमचंद्र ने अपने पूर्ववर्ती जैन रामकथाकारों का अनुकरण नहीं किया है। क्योंकि जैनाचार्य रविणेश ने तो अपने पद्मपुराण में जैनधर्म दर्शन का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है।

विश्व के किसी भी विशुद्ध धर्म अध्यात्ममय जीवन-दर्शन की गहराई में उतरने से प्रतीत होता है कि वहाँ एक अजीब-सा साम्य है, एकता तथा निर्विवाद समभाव है। यह एकत्व ही उस परम पिता परमात्मा की ओर उन्मुख करता है। पर उपरी सतह सांप्रदायिक जीवन दर्शन की सतह में सागर सी अनेक लहरों का सा वैंभिन्न स्वर बढ़ता भी जाता है। अनेक धर्मग्रंथों के अवलोकन से यह बात स्पष्ट होती है।

: संदर्भ-सूची :

१. तुलसी का शिक्षा दर्शन : डॉ. शंभूलाल शर्मा, पृ. २
२. भारतीय दर्शन की रुपरेखा : पं. बलदेवप्रसादमिश्र, पृ. १८
३. व्युत्पत्ति—"दृश्यतेऽनेनेतदर्शनम्"-दर्शन का कार्य है दृष्टिगोचर व स्थूल दृष्टि से परे है उन दोनों को देखो, अंग्रेजी के फिलोसफी शब्द की उत्पत्ति लेटिन शब्द फिलोसफी से हुई इसका अर्थ है-ज्ञान से प्रेम। भारतीय दर्शन भी इसी तथ्य को स्वीकारता है-"नाहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" (गीता - ४/३८)।
४. Indian Philosophy. Vol - II. P. 770
५. जैन धर्म का प्राण: पं. सुखलाल संघवी, पृ. २०

६. वही, पृ. २०
७. दर्शन एवं चिंतन : पं. सुखलाल संघवी, पृ. ६८
८. भारतीय दर्शन की परंपरा : आचार्य बलदेवउपाध्याय, पृ. १८
९. वही, पृ. १९
९. वही, पृ. २०
१०. Philosophy is the Science which considers truth Aristotle.
११. John Devey - Democracy and Education P-378
१२. Seneca - It is the bounty of nature that we live but of Pholosophy that we live well, whichis, In turth a greater benefit than life it self.
१३. Voltaire - The discovery of what is true and the prac tice of which is good, are the two most important sub jects of Philosophy.
१४. When Philosophy is alive. It can not beremet from mmthe life of the people. Indian Philosphy Vol IInd P-770- Dr. Radhakrishnan.
१५. भारतीय दर्शन (हिन्दी अनु.), राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, सं. १९६६, पृ. २७०
१६. तत्वार्थ सूत्र १/१ पर स्वार्थसिद्धि टीका
१७. एकद्विगिचतु : पंचषट्सप्ताष्टनवास्पदा
अपर्यायापि सत्तेवानन्तपर्यायभाविनी, हरिवंशपुराण, ५८/५
जिनसेनकृत हरिवंशपुराण (८४ वि. सं. में रचित)
१८. जैन धर्म का प्राण (पं. सुखलाल), भूमिका: दलसुख मालवणिया सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, संस्करण १९६५, पृ. ९-११
१९. मतिथुतावधिभन : पर्ययकेवलानिज्ञानम्। तत्वार्थसूत्र १-९
२०. भारतीय दर्शन (हिन्दी अनुवाद), पृ. ९-११
२१. मति: स्मृति: संज्ञा चित्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरमा-तत्वार्थ सूत्र १/१३. पंचास्तिकाय
२२. तत्वार्थ सूत्र १/१३, समय, बार - ४१
२३. इन्द्रियैर्मनसा च यथास्वमर्थान्मन्यते, अनयामनुते, मननमांत्र वा मति: (तत्वार्थ सूत्र - १/९ पर स्वार्थसिद्धि)
२४. पंचास्तिकाय, समयसार, ४३।
२५. सर्वद्रव्यपयपिषु केवलस्य - तत्वार्थसूत्र १/२९
२६. नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्र शब्दसभिरुढैवम्भूत नया : तत्त्वार्थ सूत्र १/३३
२७. आस्त्रवनिरोध : संवर : १ - तत्वार्थसुत्र ९११
२८. संसार कारणनिवृत्तिं प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवत : कर्मादाननिमित्तक्रियोपरम : सम्यक् चरित्रम् ११-त्तत्वार्थ सूत्र १/१ परसर्वार्थसिद्धि टीका
२९. न पोरुषाऽभिमानोऽत्र किंतु धर्माभिमानिता।

नमस्कारं विना सर्वममादत्स्व यथारुचि। त्रि.शि.पु.च.पर्व ७-प/ ३५ पृ. ३३०

३०. घट प्रमृतिदिव्यानि वर्तन्ते हन्त सत्यत:।
सत्याद् वर्षति पर्जन्य : स्तयात्सिद्धयंति देवता :। त्रि.श.च.पर्व ७-२ ४४५ पृ. ११८

३१. सभी धर्मो की दृष्टि से अहिंसा का विचार - श्रीमद् मित्रानंद सुरीश्वरजी महा. सा. पृ. ९

३२. पशुनारटतोडपश्यं पाश्वद्वाननागस:
यज्ञे वधाय चानीतान् सैनिकैरिव तदद्विजै : ॥ त्रि. श. च. २/३६४ पृ. १०२

३३. क्रव्यादतुल्या ये कुर्युयज्ञं छागवधा दिना।
ते मृत्व नरके घोरे तिष्टेयर्दु : खिनश्चिरम्। वही - २/३७१ पृ. १०४

३४. धर्म : प्रोक्तो हृयहिंसात्: सर्वज्ञैस्त्रि जगद्विते :
पशुहिंसात्मकाद्यज्ञात स कथं नाय जायताम् ॥ वही - २/३७९ पृ. १०६

३५. मद्यमांसपरीहारप्रधानं धर्म - वही - ४/९९ पृ. २३७

३६. स्वप्नादनन्तरं तस्माच्चैत्यपूजां चकार सा। वही - १ १४६ पृ. २९
नित्यं प्रदक्षिणीकुर्वन् सर्वचैत्यान्यवन्दत। वही - २/१६७ पृ. ६५
अर्हतामृषमादीनां पूजां सोडष्टविद्यां व्यधात्। वही २/२६६ पृ. ८४
मुनिसुव्रतदेवार्चा स्थापयित्वार्चय: स्म ते। वही ३/१९३ पृ. १९६
पुरुचैत्येषु सवेर्षु श्रीमतामर्हतां तदा।
विशेषेणाष्टधा पूजां स्नात्रपूर्व व्यधानृप : ॥ वही ४/१८८ पृ. २५४
वंदित्वा तं महासाधुमसामान्योपकारिणम्। १/१५८ पृ. १२

३७. एवमुक्त्वा नमस्कृत्य पितरौ सानुजोऽपि स:/त्रि. श. च. २/२२ पृ. ३७
आसने चासमायार्स तं मनिं स्वयमर्पिते।
प्रणम्य च दशग्रीव: स्वयमुर्व्यामुपाविशत। वही। २/३४२ पृ. ९८
लज्जानम्राननः सोऽपि नमाम पिंतर मुनिम। वही २/३४२ पृ. ९८
प्रणम्य पितरौ तत्राज्नावासगृहं ययौ। वही ३:२२२/पृ. २०२
गरुर्धर्मोपदेष्टैव। वही /२/४३३ पृ. ११४

३८. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित पर्व - ७/५/२८६ पृ. ३७९

३९. सीताप्यूचे न तै दोषो न च लोकस्य कश्चन।
न चान्यस्यापि कस्यापि किं तु मत्पूर्वकर्मणाम्। वही ९/२२९ पृ. ६८४

४०. प्राग्जन्मनि मया तेपे तपोऽल्पं तेन मे।
नंदीश्वरार्हदयात्रायां नापूर्यंत मनोरथ: ॥ वही - १/४० पृ. ८
अथवा यदमेव पूर्व दु:कर्मचरितं मया।
तस्यापि भूयस्तु भवेष्वन्व भव चिरम् ॥ वही ४/४ पृ. ४१
अथवा नैव दोषस्ते दोषो मत्पूर्व कर्मणाम् वही ३/१०१ पृ. १०८

४१. त्रि. श. पु. च. पर्व ७. - ४/३८१. ४/३९२ से ८१८ तक

४५. त्रिशपुच. ७-४/२१ पृ. ३०२

४६. वही ५/१४५ पृ. ३५२
४७. त्रिशपुच पर्व-७ - १०/११० पृ. ७०६
४८. वही - ७/३३० पृ. ५६०
४९. वही - ७/३३१ पृ. ५६०
५०. वही - ७/३३२ पृ. ५६०
५१. वही - ७/३३४ पृ. ५६१
५२. त्रिशपुच. पर्व-७ - २१० पृ. ७३
५३. वही - २/३५५ पृ. १०१
५४. त्रिशपुच. पर्व - ७वही - ७/३३० पृ. २०
५५. वही - ७/३३७ पृ. ५६१
५६. वही - १/४१ पृ. ९
५७. वही - २/१७० पृ. ६५
५८. वही - ४/६४ पृ. २३०
५९. वही - ७/३३१ पृ. ५६०
६०. वही - २/२८ पृ. ३८
६१. त्रिशपुच. पर्व ७/४/४१० पृ. २९८
६२. वही - १/५६ पृ. १२
६३. त्रिशपुच. पर्व २/१४१ पृ. ६०
६४. वही - २/१४५ पृ. ६१
६५. वही - २/४१८ पृ. ११३
६६. वही - २/४२३ पृ. ११४
६७. वही - ९/२२ पृ. ६४२
६८. त्रिशपुच. पर्व ७/२/३७९ पृ. १०६
६९. वही - २/३७१ पृ. १०४
७०. वही - २/४४५ पृ. ११८
७१. वही - ४/९९ पृ. २३७
७२. वही - २/३६४ पृ. १०२
७३. त्रिशपुच. पर्व १/४९ पृ. १०
७४. वही - १/५८ पृ. १२
७५. वही - ३/१३३ पृ. १८५
७६. वही - ४/१८९ पृ. २५४
७७. वही - ६/९७ पृ. ४३२
७८. त्रिशपुच. पर्व ७-२/३४२ पृ. ९८
७९. वही - २/३५२ पृ. १००
८०. वही - २/४२३ पृ. ११४

4

जैन रामायण की कथावस्तु

उपोद्घात : साहित्यशास्त्रान्तर्गत विषयवस्तु के तीन प्रकार माने गए हैं। प्रथम-ऐतिहासिक या पौराणिक विषय वस्तु, द्वितीय—काल्पनिक विषय वस्तु तथा तृतीय—मिश्रित विषय वस्तु। विषय वस्तु को दो भागों में विभाजित किया गया है— १. आधिकारिक एवं २. प्रासंगिक। पुनश्च प्रासंगिक विषय वस्तु को दो भागों में विभाजित किया गया है—पताका एवं प्रकरी। कथानक, कथावस्तु, विषयवस्तु, वृत्त या वृत्तांत, इतिवृत्त, प्रतिपाद्य, कथा, कथावृत्त आदि सभी शब्द समानार्थी हैं। वृत्ति का मूल कथ्य उन शब्दों के शीर्षकान्तर्गत समाहित किया जाता है।

हेमचंद्र कृत त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व-७ ऐतिहासिक या पौराणिक कथावस्तु को लिए हुए हैं। जैन रामायण में हेमचंद्र ने भले ही कल्पना को समाविष्ट किया हो फिर भी हम उसे काल्पनिक या मिश्रित कथावस्तु की श्रेणी में नहीं रख सकते। इसका प्रमुख कारण यह है कि जैन रामायण का कथावृत्त भी प्रारंभ से अंत तक पौराणिक रामकथा की भावभूमि के इर्द गिर्द चक्कर काटता है।

जैन रामायण में रामकथा आधिकारिक है जो अपने में अनेक अवान्तर कथाओं को समेटे हुए है। भांमडल-चंद्रगति विद्याधर कथा, वज्रकर्ण-सिंहोदर कथा, कल्याणमाला-वालिखिल्य, रूद्रभूति कथा, कपिलब्राह्मण कथा, अनंतवीर्य कथा, जितपद्मा प्रकरण, रत्नकेशी- विद्याधर प्रकरण, मुनिसकलभूषण उपदेश कथा, आदि पताका एवं प्रकरी के रुप हैं।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व-७ के लगभग ३००० श्लोकों में हेमचंद्र ने रामकथा को सविस्तार प्रस्तुत किया है जिसे प्रमुख शीर्षकान्तर्गत यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) रावण-जन्म : शिक्षा एवं दिग्विजय

(अ) माता-पिता एवं जन्म : पाताललोक के राजा सुमाली की रानी प्रतिमति के गर्भ से पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम रत्नश्रवा था।[1] रत्नश्रवा जब विद्यासिद्धिरत था तभी एक विद्याधर कुमारी ने उसके समीप आकर प्रणय हेतु निवेदन किया। [2] उस कुमारी का नाम कैकसी था। जो व्योमबिन्दु नामक कौतुक नगर के राजा की पुत्री थी।[3] सुमाली-पुत्र रत्नश्रवा ने विधिपूर्वक केकसी से विवाह किया तथा पुष्पोतक नगर में रहता हुआ सुखोपभोग करने लगा। [4] एक रात केकसी ने सपने में भयंकर सिंह को अपने मुख में प्रवेश करते देखा। [5] पति से प्रात:काल निवेदन करने पर रत्नश्रवा ने कहा— तुम्हारे स्वप्न का कारण—तुम स्वाभिमानी पुत्र को प्राप्त करोगी। [6] गर्भयुक्त केकसी उस समय अहंभावयुक्त, शत्रुओं के प्रति कठोर भाव वाली, वाचाल आदि लक्षणों से युक्त नजर आने लगी। [7] समय पूर्ण होने पर कैकसी ने शत्रुओं के आसन को हिला देने वाले एवं बारह हजार वर्ष की आयु वाले पुत्र को जन्म दिया। जिसका नाम रत्नश्रवा ने दशमुख दिया। [8]

जन्मते ही समीप पड़े हुए मणियों के हार को दशमुख ने खींचकर गले में डाल लिया जिससे उसका मुंह नव मणियों में प्रतिबिम्बित हुआ। इसी कारण पिता ने उसका नाम "दशमुख दिया।[9] " उस समय ऋषियों ने भविष्यवाणी की, कि यह बालक प्रतिवासुदेव होगा।[10] तत्पश्चात् केकसी से क्रमश: कुंभकर्ण, चंद्रनखा, एवं विभीषण ने जन्म लिया।[11] अर्थात् जैन रामायण के अनुसार रत्नश्रवा रावण के पिता एवं केकसी उसकी माता थी। रावण की वीरता के लक्षण गर्भ में ही दीखने प्रारंभ हो गये थे।

(ब) पूर्वभव :

जैनरामायण : हेमचंद्र ने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व-७ के १०वें सर्ग में रावण के पूर्वभव का वृत्तांत दिया है। केवली मुनि कहते हैं कि रावण पूर्वभव में प्रभास नामक ब्राह्मणपुत्र था जिसके माता-पिता कुशध्वज एवं सावित्री थे। [12] यही प्रभास इससे पूर्व मृणालकंद पतन में शंभू नामक राजा था जिसकी रानी का नाम हेमवती था। [13] इस शंभू राजा ने श्रीभूति की रुपवती पुत्री वेगवती को बलात्कार पूर्वक भोगकर उसके पिता श्रीभूति का वध कर दिया। [14] वेगवती ने उस समय शंभू राजा (अगले जन्म का रावण) को शाप दिया कि मैं अगले जन्म में तेरे वध के लिये अवतरित होऊँगी। वही श्रीभूति पुत्री वेगवती अगले जन्म में जनक पुत्री सीता हुई जो रावण की मौत का कारण बनी। [15]

(स) बाल लीला एवं विद्याओं की सिद्धि : मेघवाहन रावण का पूर्वज था जिसका एक माणिकमय हार रत्नश्रवा के पास था। रावण का जन्म होने पर वह हार समीप ही पड़ा था जिसे शिशु रावण ने खींचकर अपने कंठ

में धारण कर लिया था। [16] किशोरावस्था में रावण ने अपने शत्रुओं के संहारार्थ विद्याओं को सिद्ध किया इस हेतु वह भीमारण्य में गया। [17] प्रारंभ में उन्होंने अष्टाक्षरी विद्या को सिद्ध किया।[18] फिर षोडसाक्षरी विद्या की साधना करते समय जंबूद्वीप के यक्ष ने विघ्न डालना प्रारंभ किया। [19] रावण सहित सभी भाई मौन एवं स्थिर रहे। यक्ष की सुन्दर पत्नियों ने नर्तन किया, कामेच्छा जाहिर की, स्वयं यक्ष ने भी उन्हें भगाने की चेष्टा की, परंतु असफलता ही हाथ लगी। [20] यक्ष ने अपनी माया से सेवकों द्वारा पहाड़ों को उखाड़ रावणादि के सामने फेंका, सर्प एवं सिंह के रुप में उनके आगे अनेक प्राणियों को उपस्थित किया [12]। रीछ, बाघ, बिडाल आदि द्वारा भयभीत किया [22] गया, यहाँ तक कि रावण के माता-पिता, भाई-बहन आदि को बाँधकर उनके सामने करुण विलाप करते हुए उपस्थित किया। परंतु रावण अविचल रहा। [23] अंत में यक्षसेवकों ने रावण के मायावी माता-पिता का रावणादि के समक्ष शिरोच्छेदन कर दिया। [24] परंतु रावण नि:शंक एवं अविचलित रहा। फिर यमदूतों ने विभीषण, कुंभकर्णादि के मस्तक काटकर रावण के आगे फेंक दिए, स्वयं रावण का मस्तक काटकर कुंभकर्ण एवं विभीषण के आगे फेंका फिर भी रावण विद्यासिद्धि में ध्यानमग्न ही था। [25] उसका तत्कालीन धैर्य भूधर-तुल्य था। [26] उसी समय प्रकाश बिखराती हुई एक हजार विद्याएँ रावण के सम्मुख उपस्थित हुईं। [27]

ऐसे किशोर रावण ने दिशाओं की साधन से श्रेष्ठ चंद्रहास खड्ग को भी सिद्ध कर दिया। [28]

(द) विवाह एवं पुत्र प्राप्ति : सुरसंगीत नामक नगर के विद्याधर मय की पत्नी हेमवती से मंदोदरी नामक पुत्री का जन्म हुआ।[29] मंत्री की सलाह-अनुसार हजार विद्याओं की सिद्धिप्राप्त कर्ता रावण के नगर स्वयंप्रभ के लिए मय राजा ने मंदोदरी सहित सपरिवार प्रस्थान किया। [30] शुभ दिवस देखकर सुमाली एवं मय राजाओं ने रावण एवं मंदोदरी का विवाह किया। [31] मंदोदरी के साथ क्रीडारत रावण ने मेघरथ पर्वत पर छ: हजार कन्याओं को देखा। [32] रावण के रुप पर मोहित हो वे सभी कन्याएँ रावण से परिणय हेतु प्रार्थना करने लगीं। [33] जिनमें मुख्यत: सुरसुन्दरी पुत्री पद्मावति, मनोवेगा एवं बुध की पुत्री अशोकलता, कनकपुत्री विद्युत्प्रभा, आदि थीं। [34] उन सभी कन्याओं का रावण से गाँधर्व विवाह हुआ। [35] सुग्रीव की बहन श्रीप्रभा का विवाह भी रावण से हुआ। [36] अनेक राजकुमारियों को रावण ने बलात् हरण कर अपनी पत्नी बनाया।[37] नित्यालोक विद्याधर की पुत्री रत्नावली का विवाह भी रावण से हुआ।[38]

इस प्रकार मंदोदरी, पद्मावति, अशोकलता, विद्युत्प्रभा, श्रीप्रभा एवं रत्नावली ये सभी रावण की पत्नियाँ थी। इनके साथ छ: हजार गाँधर्व विवाह

वाली कन्याएँ भी उसकी पत्नियों में समाविष्ट थीं। रावण की पत्नी मंदोदरी से मेघवाहन एवं इन्द्रजीत दो पुत्र उत्पन्न हुए।[39]

(य) रावण का प्रताप : दिग्विजय के लिये प्रस्थान किए हुए रावण ने अनेक विद्याधरों को वश में किया। अपनी पूजा में विघ्नरुप सेनायुक्त सहस्रांशु को रावण ने जिन्दा पकड़ लिया।[40] यमराज को भी युद्ध में पछाड़ दिया।[41] रावण ने भयंकर दुर्धलपुर के किले को जीता।[42] वहाँ उसे सुदर्शन चक्र प्राप्त हुआ।[43] रावण का इन्द्र से भयंकर युद्ध हुआ जिसमें रावण ने इन्द्र को हराया एवं पकड़ कर कारावास में डाल दिया।[44] ऐसी जैन रामायण की अनेक कथाएँ रावण के प्रताप को स्पष्ट करती हैं। रावण विकट योद्धा एवं दिग्विजयी था। वह चतुरंगिणियों का अधिपति था। इस प्रकार रावण यहाँ अपरिमित शक्ति का निकाय माना गया है।

(२) राम-जन्म : शिक्षा-दीक्षा एवं किशोरावस्था का पराक्रम

(अ) राम-जन्म की परिस्थितियाँ : हेमचंद्र ने रामजन्म के पूर्व का जो चित्रण किया है उससे ज्ञात होता है कि रावण लंका का राजा था परंतु लगभग दक्षिण भारत के आधे भाग पर उसका शासनाधिकार था।[45] मिथिला में उस समय जनक राजा थे।[46] राजाओं के आपसी विवादों का प्रमुख कारण राज्य या कन्याओं का आदान-प्रदान था। चारों और हिंसाचार फैल रहा था जिसे रोकने हेतु जैन साधु उपदेश कर रहे थे।[47] अनेक राजा जैन मुनियों के उपदेश सुनकर संयमव्रत धारण कर रहे थे।[48] विभिन्न प्रकार के जैन-महोत्सवों यथा अष्टाह्निका, संयममहोत्सव आदि का आयोजन हो रहा था।[49]

निर्बलों का जीवन कष्टमय था एवं बलवान राजा अत्याचार करते थे। स्त्रियों की दशा अच्छी नहीं थी। सुकृत कार्य करने पर भी उन्हें सम्मान प्राप्त नहीं था। नघुष राजा की वीरंगना रानी सिंहिका ने जब पति की अनुपस्थिति में शत्रुओं को मार भगाया तो इस कृत्य से क्षुब्ध होकर राजा ने उसका त्याग कर दिया। राजा के अनुसार यह कार्य स्त्रियोचित नहीं था।[50] जबकि सिंहिका पतिपरायण एवं सती नारी थी।[51] रावण जैसा अत्याचारी राजा अपनी मृत्यु की पंडितों की भविष्यवाणी मात्र से निर्दोष दशरथ एवं जनक राजा का वध करने हेतु तैयार हो गया था अर्थात् अत्याचारों की कोई सीमा नहीं थी। वस्तुत: जैनधर्म मय वातावरण होते हुए भी समय संत्रास एवं अशांतिप्रद था।

(आ) माता-पिता : राजा दशरथ का विवाह दर्भस्थल नगर के राजा सुकोशल की रानी अमृतप्रभा से उत्पन्न पुत्री अपराजिता से हुआ।[52] साथ ही कैकेयी एवं सुप्रभा नामक अन्य राजपुत्रियों से भी दशरथ ने विवाह किया।[53] अपराजिता से पद्मतुल्य पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम राम दिया।[54] अत: राम के पिता दशरथ एवं माता अपराजिता थी। सुमित्रा से लक्ष्मण एवं कैकयी से भरत, सुप्रभा से शत्रुघ्न का जन्म हुआ।[55]

(इ) राम जन्म की परिस्थितियाँ : एक दिन अपराजिता ने स्वप्न में हाथी, सिंह, चंद्र एवं सूर्य को देखा। यह स्वप्न बलदेव के जन्म को सूचित करने वाला था। उस समय ब्रह्मलोक का कोई देव उसकी कोख में अवतीर्ण हुआ। इस प्रकार अपराजिता ने राम को जन्म दिया।[56]

रामजन्म के अवसर पर दशरथ ने गरीबों को दान दिए।[57] नागरिकों ने बहुत बडा उत्सव आयोजित किया क्योंकि नगरजनों की खुशी दशरथ से भी अधिक थी।[58] उत्सव में नगरजन राजमहलों में दूर्वा, पुष्प, फलादि ले जा रहे थे, सभी स्थानों पर मधुर गीत गाए जा रहे थे। स्थान - स्थान पर केसर छिडका जा रहा था एवं तोरण की पंक्तियाँ शोभायमान थीं।[59] अन्य राजा अयोध्या में जन्मोत्सव पर उपहारादि लेकर आ रहे थे।[60] राजा दशरथ ने उस समय जैन चैत्यों में अर्हन्तों की अष्टप्रकारी पूजा की। उस समय समस्त कैदियों को कारावास से मुक्त कर दिया।[61]

(ई) जन्मदिन :

अथापराजितान्येर्धुगजसिहेन्दुभास्करान्।
स्वप्नेऽ पश्यन्निशाशेषे बलजन्माभिसूचकान्।[62]

उपर्युक्त श्लोकानुसार हेमचंद्र ने राम के जन्म की कोई तिथि या दिवस का निर्धारण नहीं किया है। एक दिन का प्रयोग कर हेमचंद्र ने निश्चित समय से किनारा ले लिया है।

(उ) नामकरण : हेमचंद्र के अनुसार स्वयं दशरथ ने अपने पुत्रों का नामकरण किया। दशरथ की नजरों में लक्ष्मी का निवास कमल पुष्प है (जिसे पद्म भी कहते हैं।) वही अतिसुन्दर होने से अपराजिता के पुत्र का नाम ''पद्म'' दिया। यही ''पद्म'' लोक में ''राम'' नाम से प्रसिद्ध हुआ।[63] सुमित्रा के पुत्र का नाम दशरथ ने ''नारायण'' रखा जो लोक में ''लक्ष्मण'' नाम से विख्यात हुआ।[64] इसी प्रकार कैकेयी के पुत्र का नाम भरत एवं सुप्रभा के सुपुत्र का नाम शत्रुघ्न रखा गया।

(ऊ) बालक्रीडा : बाल्यकाल में राम-लक्ष्मण दशरथ की दो भुजाओं के तुल्य थे।[65] दरबार में दशरथ की गोद को सुशोभित करते है।[66] नीला व पीला वस्त्र धारण किए हुए उन राम, लक्ष्मण के चलने मात्र से पृथ्वी काँप उठती थी।[67] समस्त कलाओं को उन्होंने शीघ्र ही सीख लिया।[68] बचपन में खेल-खेल में अपनी मुष्ठियों के प्रहार से पर्वतों को भी चूर-चूर कर देते थे।[69] कसरत शाला में धनुष की प्रत्यंचा - चढ़ाते हुए उन्हें देख सूर्य भी कंपित हो उठता था।[70] शस्त्रकुशलता उनके लिए कौतुक मात्र थी।[71] इस प्रकार राम व लक्ष्मण बाल्यावस्था में ही अतिपराक्रमी दिखते थे।

(ए) शिक्षा-दीक्षा : हेमचंद्राचार्य राम-लक्ष्मण की शिक्षा-दीक्षा पर साधारणत: मौन हैं। वे मात्र इतना ही संकेत देते हैं कि उन्होंने समस्त कलाओं

को प्राप्त किया।[72] उनकी शस्त्रकुशलता असीम थी।[73] उनकी शस्त्र कुशलता एवं बाहुबल के कारण दशरथ स्वयं को देव एवं असुरों से अजेय मानता था।[74]

(ऐ) वीरता की झलक : किशोरावस्था से ही राम की वीरता के लक्षण उनमें दिखने लगे थे। एक बार अर्धबर्बर देश के मयूरमाल नगर के म्लेच्छ राजा आतरंगतम ने जब जनक पर भयंकर आक्रमण किया तो दशरथ जनक की सहायतार्थ ससैन्य जाने को उद्यत हुए।[75] उस समय राम ने कहा- पिताजी, म्लेच्छों को छेदने की आज्ञा मुझे दीजिए। मेरी विजय के समाचार आपको शीघ्र ही मिल जाएँगे।[76] दशरथ ने उन्हें आज्ञा दे दी। तभी राम ससैन्य अपने भ्राताओं सहित म्लेच्छों से युद्धार्थ रवाना हुए। वहाँ जाकर युद्धभूमि में देखते ही देखते म्लेच्छों की सेना भाग गयी।[77] इसी वीरता से चमत्कृत हो जनक ने मन ही मन अपनी पुत्री सीता राम को देने का निश्चय किया।[78] वस्तुतः राम की वीरता बाल्यकाल से ही लक्षित हो रही थी।

(३) धनुष प्रकरण एवं राम सीता विवाह :

(अ) जनक की सहायतार्थ राम लक्ष्मण का गमन : पूर्व में हम बता चुके हैं कि जनक के सहायतार्थ राम व लक्ष्मण गए थे।[79] राम ने जब म्लेच्छों के दाँत उखाड़ दिए[80] तब उनकी वीरता को देख जनक अचंभित हो गए।[81] जनक राम की इस वीरता की प्रशंसा अपनी रानी के समक्ष भी करते हैं।[82]

(आ) राम को सीता समर्पण का जनक का निर्णय : जैन रामायण के अनुसार राम द्वारा म्लेच्छों से जनक को मुक्ति मिलते ही जनक ने सीता का ब्याह राम से कर देने का निश्चय कर लिया था।[83] इधर जब चंद्रगति सीता को अपने पुत्र के लिये माँगता है तब जनक स्पष्ट कहते हैं कि मैं सीता को राम के लिए दे चुका हूँ। वे यहाँ तक कह उठते हैं कि कन्यादान एक बार ही होता है।[84] वस्तुतः जैन रामायण के अनुसार राम की किशोर वय में ही जनक ने सीता को मन से राम को दे दिया था।

(इ) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित का भामंडल-चंद्रगति विद्याधर प्रकरण : जैन रामायण में सीता विवाह से संबंधित यह प्रसंग इस प्रकार है— जनक द्वारा सीता को राम के लिए देने के निश्चय के उपरांत सीता की सुन्दरता को देखने के लिये नारद ने जनक के कन्यागृह में प्रवेश किया।[85] विकराल रुप नारद को देखकर सीता भयग्रस्त हो गई। तभी द्वारपालों ने दौड़कर नारद को पकड़ लिया। नारद उनसे छुड़ाकर वैताढय पर्वत पर पहुँच गए।[86] अपमान का बदला लेने हेतु नारद ने सीता का सुन्दर चित्र बनाकर भामंडल को दिखाया जिसे देखते ही वह व्याकुल हो गया। भामंडल की व्याकुलता को जानकर उसके पिता चंद्रगति ने नारद को बुलाया एवं संपूर्ण वृत्तांत जाना।[87] तत्काल चपलगति को जनक का हरण कर प्रस्तुत करने का आदेश चंद्रगति ने दिया। तदनुसार जनक को प्रातः ही चपलपति ने चंद्रगति के समक्ष प्रस्तुत कर दिया।[88]

रथनपुर के राजा चंद्रगति ने सीता को भामंडल के लिए देने को कहा परंतु जनक ने सीता को राम को देने की जानकारी दी। उनके अनुसार अब यह कार्य असंभव है।[89] उस पर चंद्रगति ने कहा कि हजारों यक्षों से अधिष्ठित, तेजवान, बज्रावर्त एवं अर्णवावर्त नामक दो धनुषों को आप लेकर जाओ, अगर दशरथ पुत्र राम इन दोनों में से किसी एक की भी प्रत्यंचा चढ़ा ले तो आपत्ति नहीं होगी।[90] मजबूर जनक को यह शर्त स्वीकार करनी पड़ी।[91]

(ई) जैन रामायण का धनुष यज्ञ एवं राम विवाह प्रसंग : बज्रावर्त एवं अर्णवावर्त धनुष लेकर जनक मिथिला आए। चंद्रगति भी साथ में आया। प्रातःकाल होने पर धनुष की पूजा की गई। फिर धनुष को मंडप में रखा गया।[92] जनक के द्वारा बुलाये गये अनेक विद्याधर राजा मंच पर बैठे हुए थे।[93] उस समय आभूषण पहने देवी तुल्य सीता सखियों सहित मंडप में आई। सीता ने राम को मन में रखकर धनुषकी पूजा की। भामंडल सीता को देखते ही कामातुर हो गया।[94] तभी जनक के द्वारपाल ने घोषणा की कि— हे विद्याधरों एवं पृथ्वीपति राजाओ, इन दो धनुषों में से एक पर भी जो प्रत्यंचा चढ़ाएगा वही हमारी पुत्री सीता का पति होगा।[95] घोषणा के बाद एक-एक कर राजा धनुष के निकट आए परंतु सर्पों से आवृत्त उस धनुष को स्पर्श करने की भी उनकी हिम्मत नहीं हुई। आखिर "राम" धनुष के समीप आने लगे। उनके धनुष की तरफ आने पर स्वयं जनक, चंद्रगति एवं समस्त विद्याधर आदि उन्हें शंका की दृष्टि से देखने लगे।[96] तभी राम ने इन्द्र जैसे बज्र को उसी तरह शांत सर्प एवं अग्नियुक्त वज्रावर्त धनुष को उठाकर तुरंत उसकी प्रत्यंचा चढ़ा दी तथा आकर्ण खींचकर भयंकर आवाज करते हुए उसे हिला दिया।[97]

उसी समय सीता ने "स्वयंवरस्त्रजं रामे विक्षेप मैथिली" अर्थात् माला राम के गले में डाल दीं। तभी लक्ष्मण ने दूसरे धनुष अर्णवावर्त को तुरंत उठा लिया। वहाँ उपस्थित विधाधरों में से अनेक ने अपनी अठारह कन्याएँ लक्ष्मण को सौंप दीं।[98] उसके बाद जनक के संदेश भेजने पर दशरथ ने सपरिवार आकर राम का विवाह सीता के साथ किया। भद्रा का विवाह भरत से हुआ। फिर दशरथ पुत्र व पुत्रवधुओं सहित पुनः अयोध्या पहुँचे।

(४) राम के तिलक का आयोजन और उनका अयोध्या से प्रस्थान :

(क) तिलक की प्रेरणा : दशरथ ने चैत्य महोत्सव आयोजित किया।[99] कंचुकी द्वारा स्नात्रजल प्रथम पट्टरानी को न पहुँचाने पर पट्टरानी ने फाँसी लगाकर आत्महत्या का निश्चय किया। तभी दशरथ वहाँ पहुँचे एवं स्वयं को अपराधी वता अनिष्ट दूर किया।[100] कंचुकी को राजा ने पूछा तो वह बोला— "दैवं बार्द्धकं मेडपराध्यति" अर्थात् वृद्धत्व अपराधी है जो मुझे आया है। उसके वृद्धत्व को देख दशरथ ने भी वृद्धत्व के पूर्व ही मोक्षार्थ प्रयत्न करने का सोचा।[101] तभी वहाँ सत्यभूति संघ के चार मुनि आये व दशरथ को

देशना सुनाई।[102] उन चार मुनियों ने दशरथ, भामंडल, सीता, जनक आदि का पूर्वभव सुनाया। संवेग प्राप्त दशरथ ने तुरंत दीक्षा लेने का विचार कर राम को राज्यभार देने का निश्चय किया।[103] राजाने अपने मन की बात रानियों, पुत्रों, मंत्रियों आदि सभी से कही।[104] वस्तुतः राम के राजतिलक की प्रेरणा का कारण कंचुकी के वृद्धत्व एवं मुनियों की देशना से दशरथ का प्रभावित होना था।

(ख) तिलक संबंधी निर्णय तथा राम, लक्ष्मण और सीता : कैकेयी को ज्ञात हुआ कि राजा दीक्षा ले रहे हैं तथा राम का राजतिकल होने जा रहा है तो उसने तुरंत अपना पूर्व में प्राप्त वरदान राजा से माँगा जिसमें उसने भरत को राज्य देने की बात रखी।[105] राजा ने कैकेयी को मुँहमाँगा वरदान दे दिया एवं राम, लक्ष्मण को बुलाकर कहा–

अस्या सारथ्यतुष्टेन दत्तः पूर्व मया वरः ॥
सोऽयं भरतराज्येन कैकेय्या याचितोऽधुना ॥[106]

अर्थात् दशरथ ने राम, लक्ष्मण को समझाया कि युद्ध में सहायक हुई कैकेयी का अमानती वरदान उसने माँगा है। तदनुसार वह भरत के लिए राज्य माँगती है। यह सुनते ही राम प्रसन्न हुए एवं बोले कि पराक्रमी भरत के लिए राज्य की याचना अच्छा कार्य है।[107] राम कहते हैं— इस कार्य के लिए पिताजी द्वारा मुझे पूछना मेरी आत्मा को दुःखी करता है।[108] परंतु यदि पिताजी एक चारण को भी राज्य दें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।[109] मेरे में एवं भरत में कोई अंतर नहीं।

भरतो डप्यहमेवास्मि निर्विशेषाबुभो तव।
अतोड भिषिच्यतां राज्ये भरतः परया मुदा ॥[110]

दशरथ राम के ऐसे शब्द सुनकर गद्‌गद हो गए एवं भरत का राज्याभिषेक करने हेतु आदेश दिया। परंतु भरत के आनाकानी करने पर राम ने उन्हें समझाया कि पितृ-वचन को सत्य करने हेतु तुम्हें राज्य को ग्रहण करना चाहिए "स्त्यापयिंतुं तातं स्वयं राज्ययुद्धह"। फिर भी भरत तैयार नहीं हुए तब राम ने सोचा, क्यों न मैं वन में चला जाऊँ। यह सोच राम दशरथ से कहने लगे— भरतो मयि सत्यसौ, राज्यं नादास्यते तस्माद्वासाययाम्यहम ।[111] वस्तुतः जैन रामायण सें राम का बनगमन राम की स्वेच्छा से है किसी के दबाव या आदेश से नहीं। फिर राम भरत को राज्याधिष्ठित करने के लिए दशरथ को प्रणाम कर धनुषबाण लेकर बनवास को रवाना हुए।[112]

प्रस्थान से पूर्व अपराजिता को प्रणाम कर राम बोले— मैं पिता की प्रतिज्ञा को सत्य करने हेतु वन में जा रहा हूँ "सत्यापयितुं सन्धां नस्मै राज्यमदात्पिता"। हे माता! भरत भी मेरी ही तरह तुम्हारा पुत्र है— "मातार्यथाहं तनयों भरतोडपि तथैव ते।" हे माँ, मेरे वियोग में तुम कायर मत बनना अर्थात् धैर्य रखना। राम कहते हैं कि सिंह का पुत्र अकेला वन में जाता

है परंतु सिंहनी खेद नहीं करती।[113] हे माता। पितृ ऋण एवं वरदान की सिद्धि के लिए मैं वनगमन कर रहा हूँ। इस प्रकार अपराजिता को समझाकर अन्य माताओं को प्रणाम कर राम ने वन में प्रस्थान किया।[114]

स्वयं के दीक्षा लेने एवं राम को राज्य देने तथा पुनः भरत को राज्य देने का निर्णय दशरथ लक्ष्मण को भी सुनाते हैं।[115] परंतु लक्ष्मण की इस पर कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं होती। परंतु जब राम व सीता जंगल के लिए प्रस्थान करते हैं तो लक्ष्मण का हृदय उद्वेलित हो उठता है। पिता की सरलता व माता कैकेयी की वक्रता को वे समझ लेते हैं। लक्ष्मण सोचते हैं, क्यों न मैं भरत के राज्य को हरण कर पुनः राम को देदूँ।[116] पुनः सोचा अरे! ऐसा ठीक नहीं। पिताजी को दुःख न हो, भरत राजा हो— "तातस्य मा स्म भुद्दुःखं राजास्तु भरतोडपि हि" यही ठीक है। अंत में लक्ष्मण ने निर्णय किया कि "अहं त्वनुगमिष्यामि राम-पादान्पदातिवत्" मैं तो सैनिक की तरह पैदल ही राम का अनुगमन करूँगा।[117] वे तुरंत दशरथ की आज्ञा लेकर माँ सुमित्रा के पास पहुँचे एवं कहने लगे— मैं राम का अनुसरण करूँगा क्योंकि आर्य राम के बिना में नहीं रह सकूँगा।[118] सुमित्रा ने लक्ष्मण को आज्ञा दे दी। लक्ष्मण प्रसन्न होकर बोले— हे माता। यह उत्तम कहा, उत्तम कहा "तदं साध्वम्ब, साध्वम्ब"। फिर अपराजिता के पास आज्ञा लेने पहुँचे। अपराजिता ने उन्हें रोकना चाहा पर लक्ष्मण उन्हें समझाकर,[119] प्रणाम कर राम व सीता के पास पहुँचे।[120] धनुष-बाण लेकर राम के साथ लक्ष्मण ने भी वन में प्रस्थान किया।

सीता को जानकारी मिली कि पतिदेव राम वन हेतु प्रस्थान कर चुके हैं तब उन्होंने दूर से ही दशरथ को प्रणाम किया एवं अपराजिता से राम के साथ जाने हेतु आज्ञा माँगी।[121] अपराजिता ने सीता को समझाया कि तुम जन्म से ही उत्तम रीति से पत्नी हो एवं प्यार युक्त रही हो, इस जंगल में पैदल चलना तुम्हारे लिए कठिन होगा। तुम्हारा कोमल शरीर जब गर्मी एवं भयंकर शीत को सहन नहीं कर सकेगा तो राम के लिए दुःख ही होगा।[122] अतः तुम्हें कष्ट से बचाने के लिए मैं वन जने की आज्ञा नहीं देती। "न निषेधं न चानुज्ञां यान्त्यास्ते कर्तुमुत्सहे"। परंतु सीता अपने निश्चय पर अडिग रही।[123] पुनः अपराजिता को प्रणाम कर राम का ध्यान करती हुई वन गमनार्थ रवाना हो गयी। अयोध्या के नर-नारियों ने उस महासती को कष्टपूर्वक जाते हुए देखा तो वे भी शोक से विह्वल हो गए।[124]

(ग) अभिषेक संबंधी निर्णय एवं अपराजिता (कौशल्या) व सुमित्रा : पिता की आज्ञा स्वीकार कर राम ने जब माँ कौशल्या को स्वयं के वन जाने व भरत को राजा बनाने के समाचार सुनाए तो राम के वन में जाने की कल्पना मात्र से अपराजिता मूर्छित हो गई। दासियों ने उसे चन्दनजल-सिंचन कर सचेत किया।[125] होश आने पर अपराजिता कहने लगी-में राम के

बिना कैसे जिऊँगी। राम का दू:ख में कैसे सहन करूँगी। वह स्वयं से कहती है कि पुत्र वन को जाएगा एवं पति दीक्षा लेंगे लेकिन मैं अभागिन जिन्दा रहूँगी। हाय में ऐसी वज्र की क्यों बनी हूँ—

वनं व्रजिष्यति सुतः पतिश्च प्रव्रजिष्यति।
श्रुत्वाडप्येतन्न यद्दीर्णा कौशल्ये वज्रमय्यसी ॥ [126]

सीता जब वन गमनार्थ आज्ञा लेने जाती है तो अपराजिता उसे गोद में बिठाकर कहती है— राम तो पुरुषसिंह हैं, पर लाडिली, तू पैदल कैसे चलेगी। [127] तेरा सुकोमल शरीर राम के दु:ख का कारण होगा। मैं तुम्हें आज्ञा देना नहीं चाहती।[128] निष्कर्षतः अपराजिता को अभिषेक निर्णय पर राम के वन जाने से भारी दु:ख हुआ। सुमित्रा लक्ष्मण की माता थी। लक्ष्मण अपने बड़े भाई की सेवार्थ जा रहा है। वे कहती हैं— "साधु वत्सासि मे वत्सो ज्येष्ठं यदनुगच्छति" [129] अर्थात् मेरा पुत्र बड़े पुत्र का अनुसरण करेगा यह उत्तम है। हे पुत्र, तुम शीघ्र जाओ, क्योंकि राम काफी आगे निकल गये होंगे -

मां नमस्कृत्य वत्सोऽद्य रामभद्रश्चिरं गतः।
अतिदूरे भवति ते मा विलम्बस्व बत्स तत् ॥ [130]

माँ के इस प्रकार के वचनों के सुनकर लक्ष्मण के मुँह से निकल पड़ा "इदं साध्वम्ब इदं [131] हे माता तुम धन्य हो। अस्तु, राम-अभिषेक के स्थान पर राम वनवास हो जाने पर अपराजिता एवं सुमित्रा दोनों की प्रतिक्रिया राम के प्रति संयमित एवं भरत के प्रति उदार रही है जिसका हेमचंद्र ने सूक्ष्म चित्रण किया है।"

(घ) भरत एवं शत्रुघ्न : दशरथ ने जब स्वयं के दीक्षित होने एवं राम को राज्य देने की जानकारी भरत को दी तब उन्होंने भी दशरथ के साथ दीक्षा की इच्छा व्यक्त की। भरत कहने लगे, पिता के बिना मैं जिन्दा नहीं रह सकूँगा।[132] मुझे दो कष्ट होंगे, एक तो पिता का विरह एवं दूसरा सांसारिक ताप। [133] राम ने जब भरत को राज्य देने की सहमति दे दी तो भरत बोले— मैं पूर्व में व्रत ग्रहण करने की याचना कर चुका हूँ तब मैं राज्यग्रहण नहीं करूँगा।[134] दशरथ व राम के अधिक आग्रह पर भरत कहने लगे— "उचितं ददतां राज्ममाददानस्य मे न तु"[135] अर्थात् मुझे राज्य उचित नहीं लग रहा है। राज्य-ग्रहण करने पर मैं माँ का पिछलग्गू कहलाऊँगा।[136] यह कहकर रुदन करते हुए भरत राम व पिता दशरथ के चरणों में गिर पड़े।

भरत अपनी माता कैकेयी के इस अधमकृत्य से खिन्न हुए। त्यागी भरत ने राज्य को आखिर दम तक नहीं स्वीकारा। राम के राज्याभिषेक प्रकरण से उनके वनगमन तक शत्रुघ्न का उल्लेख त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित में नहीं है। अर्थात् उनके बारे में हेमचन्द्र मौन हैं।

(ड़) राम के तिलक की तैयारियाँ और कैकेयी : कैकेयी को जब ज्ञात हुआ कि महाराज दशरथ प्रव्रज्या ग्रहण कर रहे हैं व भरत भी व्रत ग्रहण करने जा रहे हैं तो सोचने लगी कि मुझे पति एवं पुत्र दोनों से हाथ धोना पड़ेगा। उपाय के लिए कैकेयी ने अपना अमानती वरदान राजा से देने को कहा। [137] स्वीकृति मिलने पर वह बोल उठी— "विश्वंम्भरामेतां भरताय प्रयच्छ तत्"— अगर आप संयम ग्रहण कर रहे हैं तो संपूर्ण पृथ्वी भरत को दीजिए। [138] दशरथ ने वरदान स्वीकार किया परंतु भरत ने राज्य ग्रहण नहीं किया। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित के अनुसार कैकेयी ने केवल भरत हेतु राज्य माँगा, राम हेतु वनवास नहीं।

(च) कैकेयी की माँग और राम-लक्ष्मण-अपराजिता-(कौशल्या) सुमित्रा : हेमचंद्र ने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित में कैकेयी को दशरथ से केवल एक वरदान माँगते हुए बताया है और वह है "भरत के लिए राज्य।" कैकेयी की इस माँग पर राम-लक्ष्मण-अपराजिता एवं सुमित्रा पर होने वाली प्रतिक्रिया पर इस उपप्रसंग में विचार किया जा रहा है।

राम कैकेयी की माँग "भरत को राज्य" के लिए स्वाभाविक रूप से सहर्ष तैयार हो गए। वे कहते हैं - मेरे भाई भरत के लिए माता द्वारा राज्य की याचना करना उत्तम है। राम के अनुसार "मेरे में एवं भरत में कोई अंतर नहीं"। भरत का अभिषेक सानंद सोत्साह हो, यही राम की इच्छा रही। [139] राम को जब ज्ञात हुआ कि भरत राज्य ग्रहण नहीं कर रहा है तो वे भरत को समझाते हैं तथा निर्णय लेते हैं कि मेरे यहाँ रहते भरत राजा नहीं बनेगा अत: मैं वन को जाऊँगा। [140] निष्कर्षत: कैकेयी की माँग पर राम क्रोधित न होते हुए खुश होते हैं कि मेरा छोटा भाई राजा होगा। भरत राज्य ग्रहण करें इसलिए ही वे त्यागमय जीवन बिताकर वन जाने का निर्णय स्वेच्छा से लेते हैं।

क्रोधावतार लक्ष्मण कैकेयी की माँग पर जल-भुन गये। वे कहने लगे— "पिताजी सरल स्वभाव के हैं, यह (कैकेयी) वक्र स्वभाव की है। वरदान पहले से भी माँग सकती थी। अब कौनसा वरदान माँगने का समय था। [141] पुन: कुछ विचार कर सोचते हैं— ठीक ही हुआ, पिताजी को दु:ख होगा अत: भरत भले ही राजा हो। वस्तुत: कैकेयी की माँग पर लक्ष्मण क्षुब्ध हैं परंतु धैर्य धारण कर शांत हो जाते हैं। अपराजिता को जब वस्तुस्थिति की जानकारी मिली तब वे अचानक मूर्छित हो गई एवं पृथ्वी पर गिर पड़ी। [142] दासियों ने उन्हें सचेत किया तो बोल उठी—" यह मूर्छा ही मेरा सुख है। कैसे जीऊँगी। मेरी छाती वज्र की क्यों बनी है? [143] अपराजिता कैकेयी की माँग से असहमत थी। क्योंकि भरत के राज्य न करने की आशंका से ही तो राम वन में जा रहे थे। अपराजिता के लिए दशरथ की दीक्षा व राम-वनवास दोनों ही दु:सह वियोग के कारण थे। फिर भी धैर्य धारण कर अपराजिता ने राम को वनगमन की आज्ञा दी।

सुमित्रा कैकेयी के कृत्य से खुश तो नहीं है पर उसे गर्व था कि मेरा पुत्र लक्ष्मण बड़े भाई राम का अनुसरण कर रहा है। वह लक्ष्मण से शीघ्र राम के साथ जाने का आग्रह करती है।[144] इस प्रकार सुमित्रा गर्वशीला नारी की साक्षात् प्रतिमा साबित हुई है।

(५) राम का परिभ्रमण (अयोध्या से चित्रकूट तक)

(क) भरत द्वारा राम को वापस लाने का प्रयास : (राम लक्ष्मण एवं सीता का गंभीरा नदी को पार करना) राम, लक्ष्मण एवं सीता ने जब वनवास के लिए प्रस्थान किया तब अयोध्या वासियों की भारी भीड़ उनके पीछे चल पड़ी जो कैकेयी को दोष दे रही थी।[145] दशरथ भी राम के पीछे चल दिए।[146] राम ने ऐसा देखकर दशरथ एवं समस्त नगरजनों को समझाकर अयोध्या भेजा एवं आगे चलने लगे।[147] इधर अयोध्या में भरत कैकेयी पर एवं स्वयं पर बार बार क्रोधित हो रहे थे तथा राज्य ग्रहण करना उन्होंने उचित नहीं समझा।[148] दशरथ से रहा न गया, उन्होंने पुन : सामंतसचिवों को राम लक्ष्मण को अयोध्या लाने हेतु राम के पीछे भेजा परंतु राम नही लोटे। यह देख-अयोध्यावासी भी राम के साथ-साथ चलने लगे।

चलते हुए वे सब पारिजात पर्वतों के जंगल में पहुँचे। वहाँ सबने भयंकर प्रवाहमयी ''गंभीरा'' नदी को देखा।[149] राम ने पुनः आए हुए सामंत— सचिवों को दशरथ एवं भरत की सेवा करने की सीख देकर विदा किया।[150] वे सभी नागरिक-सचिवादि स्वयं को धिक्कारते, रोते हुए वापस चले। तब राम, लक्ष्मण व सीता ने गंभीरा नदी पार की।

(ख) राम का चित्रकूट पहुँचना : राम लक्ष्मण एवं सीता ''गंभीर'' नदी को पार कर आगे बढ़े। आगे गमन करते हुए— ''सौमित्रिमैथिलसुताहितोऽथ रामो गच्छन्तीत्य गिरिम्ध्वनि चित्रकूटम्''।[151] अर्थात् पृथ्वी पर दैवतुल्य राम मार्ग में चित्रकूट पर्वत पर आए। चित्रकूट पर्वत को पार कर काफी समय पश्चात् वे अवंति देशं के एक क्षेत्र में पहुँचे।

(ग) राम के वनगमन के पश्चात् अयोध्या में होने वाली घटनाएँ :
(१) राम का वनवास और दशरथ : सामंत-सचिवों आदि को दशरथ ने राम को पुनः अयोध्या लाने हेतु उनके पीछे भेजा था परंतु उन्होंने खाली हाथ लौटकर दशरथ को संपूर्ण जानकारी दी।[152] तब दशरथ ने भरत से कहा कि हे भरत, राम लक्ष्मण नहीं आए हैं अतः तुम राज्यग्रहण करो और मेरी दीक्षा में बाधक मत बनो।[153] राजा के आग्रह पर भी भरत नहीं माने। अब कैकेयी एवं भरत दशरथ की आज्ञा लेकर पुनः राम को लौटाने वन में जाते हैं परंतु पुनः खाली हाथ लौटते हैं। उन्हें राम के बिना आए देख अत्र दशरथ ने ''सत्यभूति'' से दीक्षा ग्रहण कर ली।

महामुनेः सत्यभूतेः पाशर्वे दशरथोऽप्यथ।
भूयसा परिवारेण समं दीक्षामुपाददे।[154]

(२) राम का वनगमन और भरत : राम के वनगमन के पश्चात् दशरथ ने भरत को जब राज्य ग्रहण करने हेतु आग्रह किया तब भरत ने स्पष्ट कहा— मैं किसी भी हालत में राज्य ग्रहण नहीं करूँगा एवं स्वयं जाकर राम को अयोध्या लाऊँगा। [155] स्वयं की इच्छा थी ही तथा कैकेयी ने भी आग्रह किया, तब भरत एवं कैकेयी राम को लाने हेतु वन में जाते हैं। [156] अस्तु, राम के जंगल में जाने के पश्चात् भरत लगातार राम को अयोध्या लाने की योजना बनाते रहे। राज्यग्रहण करने की इच्छा उनकी अंत तक नहीं रही।

(३) राम वनगमन और कैकेयी : जब सुमंत जंगल से राम के बिना लौट आया तथा भरत ने भी राजपद पर पदासीन होने के लिए मना कर दिया। तब कैकेयी ने दशरथ से कहा— [157] हे स्वामी, राम के वनगमन से मुझे एवं अन्य रानियों को अत्याधिक दुःख हुआ है। मैं पापिनी हूँ, बिना विचारे ये सब कर डाला। पुत्रयुक्त होने हुए भी आज अयोध्या राजा से वंचित है। [158] कौशल्या, सुमित्रा व सुप्रभा का रुदन मैं सहन नहीं कर सकती। हे स्वामी, आज मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं भरत के साथ वन में जाकर राम को अयोध्या पुनःलाऊँ। [159] इस प्रकार दशरथ की आज्ञा लेकर कैकेयी ने भरत एवं अनेक अमात्यों के साथ राम को अयोध्या लाने हेतु प्रस्थान किया। [160]

(घ) राम और भरत की भेंट : दशरथ की आज्ञा से भरत, कैकेयी एवं आमात्यादि राम को अयोध्या लाने हेतु वनमें रवाना हुए। लगातार छः दिन तक पैदल चलकर वे सभी राम, लक्ष्मण व सीता के पास पहुँचे। इन्होंने राम-लक्ष्मण व सीता को वृक्ष तले बैठे हुए देखा। [161] राम की ऐसी करुण दशा देखकर भरत रोने लगे। भरत ने राम-लक्ष्मण व सीता को प्रणाम किया। उसके बाद वे अचानक मूर्छित हो गये। [162] राम ने आकर उन्हें सचेत कर समझाया व धैर्य दिया। भरत बोले— हे भाई। अभक्त की तरह आप मुझे छोड़ यहाँ क्यों आए। कैकेयी ने मुझे राज्यपद का लोभी घोषित किया है तब यह कलंक मुझे साथ रखकर दूर करो। [163] अगर आप मुझे साथ नहीं ले जाते हैं तो स्वयं अयोध्या लौटकर राज्यश्री को ग्रहण करो जिससे मेरा कुलनाशक कलंक दूर हो। [164] हे भाई, लक्ष्मण अयोध्या में आपके आमात्य होंगे। मैं प्रतिहारी बनूँगा तथा शत्रुघ्न छत्र को धारण करने वाले होंगे। [165] भरत की विनय के बाद कैकेयी ने अपना अपराध स्वीकार करते हुए राम से पुनः लौटने को कहा, मगर राम ने भरत व कैकेयी को समझाकर भरत का राज्याभिषेक वहीं कर दिया।

इत्युक्तवोत्थाय काकुत्स्थः सीतानीतजलैः स्वयम्।
राज्येऽध्यपिंचद्भरतं सर्वसामंतसाक्षिकम् ॥ [166]

(ड़) भरत का अयोध्या में पुनरागमन :- राम द्वारा बन में ही भरत का राज्याभिषेक करने के पश्चात् राम ने भरत को अयोध्या के लिये विदा

किया। [167] अयोध्या आकर भरत पिता व भाई की आज्ञा से अखण्डित राज्य के स्वामी बने एवं राज्यभार स्वीकार कर कार्य करने लगे।

ययावयोध्या भरतस्तत्र चाडखण्डशासनः।
उरीचक्रे राज्यभारं पितु भ्रातुर्श्च शासनात्। [168]

(६) राम का परिभ्रमण (चित्रकूट से दंडकवन तक)

(क) वज्रकर्ण सिंहोदर प्रकरण : अवंति देश में गमन करते हुए राम, लक्ष्मण व सीता को एक पथिक ने अवंति देश के उजाड़ होने की कथा इस प्रकार सुनाई– सिंहोदर अवंति का राजा है तथा दशांगपुर-नायक वज्रकर्ण उसका सामंत। [169] शिकार करते हुए वज्रकर्ण ने जंगल में प्रीतिबर्धन मुनि को देखकर उन्हें वहाँ तपस्या करने का कारण पूछा। [170] मुनि ने कहा, आत्महितार्थ। आत्महित कैसे होता है ? वज्रकर्ण के इस प्रश्न के उत्तर में मुनि ने उसे धर्मोपदेश सुनाया। जिससे वज्रकर्ण ने श्रावक नियम ग्रहण किया। [171] मुनि ने उसे अरिहंत व साधु के बिना किसी को भी नमस्कार न करने का नियम दिया। [172] अब अपने राजा सिंहोदर को प्रणाम करने के स्थान पर वज्रकर्ण ने अपनी मुद्रिका में स्थित मुनिसुव्रतस्वामी के चित्र को प्रणाम करना प्रारंभ किया। [173] सिंहोदर की यह जानकारी मिलते ही वह वज्रकर्ण पर क्रोधित हुआ। एक खलपुरुष ने बज्रकर्ण को सिंहोदर के उस पर नाराज होने की कथा इस प्रकार कही[174]-जवानी में मैं व्यापार हेतु उज्जयिनी गया था। तब वहाँ कामलता नामक वेश्या के मोहपाश में[178] एक रात के बदले छः मास बँध गया। इन छः मास में मैंने समस्त पितृधन नष्ट कर दिया। [177] तब मेरी प्रेमिका के सिंहोदर की रानी श्रीधरा के स्वर्णकुंडल माँगने पर मैं चोरी करने के निमित्त रात्रि को राजा के महल में गया। [178] वहाँ श्रीधरा एवं सिंहोदर परस्पर इस प्रकार बातें कर रहे थे–

श्रीधरा–हे नाथ! आपको रात को नींद क्यों नहीं आती ?

सिंहोदर–नमस्कार से विमुख वज्रकर्ण को मारे बिना नींद कहाँ। [179]

यह सुनकर मैंने कुंडल की चोरी नहीं की। तभी अगले दिन सिंहोदर ने वज्रकर्ण पर आक्रमण कर उसे ललकारा कि–हे वज्रकर्ण। मुद्रिका के बिना मुझे आकर नमस्कार कर, अन्यथा तेरा काल समझ। [180] वज्रकर्ण ने नियम दोहराया कि मैं साधु या अरिहंत के बिना किसी को नमस्कार नहीं करता। सिंहोदर की सेना ने अवंति को लूटकर उजाड़ कर दिया। लोग भाग गए एवं घर खाली पड़े हैं। कथा सुनकर राम ने उस पथिक को रत्न-सुवर्णमय सूत्र दिया एवं स्वयं ने दशांगपुर में प्रवेश किया। [181] लक्ष्मण ने प्रथम वज्रकर्ण का आतिथ्य ग्रहण कर फिर सिंहोदर से कहा– भरत तुम्हारे व वज्रकर्ण के विरोध का प्रतिकार करते हैं, परंतु सिंहोदर नहीं माना। लक्ष्मण ने उसे युद्ध में परास्त कर बाँध दिया व राम के समक्ष प्रस्तुत किया। [182] राम को देखते ही सिंहोदर ने वज्रकर्ण को आधा राज्य दिया व दोनों प्रेम से रहने लगे।

तब वज्रकर्ण ने लक्ष्मण को अपनी आठ कन्याएँ प्रदान कीं जिन्हें लक्ष्मण ने बाद में परिणय कर ले जाने हेतु आश्वस्त किया। [183] तत्पश्चात् सिंहोदर एवं वज्रकर्ण स्वयं के राजकार्य में लग गए तथा राम, लक्ष्मण व सीता रात्रि व्यतीत कर प्रातःकाल होने पर आगे रवाना हुए।

(ख) कल्याणमाला—वालिखिल्य रुद्रभूति प्रकरण : वन में चलते हुए सीता को प्यास लगने पर लक्ष्मण ने एक सुन्दर सरोवर देखा। वहाँ कुबेरपुर के राजा कल्याणमाला ने लक्ष्मण को भोजन के लिए निमंत्रित किया। [184] लक्ष्मण को ज्ञात हो गया कि यह पुरुष वेश में स्त्री है। वे बोले— ''स्वामी! राम के बिना मैं भोजन नहीं करता हूँ। तभी राम ने आकर कुबेरपति को रुप न छिपाने को कहा। [185] तब कल्याणमाला कहने लगा— इस कुबेर महानगर के राजा बलिखिल्य की पृथ्वी नामक पत्नी के गर्भवती होने पर रुद्रदेव राजा उसे पकड़ कर ले गया। पृथ्वी देंवी से मेरे पैदा होने पर मंत्री ने घोषणा की। [186] तभी सिंहोदर ने बालिखिल्य के आने तक उस बालक को राजा घोषित किया।'' [187]

प्रारंभ से ही पुरुषवेशधारी मुझे केवल माता व मंत्री ही जानते हैं एवं राज्यासीन हूँ। [188] मेरे पिता वर्तमान में म्लेच्छों के कब्जे में है, कृपया आप उन्हें मुक्त करने का श्रम कराएँ। [189] राम ने उसकी बात स्वीकार कर ली। तब मंत्री ने बिलखा लक्ष्मण को दी जिसे बाद में विवाह कर ले जाने का आश्वासन राम ने दिया। [190]

तीन दिन वहाँ रहकर सभी को सुप्तावस्था में छोड़कर राम आगे चले। आगे नर्मदापार कर उन्होंने विंध्याचल के जंगलों में प्रवेश किया।[191] तभी दर्शनार्थ निकली म्लेच्छ सेना के सेनापति ने अपनी सेना को राम-लक्ष्मण को मारकर सीता को जिन्दा पकड़ने का आदेश दिया।[192] वह देख म्लेच्छ सेना से लक्ष्मण ने भयंकर युद्ध किया व उन्हें भगा दिया [193] म्लेच्छ राजा ने राम की शरण में आकर अपना परिचय दिया।[194] व अपराध को स्वीकार किया। [195] राम ने आदेश दिया—वालिखिल्यं विमुञ्चेति तदनुसार बालिखिल्य को मुक्त कर दिया। वालिखिल्य ने कुबेरपुर जाकर पुत्री कल्याणमाला को संभाला। [196] कल्याणमाला ने राम-लक्ष्मण का म्लेच्छों से युद्धादि का संपूर्ण वृत्तांत बालिखिल्य से कहा।

अब राम ने वहाँ से प्रस्थान किया। विंध्यावरी को पार कर वे ''ताप्ती'' क्षेत्र मे पहुँचे। [197]

(ग) कपिल ब्राह्मण प्रकरण : तापी को पार कर राम भागवती प्रांत के एक ग्राम में जल पीने हेतु क्रोधी कपिल ब्राह्मण के घर गए। [198] ब्राह्मण पत्नी सुशर्मा ने उन्हें शीतल जल पिलाया। इतने में कपिल घर आकर कुपित हो ब्राह्मणी से बोला — अरे पापिनी। इन मलीन को घर में लाकर तूने

मेरा अग्निहोत्र अपवित्र कर दिया। [199] यह सुन लक्ष्मण ने उसे पकड़कर आकाश में तीव्रता से घुमाया एवं राम के कहने पर पुनः पृथ्वी पर ला पटका। [200] फिर वे तीनों वहाँ से तुरंत रवाना हो गए।

(घ) गोकर्ण यक्ष द्वारा रामपुरी निर्माण, कपिल का जैन धर्म स्वीकारना : सभ्राता एवं सपत्नी राम महावन में आ पहुँचे तब वर्षा काल आ गया। राम ने आदेश दिया कि वृक्षों तले ही हम वर्षाकाल व्यतीत करेंगे। तभी वृक्षाधिपति दूभकर्ण ने अपने स्वामी गोकर्ण के पास जाकर राम-लक्ष्मणादि के वृक्ष तले निवास करने का वृत्तांत कहा। [201] गोकर्ण बोला— राम व लक्ष्मण आठवें बलभद्र एवं वासुदेव हैं तथा पूजने योग्य हैं। [202] गोकर्ण ने राम, लक्ष्मण व सीता के सुखपूर्वक निवासार्थ उस रात को नौ योजन विस्तारयुक्त, बारह योजन लंबी, ऊँचे किले व प्रासादों वाली, रामपुरी नामक भव्य नगरी की रचना कर डाली।[203] प्रातःकाल गोकर्ण ने आकर निवेदन किया "हे स्वामी, आप मेरे अतिथि हो। मैंने आपके लिए यह नगर रचा है। [204] अब एक दिन राम के वहाँ रहते हुए कपिल ब्राह्मण वहाँ आया। उस अनोखी नगरी को देखकर यक्षिणी से संपूर्णवृत्त जाना। कपिल ने राम के चरणों में जाने का निश्चय किया। [206] नगरी में प्रवेशार्थ उसने चैत्य में वंदन कर श्रावक बन साधुओं से धर्मोपदेश सुन, पत्नी को श्राविका बना, दोनों ने रामपुरी में प्रवेश किया।[207] धनयाचनार्थ जब वह राम, लक्ष्मण व सीता के समीप पहुँचा तो उन्हें देखकर डर गया। याचक कपिल व पत्नी सुशर्मा ने उनके घर आने व स्वयं द्वारा अपराध करने का वृत्तांत उनसे निवेदित किया। राम ने उन्हें क्षमा कर द्रव्यादि देकर बिदा किया। कपिल ने फिर नंदावतरु आयार्च से संयम ग्रहण किया। [208]"

वर्षाकाल व्यतीत हो गया था। राम ने आगे जाने का प्रस्ताव रखा, तभी गोकर्ण यक्ष ने आकर सेवा में त्रुटि हेतु क्षमा माँगते हुए स्वयम्प्रभ नामक हार राम को दिया। लक्ष्मण व सीता को भी गोकर्ण ने क्रमशः दिव्य रत्नयुक्त दो कुंडल एवं चूड़ामणि व वीणा दी। [209] राम ने उस यक्ष को सम्मान पूर्वक बिदा कर अपनी यात्रा को आगे बढ़ाया।

(ङ) वनमाला-लक्ष्मण विवाह प्रसंग : वर्षाकाल के पश्चात् वनवासी राम विजयपुर नगरी पहुँचे। एक उद्यान में वृक्षों तले उन्होंने निवास किया। वहाँ महीधर राजा व उसकी रानी इन्द्राणी की पुत्री वनमाला ने बचपन से ही लक्ष्मण को अपना पति चुन लिया था। [210] वनमाला के पिता ने उसे वृषभ पुत्र सुरेन्द्ररुप को दे दिया था जिससे दुःखी वनमाला उसी उद्यान में आई एवं अगले जन्म में लक्ष्मण मेरा पति हो" यह कह आत्महत्या करने लगी। [211] तभी आत्महत्या को उद्यत उस वनमाला को लक्ष्मण ने आकर बचा लिया। बोले— मैं ही लक्ष्मण हूँ। [212] प्रातः राम व सीता को लक्ष्मण ने वनमाला की जानकारी दी तब वनमाला ने राम व सीता को प्रणाम किया। [213] महीधर व

इन्द्राणी भी उसी समय वनमाला को खोजते हुए उस उद्यान में पहुँच गए। महीधर ने लक्ष्मण से युद्ध प्रारंभ कर दिया। परंतु लक्ष्मण द्वारा धनुष की टंकार मात्र से वह डर गया। [214] लक्ष्मण को पहचानते ही उसने राम को प्रणाम कर पुत्री वनमाला को लक्ष्मण को सौंप दी। [215] महीधर राम-लक्ष्मण व सीता को अपने घर ले गया। जहाँ वे काफी समय तक रहे।

(च) अतिवीर्य प्रकरण : महिधर को अतिवीर्य के दूत ने आकर समाचार दिया कि भरत से युद्ध करने के लिए आपको अतिवीर्य ने याद किया है। [216] लक्ष्मण के कारण पूछने पर दूत ने कहा, अतिवीर्य भरत को अपने अधीन चाहते हैं। [217] महिधर ने दूत को बिदा किया एवं राम से कहा कि मैं जाकर अतिवीर्य को ससैन्य नष्ट करूँगा। राम बोले— "तुम नहीं, मैं ससैन्य तुम्हारे पुत्र सहित जाता हूँ।"[218] तब सेना सहित राम, लक्ष्मण व सीता नंद्यावर्त नगर के बगीचे में ठहरे। [219] वहाँ क्षेत्र देवता द्वारा राम, लक्ष्मण व समस्त सेना को स्त्री सैन्य में बदल दिया गया। [220] इधर अतिवीर्य ने आज्ञा दी कि "दासियों की तरह इन स्त्रियों को पकड़ लो।" [221]

भयंकर युद्ध हुआ। लक्ष्मण ने अतिवीर्य को पकड़ लिया। दयालु सीता ने उसे छुड़वाया एवं लक्ष्मण ने उसे भरत की सेवा करना स्वीकार करवाया। [222] जब राम का सैन्य पुनः पुरुषवेशधारी बन गया तब अतिवीर्य ने राम को पहचाना एवं स्वयं दीक्षा ग्रहण कर पुत्र विजयरथ को राज्य दिया। [223] अतिवीर्य ने दीक्षा लेने से पूर्व अपनी पुत्री रतिमाला लक्ष्मण को सौंप दी। [224] विजयरथ भरत की सेवार्थ अयोध्या गया एवं अपनी छोटी बहन रतिमाला को भरत को सौंपा। [225]

महिधर से बिदा हो राम, लक्ष्मण व सीता के चलने पर वनमाला ने साथ चलने हेतु लक्ष्मण से विवेदन किया परंतु लक्ष्मण ने उन्हें समझाया कि— हे प्रिया! राम को इच्छित स्थान पर ठहराकर मैं पुनः तुम्हारे पास लौटूँगा। यह मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ। [226] रात्रि के शेष भाग में राम-लक्ष्मण व सीता ने वहाँ से प्रस्थान किया। अनेक वनों को पार करते हुए वे क्षेमांजलि नगरी के समीप आए। [227]

(छ) जितपद्मा प्रसंग : क्षेमांजलि नगरी के बाहर राम ने एक उद्यान में लक्ष्मण व सीता के साथ फलाहार किया। राम की आज्ञा से जब लक्ष्मण ने नगर में प्रवेश किया तब एक घोषणा सुनाई दी, जो इस प्रकार थी— "शक्तिप्रहारं सहतेयोऽमुष्य पृथ्वीपतेः।" तस्मै परिणयनाय ददात्येष स्वकन्यकाम्। [228] लक्ष्मण को ज्ञात हुआ कि शत्रुदमन व कनकादेवी की पुत्री जितपद्मा के विवाह हेतु यह उद्घोषणा रोज होती है परंतु शक्ति प्रहार को सहन करने वाला कोई व्यक्ति आता नहीं है। [229]

लक्ष्मण शत्रुदमन के पास पहुँचे एवं एक की जगह पाँच शक्तिप्रहार सहन करते हुए जितपद्मा के पास विवाह का प्रस्ताव रखा।[230] उधर जब जितपद्मा ने लक्ष्मण को देखा तब वह भी कामातुर हो गई। [231]

शत्रुदमन के पाँचों प्रहारों को लक्ष्मण ने सहन किया तब शत्रुदमन ने जितपद्मा से विवाह की आज्ञा दी। उधर जितपद्मा ने शीघ्र ही वरमाला लक्ष्मण के गले में डाल दी। [232] लक्ष्मण ने कहा मेरे भाई एवं भाभी को सूचना देनी आवश्यक है। तब शत्रुदमन ने उन्हें घर लाकर उनकी पूजा की। [233] अब लक्ष्मण बोले कि पुन: लौटते समय में तुम्हारी पुत्री को विवाह कर ले जाऊँगा। [234] उस रात्रि के शेष काल में उन्होंने आगे प्रस्थान किया।

(ड़) राम द्वारा मुनियों की उपसर्ग से रक्षा, धर्मोपदेश, दंडकारण्य निवास :- राम वन में विचरण करते हुए वंशशैल पर्वत के निकट वंशस्थल नगर में आए जहाँ—वहाँ के राजा समेत—सभी भयग्रस्त थे। पूछने पर ज्ञात हुआ कि इस पर्वत पर रात्रि को होने वाली भयंकर ध्वनि के कारण सभी भयभीत हैं। [235] निवारणार्थ राम उस पर्वत पर चढ़े जहाँ उन्होंने कायोत्सर्गीमुनियों को देखा। सीता, लक्ष्मण व राम ने उनका वंदन किया। तत्पश्चात् राम ने वीणा बजाई, लक्ष्मण ने गीत गाया तथा सीता ने सुन्दर नृत्य किया। [236] रात्रि को अनलप्रभ देव ने आकर जब उपद्रव कर मुनियों को परेशान किया तब राम व लक्ष्मण उस देव को मारने के लिए उद्यत हुए। [237] राम व लक्ष्मण के पराक्रम को देख वह अपने स्थान पर चला गया एवं दोनों मुनियों को कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति हुई। [238] राम द्वारा देवों के उपसर्ग का कारण पूछने पर कुलभूषण महर्षि ने सबके पूर्वभव का वृत्तांत कहा व उपसर्ग का कारण बताया। [239] मुनि ने सबको देशना दी तथा उनके पूर्वकर्मों के क्षय हो जाने की संपूर्ण जानकारी दी। तब वंशस्थल के राजा सुरप्रभ ने आकर राम को प्रणाम किया एवं पूजा की। [240] राम की आज्ञा से सुरप्रभ ने उस पर्वत पर जिन चैत्यों का निर्माण करवाया। तभी से उस पर्वत का नाम रामनगरी हो गया। [241]

सुरप्रभ की आज्ञा लेकर राम व सीता वहाँ से रवाना हुए। निर्जन जंगलों में विचरण करते हुए उन्होंने अतिभयंकर दंडकारण्य में निर्भय होकर प्रवेश किया। [242] वहाँ भारी पर्वतों की एक गुफा में राम ने अपना आश्रम बनाया तथा रहने लगे।

''विधाय तत्र चाऽऽवासं महागिरीगुहागृहे।
काकुत्स्थ: सुस्थितस्तस्थो स्वकीय इव वेश्मनि॥' [243]

(७) रावण द्वारा सीता का अपहरण :-

(क) राम का चारण मुनियों को आहारदान एवं जटायु प्रसंग : दंडकारण में रहते हुए राम ने एक बार आकाशगमन करते हुए त्रिगुप्त एवं सुगुप्त नामक दो मुनियों को देखकर उनका वंदन किया। दो माह के उपवासी उन मुनियों को सीता ने योग्य अन्नपान से पारणा करवाई एवं देवों ने रत्न एवं सुगंधित जल की वर्षा की। [244]

उसी समय कंवृद्वीपी राजा रत्नजटी ने दो देवताओं के साथ आकर राम को अश्वयुक्त रथ दिया [245] तथा सुगंधित वातावरण से गंध नामक रोगी पक्षी वृक्ष से नीचे उतरा। मुनि-दर्शन से उसे जाति-स्मरण हुआ तब वह मूर्छित हो गया। सीता के जल-सिंचन से जागृत हो वह साधुओं के चरणों में गिरा। [246] साधुकृपा से वह निरोग हो गया एवं उसके पंख, चोंच, पैर व संपूर्ण अंग कांतिवान हो गए। मस्तक पर जटाओं के कारण उस पक्षी का नाम जटायु पड़ा। [247] राम ने उन महर्षियों से गीध के शांत होने का कारण पूछने पर सुगुप्त मुनि ने दंडक राजा का संपूर्ण वृत्तांत कह सुनाया। [248] गीध ने पूर्वभव सुना, तब वह पुनः मुनि-चरणों में गिरा। मुनि से धर्मोपदेश सुनकर गीध श्रावक बन गया। [249] मुनि आकाश मार्ग से अन्यत्र चले गए तब उस दिव्य रथ में बैठकर सीता-राम व लक्ष्मण जटायु समेत वन में आगे रवाना हुए। [250]

(ख) शंबूक वध एवं चंद्रनखा (शूर्पणखा) प्रकरण :- खर एवं चंद्रनखा के दो पुत्र शंबूक व सुंदर पाताल लंका में रहते थे। [251] शंबूक एक बार चंद्रहास खड्ग के साधनार्थ दंडकारण्य में आया एवं क्रौंचखा नदी के तट पर बाँस में निवास कर सूर्यहास खड्ग को सिद्ध करने वाली विद्या की साधना को प्रारंभ किया। [252] अधिमुख होकर बारह वर्ष, चार माह व्यतीत करने पर सूर्यहास खड्ग आकाश मार्ग से उस जंगल में आया। [253] लक्ष्मण ने उस खड्ग को देखा तो ग्रहण किया व समीप के जाल वृक्ष को काट दिया। [253] शंबूक का सिर जमीन पर आ गिरा। लक्ष्मण ने आगे बढ़कर देखा कि शंबूक का घड़ सिर से लटक रहा था। [255] धिङ्मामित्यात्मानं "कहते हुए लक्ष्मण सूर्यहास खड्ग लेकर राम के पास गए व संपूर्ण वृत्तांत कहा। [256] राम बोले— "

"असावसिः सूर्यहास : साधकोऽस्य त्वयाहतः।
अस्य संभाव्यते नूनं काश्चिदुत्तर साधकः ॥" [257]

इधर हर्षित चंद्रणखा उस जंगल में आई तो उसने शंबूक का सिर देखा। [258] शंबूक! हा पुत्र शंबूक! इस प्रकार कहती हुई वह लक्ष्मण के पद चिन्हों पर चलती हुई राम, लक्ष्मण व सीता के समीप पहुँची। [259]

शोक में भी कामातुर चंद्रणखा ने राम से परिणय हेतु निवेदन किया। [260] राम ने उत्तर दिया कि "सभार्योऽहमभार्य भज लक्ष्मणम" तब वह लक्ष्मण के पास गई, लक्ष्मण ने कहा कि— "राम मेरे पूज्य हैं, उनके पास पहुँची हुई तुम मेरे लिए पूज्य हो अतः मैं तुमसे विवाह नहीं करुँगा। [261] निराश चंद्रणखा घर गई एवं पति खर को यह सब समाचार कह सुनाए।"

(ग) खर-दूषण का आक्रमण :- अपना काम भी न बना एवं पुत्र भी मारा गया। अब क्रोधित होकर चंद्रणखा खर के पास आई व समाचार सुनाए। पुत्रवध का बदला लेने हेतु खर ने चौदह हजार विद्याधरों के साथ राम पर भारी आक्रमण कर दिया। [262] खर जब युद्ध के लिए आया तो राम ने

लक्ष्मण को उससे युद्ध करने का आदेश दिया व यह कहा कि आवश्यकता होने पर मुझे बुला लेना।[263] राम की आज्ञा लेकर लक्ष्मण ने युद्धार्थ प्रस्थान किया।

(घ) सीता के अपहरण की प्रेरणा एवं निश्चय : लक्ष्मण व खर का युद्ध जारी था। इधर चंद्रणखा रावण के पास गई एवं राम-लक्ष्मण द्वारा उसके पुत्र शंबूक को मारने का वृत्तांत कहा।[264] उसने कहा—राम की पत्नी सीता रुप, लावण्य में स्त्रियों की शोभा है।[265] उसका रुप तीनों लोकों में अप्रतिम व अगोचर है।[266] हे भाई! अगर तूं सीता रुपी स्त्री रत्न को ग्रहण नहीं करता तो तू रावण हैं भी नहीं।[267] यह सुनते ही रावण पुष्पक विमान से उड़ा एवं जहाँ राम-सीता थे वहाँ आया।[268] राम की दृष्टि रावण पर पड़ते ही रावण भयग्रस्त हो गया एवं राम-सीता के समीप न जा सका। रावण ने विचार किया कि सीता के हरण में राम कष्ट रुप है।[269] अतः मुझे इसकी पूर्व तैयारी करनी पड़ेगी। अब वह सीता के हरण की तैयारी में जुट गया।

(ङ) सीता का अपहरण : सीता-हरण हेतु रावण ने अवलोकनी विद्या का स्मरण कर उसे उपस्थित किया। उसे रावण ने आदेश दिया कि—"कुरु साहाय्यमह्नाय मम सीतां हरिष्यतः।[270] विद्या बोली कि सीता-हरण मेरे लिए असंभव हैं। परंतु एक उपाय यह है कि, लक्ष्मण के सिंहनाद करने पर राम लक्ष्मण के पास आ जाएँगे क्योंकि राम ने लक्ष्मण को ऐसा कह कर भेजा है।"[271] रावण बोला "एवं कुर्बिति", तब मैं सीता को उठा ले जाऊँगा। इस प्रकार रावण ने अपहरण की तैयारी कर ली। रावण की आज्ञा से अवलोकनी विद्या ने दूर जाकर साक्षात् लक्ष्मण जैसा ही सिंहनाद किया।[272] जिसे सुनते ही राम सोचने लगे कि कौन है जिसने लक्ष्मण को कष्ट दिया है। राम को चिंतायुक्त होते देखकर सीता बोल उठी—

"आर्यपुत्र ! किमद्यापि वत्से संकटमागते।
विलम्बसे द्रुतं गत्वा त्रायस्व ननु लक्ष्मणम्॥"[273]

सिंहनाद सुनकर व सीता के वचनों से प्रेरित हो राम सीता को अकेली छोड़ वहाँ से चल दिए।[274] तभी विमान से उतरकर रावण ने सीता को विमान में चढ़ाने का प्रयत्न प्रारंभ किया।[275] सीता रोने लगी। जटायु दौड़कर आया व विरोध करने के बावजूद भी रावण सीता को पुष्पक विमान में बिठाकर लंका की ओर उड़ गया।[276]

(च) खर-दूषण का ससैन्य विनाश : लक्ष्मण ने राक्षसों से युद्ध करते हुए सर्वप्रथम त्रिशिरा को मार दिया।[277] तभी पाताल लंका के राजा चंद्रोदय का पुत्र विराध वहाँ लक्ष्मण की शरण में आया। वह युद्ध में लक्ष्मण की मदद के लिए तैयार हुआ पर लक्ष्मण ने कहा —"धन्यमानान्मया द्विषः। पश्याऽमून्" अर्थात् तू शत्रुवध करते हुए मुझे देख।[278] तब लक्ष्मण ने विराध को पाताल लंका का राजा बना दिया। अब अति क्रोधित हो खर ने लक्ष्मण पर

तीव्र प्रहार प्रारंभ कर दिए। लक्ष्मण ने भी हजारों बाण छोड़कर क्षणमात्र में "क्षुरप्र" बाण से खर का मस्तक धड़ से अलग कर दिया। [279] अब दूषण को भी लक्ष्मण ने मार गिराया। युद्ध में अनेक राक्षसों को मारकर लक्ष्मण वहाँ चले जहाँ राम सीता-विहीन अकेले हो चुके थे। [280]

(छ) राम व लक्ष्मण को सीता-अपहरण का समाचार प्राप्त होना : धनुर्धारी राम जब युद्धस्थल में लक्ष्मण के पास पहुँचे तो ज्ञात हुआ कि लक्ष्मण ने सिंहनाद नहीं किया था। [281] लक्ष्मण ने कहा— भैया! हमारे साथ धोखा हुआ है। यह सीता को अपहृत करने का उपाय ही होगा। [282] अत: हे राम। "तद्गच्छ शीघ्रमेवार्य त्रातुमार्या।" [283] राम जब यथास्थान पहुँचे तो सीता वहाँ नहीं थी। राम मूर्छित हो गए। [284] लक्ष्मण ने भी वहाँ पहुँच कर जब राम को सीता-वियोग में मूर्छित देखा तो वे स्वयं अति दु:खी हो गए। [285]

(ज) सीता का अपहरण एवं जटायु :- रावण जब सीता को बलात् पुष्पक विमान में चढ़ा रहा था तभी जटायु ने वहाँ आकर रावण को ललकारा कि— हे रावण ! राक्षसाधम, तू दूर हट, मैं आ गया हूँ।[286] उसने रावण से घोर युद्ध करते हुए अपनी चोंच एवं नाखूनों से उस की छाती को छेद डाला। [287] क्रोधी रावण ने यह देख तलवार से जटायु के पंख काट दिए जिससे वह घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। [288] इसी तरह सूर्यजटी पुत्र रत्नजटी विद्याधर भी रावण से लड़ा परंतु वह भी हारकर कंबूद्वीप में जा गिरा। [289] लौटने पर राम ने इसी जटायु को अंतिम साँसें गिनते देखा और सारी बात समझ गए। उन्होंने उसे नवकार मंत्र देकर माहेन्द्र देवलोक में देव के रुप में भेज दिया। [290]

(झ) रावण द्वारा सीता को लंका में ले जाना : रावण जटायु से मुक्ति पाकर आकाश मार्ग से उड़ा जा रहा था। हे नाथ! वत्स लक्ष्मण! हे भाई मामंडल! [291] इस प्रकार रुदन करती सीता से रावण प्रार्थना करने लगा कि— हे सीता, तुम्हें मैं पटरानी बनाऊँगा, तू शोक मत कर। [292] अब तू मुझे पति मान। [293] रावण यह कहता हुआ जब सीता के चरणों में गिरा तो सीता ने अपने चरण समेट लिए। सीता ने प्रतिज्ञा की, जब तक राम-लक्ष्मण के कुशलता के समाचार प्राप्त नहीं होगे तब तक भोजन ग्रहण नहीं करूँगी।

लंका में प्रवेश कर रावण ने सीता को पूर्व दिशा में आए देव रमण नामक उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे बिठाई एवं त्रिजटादि— राक्षसियो को रक्षक नियुक्त कर वह अपने महलों में चला गया।

(ञ) मंदोदरी एवं विभीषण का रावण को समझाना : इधर चंद्रनखा पति-पुत्रों एवं चौदह हजार कुलपतियों के मरते ही छाती कूटती हुई लंका को गई व भाई रावण के घर में प्रवेश किया। चंद्रणखा ने अपना सारा दु:ख सुनाकर कहा कि, पाताल लंका भी मेरे हाथ से चली गई। रावण ने

चंद्रणखा को विश्वास दिलाया कि, त्वद्भर्तृपुत्रहन्तारं हनिष्याम्यचिरादपि'' रावण को उदास जानकर मंदोदरी ने जब कारण पूछा तो वह बोला— हे भामिनी! तू सीता को समझा कि वह मेरे साथ क्रीड़ा करे। कुलीन मंदोदरी भी रावण की बातों में आ गई एवं देवरमण में जाकर सीता को इस प्रकार समझाने लगी— हे सीता, मैं तुम्हारी दासी रहूँगी, तू रावण को भज। [294] रावण जैसा महाबली कहाँ और राम जैसा साधारण पति कहाँ। [295] पर सीता राम के ध्यान में तल्लीन रही।

प्रात:काल होने पर जब मंदोदरी को संपूर्ण वृत्तांत ज्ञात हुआ[296] तब वह रावण से बोली— हे स्वामी। आपने यह कुलकलंकित कार्य किया है। शीघ्र ही सीता को सौंप दो। [297] रावण ने इस बात का प्रतिकार किया तब विभीषण बोला— ''राम की पत्नी सीता ही हमारे कुल के नाश का कारण होगी'' ज्ञानियों का यह वचन सत्य ही होगा। [298] पुन: विभीषण ने प्रार्थना की कि ''मुञ्च सीतां न: कुलघातिनीम्''। रावण नहीं माना। वह सीता को पुष्पक विमान में बिठाकर उद्यान पर्वत, एवं क्रिड़ास्थलों में घूमने लगा। [299]

(८) राम-लक्ष्मण द्वारा सीता की खोज एवं वानरों से मित्रता :

(क) राम द्वारा सीता की खोज : राम ने शीघ्र सीता की खोज प्रारंभ कर दी। वे लक्ष्मण से बोले—मैं सीता को जीवित पुन: लाऊँगा। [300] उसी समय लक्ष्मण द्वारा बुलाया गया पाताल लंका का राजा विराघ भी राम की सहायतार्थ आ गया। [301]

(ख) विराध द्वारा सीता की खोज में सहायता : विराध ने आते ही राम व लक्ष्मण को अपना स्वामी माना एवं उसने अनेक विद्याधर वीरों को सीता की खोज के लिए रवाना किया। [302] विराध द्वारा भेजे गए विद्याधरों ने दूर-दूर तक सीता की खोज की परंतु उन्हें कहीं भी सीता की जानकारी नहीं मिली। निराश होकर वे लौट आए एवं नतमस्तक होकर खड़े हो गए। [303] सीता की जानकारी तुम्हें नहीं मिली इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। विराध ने पुन: राम को धैर्य एवं आश्वासन दिया कि हे स्वामी, हम पूरी कोशिश करेंगे। आप मेरे साथ पाताल लंका में आइए। पाताल लंका में आप मुझे जब प्रवेश करवा देंगे तब सीता के समाचार हमें सुलभता से प्राप्त हो सकेंगे। [305]

(ग) राम का पाताल लंका में गमन : विराध के निवेदन पर राम व लक्ष्मण ससैन्य पाताल लंका के निकट पहुँचे। पाताल लंका में खर-पुत्र सुंद को ज्ञात हुआ कि मेरे पिता का हत्यारा राम विराध के साथ आ रहा है। सुंद भयंकर सेना लेकर युद्धार्थ तैयार हो गया। [306] तब विराध व सुंद में भयंकर युद्ध हुआ। चंद्रणखा ने जब राम को देखा तो तुरंत सुंद को भाग जाने का संकेत किया। सुंद वहाँ से भागकर रावण की शरण में आया। [307] उधर विराध सहित राम व लक्ष्मण ने पाताल लंका में प्रवेश किया। विराध को राज्यासीन

कर राम-लक्ष्मण कुछ समय तक वहाँ रहे।[308]

• **(घ) सुग्रीव द्वारा हनुमान की भेंट :** राम एवं लक्ष्मण जब पाताल लंका में विराध के पास रह रहे थे तब किष्किंधा के वानरराजा सुग्रीव के दूत ने आकर इस प्रकार प्रार्थना की—

महति व्यसने स्वामी पतितो नस्तदीदृशे।
राघवौ शरणीकर्तु तव द्वारेण वांछति।[309]

अर्थात् संकटग्रस्त हमारे स्वामी सुग्रीव राघव की शरण स्वीकार करना चाहते हैं। विराध ने दूत के कहा - "द्रुतमायातु सुग्रीवः।[310] दूत के पहुँचते ही सुग्रीव तुरंत रवाना होकर पाताल लंका पहुँचा व विराध से मिला। विराध ने राम से सुग्रीव की भेंट करवाई।[311] सुग्रीव बोला— अस्मिन् दुःखे त्वमसि मे गतिः।[312] राम ने उसे उसका दुःख दूर करने का आश्वासन दिया। विराध द्वारा सीताहरण का वृत्तांत सुग्रीव को समझाने पर सुग्रीव ने राम से कहा— मैं आपकी कृपा से शीघ्र ही सीता के समाचार लाऊँगा।[13] इस प्रकार परस्पर दुःख में एक-दूसरे की सहायता करने के समझौते के पश्चात् विराध ने विदा ले राम-लक्ष्मणने सुग्रीव के साथ किष्किंधा की तरफ प्रस्थान किया।[314]"

(च) माया सुग्रीव एवं बालि प्रकरण : सहसगति नामक विद्याधर सुग्रीव की पत्नी तारा की इच्छा रखता था। इस हेतु उसने प्रतारणी विद्या को सिद्ध कर मायावी सुग्रीव का रुप धारण किया व सुग्रीव के अंतपुर में प्रवेश किया।[315] असली सुग्रीव घर आकर जब महल में प्रवेश करने लगा तो उसे द्वार रक्षकों ने रोक दिया। द्वारपाल बोला— "अग्रेगतो राजा सुग्रीव।" असली सुग्रीव महलो में पहुँचा एवं उसने मायावी सुग्रीव को रोका।[316] अब प्रश्न खड़ा हुआ कि असली सुग्रीव कौन है। फैसला करने के लिए चौदह अक्षौहिणी सैनिक एकत्रित हुए। किसी को भी वास्तविक सुग्रीव की जानकारी न होने से सैनिक दो भागों में विभाजित हो गए।[317] मायावी एवं सत्य सुग्रीव के बीच भयंकर युद्ध हुआ।[318] अब सत्य सुग्रीव ने सहायतार्थ हनुमान को बुलाया। परंतु मायावी सुग्रीव ने उसे हनुमान की उपस्थिति में भी घायल कर दिया।[319] मन से हारा असली सुग्रीव किष्किंधा के बाहर निकल कर रहने लगा। नकली सुग्रीव वहीं रहा परंतु वह बालिपुत्र के भय से अंतःपुर में प्रवेश न कर सका।[320]

तब सत्यसुग्रीव ने पाताल लंका जाकर राम से मित्रता की व राम को लेकर किष्किधा में आया। राम नगर के दरवाजे पर खड़े रहे एवं दोनों सुग्रीव युद्ध करने लगे। राम ने वज्रावर्त धनुष की टंकार की जिससे साहसगति की सिद्धि नष्ट हो गयी।[321] और तब,

"एकेनाऽपीषुणा प्राणांस्तस्याऽहार्षीद्रधूद्वहः"।

सुग्रीव पुनः किष्किंधा का राजा बना। सुग्रीव ने अपनी तेरह कन्याएँ

राम को देनी चाहीं परंतु राम ने इस प्रस्ताव को नकार दिया। तदन्तर सुग्रीव ने नगर में प्रवेश किया एवं राम ने एक उद्यान में निवास किया।[232]

(९) सीता की खोज करने में वानरों का योगदान :

(अ) सुग्रीव को लक्ष्मण का संदेश : कुछ काल व्यतीत करने के पश्चात् एक दिन लक्ष्मण धनुष, तलवार आदि शस्त्रों से सज्जित हो सुग्रीव के पास पहुँचे। लक्ष्मण के आने का समाचार सुनते ही सुग्रीव अंतपुर से निकल उपस्थित हुआ।[324]

क्रोधित लक्ष्मण बोले— अरे बंदर! अधिक सुखी होकर अंत:पुर में मौज कर रहा है। राम किस प्रकार वृक्षों तले जीवन बिता रहे हैं, यह तू इतनी जल्दी ही भूल गया।[325] खड़ा हो, और शीघ्र सीता का समाचार लाने के लिये प्रयाण कर। सुग्रीव ने अपराध के लिये लक्ष्मण से क्षमा चायना की एवं मन में सीता की खोज हेतु योजना बनाने लगा।[326]

(आ) सीता की खोज के लिए सुग्रीव द्वारा विद्याधरों को भेजना : सुग्रीव तत्काल राम के पास आया एवं प्रणाम कर अपने सैनिकों को आदेश दिया कि हे सैनिको! तुम अपने पराक्रम से शीघ्र सीता की खोज करो।[327] सुग्रीव के आदेशानुसार सभी सैनिक द्वीपों, पर्वतों, समुद्र एवं गुफाओं आदि में सीता की खोज करने लगे।[328] भामंडल एवं विराध भी राम के पास आकर दु:ख में उनकी सेवा करने लगे।

(इ) सुग्रीव का प्रस्थान एवं रत्नजटी से भेंट : अब स्वयं सुग्रीव सीता की खोज करता हुआ कंबुद्वीप में पहुँचा। वहाँ रत्नजटी नामक विद्याधर सुग्रीव को देखकर सोचने लगा कि क्या यह रावण के आदेश से मुझे मारने हेतु आया है। रावण ने पूर्व में मेरी विद्या को नष्ट किया था। अब मेरे प्राण भी हर लेगा।[329] सुग्रीव जब रत्नजटी के पास पहुँचा तो उसे ज्ञात हुआ कि सीता को ले जाते रावण से आकाश में रत्नजटी ने युद्ध किया था जिससे रावण ने उसकी विद्या को नष्ट कर दिया था।[330] सुग्रीव रत्नजटी को राम के पास ले गया जहाँ उसने राम को सीता विषयक समाचार दिए। रत्नजटी कहने लगा, लंका का राजा रावण सीता को ले जा रहा था, तब मैंने क्रोधित हो युद्ध का प्रयास किया। राम रत्नजटी के प्रयास से प्रसन्न हुए व उसे बाँहों में भर लिया।[331] अब राम ने सुग्रीव से पूछा— ''इत: कियति दूरे सा लंङ्कापुरस्तस्य राक्षस:।''[332] वानर बोले, प्रभु, हम तो रावण के सामने तिनके के समान हैं। लक्ष्मण क्रोधित हो बोले— ''क्षत्राचारेण तस्याऽहं छेत्स्यामि छलिन: शिर:''[333]

(ई) जाम्बवान का परामर्श एवं लक्ष्मण का कोटिशिला को उठाना : लक्ष्मण के इस प्रकार कहने पर जाम्बवान बोले— हे लक्ष्मण, तुम सब कर सकते हो, परंतु जो कोटिशिला को मूल से उखाड़ेगा, वही रावण को मार सकेगा।[334] अनंतवीर्य साधु ने यह तथ्य कहा है अत: सत्यता प्राप्त करने

के लिए इस शिला को जड़ से उखाड़ो। यह कह वे लक्ष्मण को आकाश मार्ग से कोटिशिला के पास ले गए।[335] तब वहाँ लक्ष्मण ने—

उच्चिक्षेप शिलां दोष्णा लक्ष्मणस्तां लतामिव।
साधु साध्वित्युच्यमानस्त्रिदशैः पुष्पवर्षिभिः।[336]

लक्ष्मण के कोटिशिला उठाते ही देवताओं ने हर्षित हो पुष्पवर्षा की। वहाँ से सभी राम के पास आए एवं कहने लगे— "लक्ष्मण ही रावण को मारेंगे।[337] विचार हुआ कि प्रथम दूत भेजकर शत्रु को सूचित कर दिया जाए। महा पराक्रमी व समर्थ दूत कौन है, यह प्रश्न अब सामने था।"

(उ) राम हनुमान भेंट एवं हनुमान का लंका की ओर प्रस्थान : महापराक्रमी दूतकार्य के लिए सुग्रीव ने तुरंत श्रीमूर्ति को भेजकर हनुमान को बुलाया। हनुमान ने राम को प्रणाम किया।[338] तब सुग्रीव ने राम को हनुमान का परिचय इस प्रकार करवाया—" ये विनयी पवनंजय पुत्र हनुमान हमारे लिए दुःख में बंधु सम हैं। सभी विद्याधरों में ये सर्वोच्च हैं अतः इन्हें सीता का समाचार लाने की आज्ञा दीजिए।[339] हनुमान बोले! हे स्वामी! यहाँ गव, गवाक्ष, वयः, शरभ, गंधमादन, नील, मैन्द, जाम्बवान, अंगद, नल एवं अनेक श्रेष्ठ कपि हैं परंतु सुग्रीव स्नेहवश ऐसा कह रहे हैं। मैं भी आपके कार्य की सिद्धि हेतु इनमें से एक हूँ।[340] वे आगे कहते है— क्या राक्षसद्वीप सहित लंका को उठाकर यहाँ ले आऊँ। या बंधुओं समेत रावण को बाँधकर यहाँ ले आऊँ। अथवा सकुटुम्ब रावण को मारकर उपद्रव रहित, सीता को शीघ्र ले आऊँ।[341] हनुमान की ऐसी बातें सुनकर राम बोले -

सर्व संभवति त्वयि। तद्गच्छ पुर्या लङ्कायां सीतां तत्र गवेषये:।[342]

अर्थात् जाओ और लंका नगरी में सीता की खोज करो। मेरी मुद्रिका सीता को निशानी रुप में देकर सीता की चूड़ामणि यहाँ ले आना एवं सीता को कहना कि— हे देवी! राम सदा ही तुम्हारा ही ध्यान करते हैं।[343] राम ने कहा— सीता से कहना कि वह जीवन का त्याग न करे। लक्ष्मण शीघ्र ही रावण को मारकर तुम्हें ले जाएगा।[344] हनुमान बोले— हे स्वामी! मैं आपके आदेश का पालन करके जब तक यहाँ आऊँ, तब तक आप यहीं रहिए। इतना कह राम को व अन्य सभी को प्रणाम कर भयंकर वेग से हनुमान लंका नगरी की तरफ विमान से उड़े।

"इत्युक्त्वा राघवं नत्वा मारुतिः सपरिच्छदः।
लंकापुरीं प्रत्यचालीद्विमानेनाऽतिरंहसा॥"[345]

(ऊ) हनुमान का लंका तक गमन : आकाश में उड़ते हुए जब हनुमान के नाना महेन्द्र का नगर आया तो क्रोधित हो भयंकर ध्वनियुक्त रणवाद्य बजाया।[346] उधर महेन्द्र ससैन्य आ धमका जिससे भयंकर युद्ध हुआ। शत्रु सेना को भंग करते हुए[347] हनुमान ने विचार किया— "धिग्मया युद्धं

स्वामिकार्य विलम्बकृतम्। क्रोधित हो हनुमान ने महेन्द्र पुत्र प्रसन्नकीर्ति को ससारथी पकड़ कर [348] महेन्द्र को अपना परिचय दिया कि— मैं सीता की खोज में जा रहा हूँ। तुम शीघ्र राम के पास पहुँचो। [349] तदनुसार महेन्द्र राम के पास पहुँच गया। [350]

इससे आगे दधिमुख द्वीप में तीन राजकुमारियाँ विद्या सिद्धि करती हुई मुनि सहित जलने लगी। हनुमान ने समुद्र के जल दावाग्नि को शांत किया। [351] तभी कुमारियों को विद्या सिद्ध हो गई उन्होंने अपना परिचय हनुमान को दिया। साहसगति के मारे जाने के समाचारों से वे कुमारियाँ शीघ्र ही अपने पिता को लेकर राम के पास पहुँची। [352]

हनुमान आगे उड़े तो आशाली उन्हें देखकर बोली— "अरे कपि! असि मम मोज्यताम्"। ज्योंही उसने हनुमान को खाने के लिये मुँह खोला।[353] वैसे ही हनुमान ने उसके मुँह में घुसकर उसे फाड़ दिया। उसके किले को भी उन्होंने ध्वस्त कर दिया [354] वज्रमुख व आशालीपुत्री लंकासुन्दरी को हनुमान ने हरा दिया। [355] तब लंकासुन्दरी ने हनुमान से परिणयार्थ निवेदन किया। [356] हनुमान ने उससे गांधर्व विवाह कर [357] निर्भयता से रात्रि व्यतीत की। [358] प्रात:काल हनुमान लंका पहुँचे। [359]

(ए) विभीषण से भेंट : हनुमान सीधे विभीषण के घर पहुँचे। विभीषण ने स्वागत कर आगमन का कारण पूछा। [360] हनुमान ने उन्हें सीता को मुक्त करवाने की बात समझाई। तब विभीषण ने कहा— मैं रावण से इस कार्य हेतु दुबारा प्रार्थना करूँगा। [361] वहाँ से हनुमान उड़कर देवरमण उद्यान में गए। [362]

(ऐ) सीता से भेंट : देवरमण उद्यान में हनुमान ने देखा कि सीता के— "गालों पर बाल उड़ रहे हैं, आँखों में जलधारा प्रवाहित है, मुख मलीन है, शरीर कृश है, विश्वास के कारण अघर व्याकुल हैं, राम-राम का जप कर रही है, वस्त्र मलीन हैं तथा शरीर का भान नहीं है। [363]

अदृश्य होकर हनुमान ने ज्योंही अंगूठी फेंकी उसे देखते ही सीता हर्षित हो उठी। [364] तभी पुन: रावण के साथ क्रीड़ा करवाने के लिए समझाने आई मंदोदरी को सीता ने फटकारा कि "उत्तिष्ठोत्तिष्ठ पापिष्टे" [365] अब हनुमान ने प्रकट हो राम के समाचार दिए कि वे शीघ्र ही शत्रुदमनार्थ यहाँ आ रहे हैं। [366] सीता द्वारा परिचय पूछने पर वे बोले,

आरव्यच्चर हनुमानस्मि पवनाञ्जनयो: सुत:।
विधया व्योमयानेन - लंड्धंतो जलधिर्मया। [367]

हनुमान पुन: बोले, राम सेनापति सुग्रीव के साथ किष्किंधा में रह रहे हैं। आपके वियोग में पश्चात्ताप करते हैं। लक्ष्मण बैचेन हैं। अनेक वानरों के आश्वस्त करने पर भी दोनों भाई सुख में नहीं रहते। [368] यह मुद्रिका ग्रहण कर आपकी निशानी चूडामणि मुझे दीजिए जिससे राम मुझे यहाँ आया समझें।

[368] राम के समाचार जान इक्कीस दिनों बाद सीता ने भोजन किया। हनुमान को चूडामणि दे शीघ्र बिदा होने हेतु कहा। [370] हनुमान बोले— हे माता, मैं त्रैलोकेश्वर का सैनिक हूँ, रावण मेरे समक्ष क्या है। मैं इसे हरा आपको कंधे पर उठा आज ही राम के समीप ले जा सकता हूँ। [371] सीता ने पुनः जाने का आदेश दिया तो हनुमान पुनः बोले— मैं जाते-जाते राक्षसों को कुछ पराक्रम दिखा जाता हूँ। [372] अच्छा, कह सीता ने चूड़ामणि दी तब हनुमान देवरमण उद्यान की ओर चल पड़े।

(ओ) उपवन का नाश एवं रावण से भेंट : देवरमण उद्यान को गज की तरह तहस-नहस करते हुए हनुमान ने अनेक वृक्षों को उखाड़ दिया। द्वारपालों को जब हनुमान ने मार दिया तब रावण ने अक्षयकुमार को भेजा जिसे हनुमान ने प्रारंभ में ही परमगति दे दी। [373] तब इन्द्रजीत ने आकर हनुमान को नागपाश में बाँधा व रावण की सभा में उपस्थित किया। [374] रावण बोला, अरे मूर्ख, वह वनवासी भील तुझे क्या देगा। तू मेरा सेवक था व आज किसी का दूत है, अतः तुझे माफ कर रहा हूँ। हनुमान सक्रोध बोले— "कदा अहं तव सेवकः- कदा ममाडभूस्तवं स्वामी", तुझे ऐसा कहते शर्म नहीं आती? तू परस्त्रीहर्ता है अतः तेरे साथ बात करना महापाप है। [375] रावण पुनः बोला— अब तुझे गधे पर बैठा लंका में घुमाउँगा। [376] इतना सुनते ही हनुमान उछले, नागपाश टूट गया। उन्होंने रावण को लात मार उसके मुकुट गिरा दिए।[377] अपने भारी भरकम पैरों से लंका को तहस-नहस कर आकाश मार्ग से उत्तर दिशा को उड़ चले। [378]

(औ) राम से भेंट : राम के पास आकर हनुमान ने उन्हें प्रणाम कर सीता की चूडामणि दी। राम ने साक्षात् सीता-मिलन की तरह उसे हृदय पर धारण किया। [379] तत्पश्चात् हनुमान ने लंका प्रवेश से पुनः यहाँ आने तक की संपूर्ण कथा राम व वानर सभा को सुनाई। सभी सीता की कुशलता से प्रसन्न हुए।

(१०) राम-रावण युद्ध और रावण वध :-

(क) राम का लंका की ओर प्रस्थान : राम ने सुग्रीव आदि वीरों के साथ, सलक्ष्मण, आकाश मार्ग से लंका को प्रस्थान किया। उस समय भामंडल, नील, नल, महेन्द्र, हनुमान, विराध, सुखेन, जाम्बवान, अंगदादि अनेक विद्याधर राजा राम के साथ रवाना हुए। [380] आकाश विमानों, रथों, अश्वों, हाथियों आदि से भर गया। राम की सेना का प्रथम युद्ध बेलंधर पर्वत पर बेलंधर नगर के राजा समुद्र व सेतु से हुआ। समुद्र व सेतु पकड़े गए पर राम ने उन्हे क्षमा कर पुनः राज्य दे दिया।[381] तब समुद्र राजा ने अपनी तीन कन्याएँ लक्ष्मण को सौंपी। [382]

आगे सुवेल पर्वत के राजा सुवेल व हंसद्वीप के राजा हंसरथ को राम की सेना ने जीत लिया। [383] राजा सुवेल की प्रार्थना पर राम कुछ समय यहीं रहे।

एक दिन दक्षिण दिशा में ससैन्य विभीषण को आते देख राम ने सुग्रीव से मंत्रणा कर उसे आने की आज्ञा दी। [384] तब विशाल नामक खेचर ने कहा— हे प्रभु! "महात्मा धार्मिकश्चैप रक्ष:स्वेंको विर्भाषण:" ।[385]

यह रावण द्वारा निकाला गया विर्भीपण आपकी शरण आया है। विभीषण ने भी राम को मस्तक नवाया व बोला— हे राम, मैं रावण को छोड़ आपकी शरण में आया हूँ, मुझे आज्ञा दीजिए। [386] राम ने उसे शरण दी व लंका का राज्य भी उसे समर्पित कर दिया। [387] अब राम ने वहाँ से आगे प्रस्थान किया।

(ख) रावण को सद्धर्म का उपदेश : राम की सेना के आने के समाचार के साथ ही रावण ने अपनी सेना को युद्धार्थ तैयार कर रणभेरी बजा दी। [388] विभीषण ने सोचा एक बार और रावण को समझाने का प्रयत्न करुँ। वह रावण के पास जाकर कहने लगा— "परस्त्री-हरण से तुम्हारे दोनों लोक बिगड़ गए हैं। कुल लज्जित हो गया है। राम सीता को लेने आए हैं अत: उन्हे सीता को सौंपकर उनका आतिथ्य स्वीकार करो। हे रावण, ये स्वयं राम हैं परंतु उनका दूत हनुमान भी क्या कम है, जिसे तुम जानते हो। तुम इस लक्ष्मी को नाश मत करवाओ। [389]"

इन्द्रजीत ने कहा— तुम राम के पक्ष की बात कर रहे हो। विर्भीषण बोला यह इन्द्रजीत तुम्हारा पुत्र रुप में शत्रु है जो कुल का नाश करवाएगा। [390] यह सुनते ही रावण तलवार से विभीषण को मारने आगे बढ़ा। विभीषण भी एक स्तंभ लेकर तैयार हुआ पर कुंभकर्णादि ने उन्हें छुड़ा दिया। रावण बोला— अरे, मेरे नगर से निकल जा (निर्याहि मत्पुर्या) और तभी विभीषण ने वहाँ से प्रस्थान कर दिया। [391]

(ग) राम एवं रावण की सेना : राम की वानर सेना संख्यात्मक एवं गुणात्मक दोनों दृष्टि से पूर्ण थी। राम की उस सेना ने युद्ध भूमि में खड़ी होने पर बीस योजन भूमि घेरी। युद्ध भूमि में खड़ी राम की सेना समुद्र की ध्वनिसम भयंकर कोलाहल कर रही थी। रावण ने भारी मात्रा में राम के सैन्य को देखकर अपने वीरों को आयुधादि से सज्जित, बख्तर पहनाकर तैयार किया। [392] रावण की सेना के वीर हाथियों, ऊँटों, सिंहों, खरों, रथों, मेषों, पाड़ों, घोड़ों एवं विमानों पर सवार होकर युद्धार्थ तैयार हो गए। सेना को तैयार देख रावण भी अस्त्र-शस्त्र से भरे रथ पर आ बैठा। भानुकर्ण रावण का अंगरक्षक बना। अब इन्द्रजीत, मेघवाहन, शुक्र, सकण, मारीच, मय आदि करोड़ों वीर रावण के इर्दगिर्द जा डटे। अब असंख्य सहस्र अक्षोहिणी सेना के साथ रावण ने युद्ध भूमि में प्रवेश किया। [393]

रावण के सैनिकों में किसी के पास शेर वाली ध्वजा, किसी के मयूर वाली ध्वजा, कोई अष्टपाद वाले मृगवाली ध्वजा, कोई चमूर मृग वाली ध्वजा,

कोई हाथी वाली ध्वजा, किसी के पास बिल्ली, साँप, मुर्गा वाली ध्वजा दिखाई देती है। किसी के हाथ में धनुष, किसी के खड्ग किसी के गोफण, किसी के मुद्गर, किसी के त्रिशूल, किसी के पधिरवाल, किसी के कुल्हाड़ी तथा किसी के हाथ में पाश सज्जित है। वे शत्रु सेना के सैनिकों का नाम लेते हैं कि मैं आज हाथ से ''अमुक'' को मारुँगा। रावण की सेना ने युद्ध क्षेत्र की पचास योजन भूमि को घेर लिया। इस प्रकार दोनो सेनाएँ आमने-सामने युद्धार्थ डट गईं। [394]

(घ) युद्ध : (१) युद्ध का प्रथम दिवस : युद्ध आरंभ होते ही दोनो ओर के योद्धा भयंकर अस्त्र शस्त्रादि से वार करते हुए भिड़ गए। [395] युद्ध भूमि से जा-जा, ठहर-ठहर, डर मत, इस प्रकार की आवाजें आने लगीं। बाणों, चक्रों, गदाओं आदि से युद्ध भूमि भरने लगी। [396] आकाश में तलवारें एवं कटे मस्तक उछलने लगे। मुद्गरों से गिरते हुए हाथियों को देख गेड़ीदड़ा (गेंदबल्ला)का खेल याद आ रहा था। [397] वीरों के हाथ, पैर व मस्तक कट-कट कर गिर रहे थे। वानर सेना उन्मत्त हो कर राक्षसों को परेशान करने लगी। राक्षस सेना के हस्त व प्रहस्त का वानर सेना के नल व नील ने सिर काट दिया।

हस्त, प्रहस्त को मरे देखकर राक्षसों ने सक्रोध वानरों पर भयंकर आक्रमण प्रारंभ किए। इन राक्षसों से आक्रोश, नंदन, दुहित, अनध, पुष्पास्त्र, विघ्नादि बंदर लोहा लेने लगे। मारीच राक्षस ने संताप को, नंद वानर ने ज्वर को, उद्दाम राक्षस ने विघ्न को, दु:खित बंदर ने शुक्र को,, सिंहध्वज राक्षस ने प्रथित को पछाड़ कर मार दिया।

सूर्यास्त होने पर दोनों सेनाओं ने अपने मरे हुए एवं घायल सैनिकों की संभाल ली। रात्रि-विश्राम के पश्चात् दूसरे दिन पुनः युद्ध की योजना बनानी प्रारंभ कर दी। [398]

(२) युद्ध का दूसरा दिन : प्रात:काल होते ही रावण युद्धभूमि में आया व राम के पराक्रमी सैनिकों से लड़ने लगा। [399] कुछ ही समय में संपूर्ण युद्ध भूमि में पर्वतकार मरे हाथी, सिर से अलग हुए धड़ तथा खून की नदी दीखने लगी। रावण को क्रोध पूर्वक लड़ते देख सुग्रीव व हनुमान रणभूमि में कूद पड़े। हनुमान ने माली राक्षस को अस्त्र रहित कर ''वज्रादर'' को मार दिया। [401] अब रावणपुत्र जंबूमाली हनुमान से आ भिड़ा। हनुमान ने मुद्गर प्रहार से उसे मूर्छित कर रथ, घोडे व सारथी को भी तहस-नहस कर दिया। क्रोधित हनुमान ने अपने चारों ओर के शत्रु राक्षसों को कुछ ही क्षण में नष्ट कर दिया। [402]

अपनी सेना को कमजोर होता देखकर कुंभकर्ण बंदरों को मारने लगा। उसे देखते ही सुग्रीव, भामंडल, महेन्द्र, दधिमुख, अद आदि सभी ने

शिकारी की तरह उसे घेर लिया। कुंभकर्ण, के 'प्रस्वापन' अस्त्र का जवाब सुग्रीव ने 'प्रबोधिनी' फेंक कर दिया। वानर सेना ने कुछ ही समय पश्चात् उसे सारथी, रथ व अश्वों से रहित कर दिया व वह भूमि पर मुद्गर से सुग्रीव से लड़ने लगा। अब सुग्रीव ने आकाश में उड़कर भारी शिला कुंभकर्ण के दे मारी, कुंभकर्ण ने उस शिला को मुद्गर से चकनाचूर कर दिया। अब सुग्रीव ने तडित दंडास्त्र फेंका। कुंभकर्ण ने उससे बचने के अनेक उपाय किए पर वह न बच सका एवं पृथ्वी पर गिर पड़ा।[403]

कुंभकर्ण के मूर्छित होने के समाचार से तुरन्त इन्द्रजीत युद्ध क्षेत्र में आया। उसे देखते ही वानर सेना छूमंतर हो गई वह गर्जना करते हुए चिल्लाया— हनुमान, सुग्रीव, राम व लक्ष्मण कहाँ है।[403] कुछ ही क्षणों सें सुग्रीव व भामंडल नागपाश में बाँध दिए गए।[404] इधर जब कुंभकर्ण को होश आया तो उसने एक ही गदा में हनुमान को मूर्छित कर दिया।[405] मूर्छित हनुमान को कुंभकर्ण जब बगल में दबाकर जा रहा था तब अंगद उससे भिड़ गया। कुंभकर्ण के हाथ उठाते ही हनुमान निकल गए। भामंडल व सुग्रीव को छुड़ाने जब विभीषण पहुँचे तो इन्द्रजीत व मेघवाहन चाचा की मर्यादा का ख्याल कर वहाँ से चले गए।[406] सुग्रीव व भामंडल युद्ध में जहाँ नागपाश से बंधे हुए पड़े थे वहाँ राम व लक्ष्मण आए। राम के सुवर्णकुमार देव का स्मरण करने से[407] तुरंत देव ने आकर उन्हें "निनादा" विद्या, मूसल, राय व हल दिए। लक्ष्मण को गारुडी विद्या, विधुतबदना गदा एवं रथ दिया। वारुण, आग्रेय, वायव्य आदि अनेक शस्त्र भी दिए।[408] गरुड पर बैठे लक्ष्मण को देखते ही सुग्रीव व भामंडल के पाश से नाग भाग गए एवं वे दोनों नागपाश से मुक्त हो गए। इस क्रोध से राम की सेना में जयजय कार होने लगी[409]"।

(३) लक्ष्मण का युद्धभूमि में अचेत हो जाना : प्रातःकाल होते ही जब युद्ध प्रारंभ हुआ तो राक्षस एवं वानर दोनों ही एक-दूसरे को नष्ट करने पर तुल गए। सुग्रीवादि वीरों की युद्धकला के समक्ष राक्षस भागने लगे।[410] राक्षसों का विनाश देख रावण युद्ध में उतर गया। रावण को देखते ही राम उसके सम्मुख जाने लगे तभी विभीषण ने आकर राम व रावण दोनों को रोक दिया।[411] विभीषण को देखकर रावण ने कहा— हे विभीषण! तू मेरे मुख का ग्रास है। तू राम-लक्ष्मण को छोड़ शीघ्र मेरे पास आ जा। आज राम व लक्ष्मण को मैं मारुँगा। तुझ पर स्नेह के कारण मैं तुझे यह वचन कह रहा हूँ।[412]

विभीषण बोला— पर सीता को दे दो। सीता को देकर अगर तुम अपवाद मिटा दोगे तो मैं तुम्हारी शरण में आने को सहमत हूँ।[413] यह सुन रावण ने विभीषण पर बाण संधान किया। विभीषण भी इससे युद्ध करने लगा। इधर युद्धार्थ आते कुंभकर्ण, इन्द्रजीत, सिंहधन व घटोदर को क्रमवार राम, लक्ष्मण, नील व दुर्भेष ने रोक लिया।[414] इन्द्रजीत ने क्रोधित होकर लक्ष्मण

पर तामसास्त्र फेंका तो लक्ष्मण ने तपनास्त्र से उसे रोक लिया। अब लक्ष्मण ने इन्द्रजीत को नागपाश से बाँध लिया। विराध उसे रथ में डाल अपनी छावनी में ले गया। [415] राम ने कुंभकर्ण को नागपाश में बाँध दिया जिसे भामंडल रथ द्वारा छावनी में ले गया। यह देख क्रोधित हो रावण ने लक्ष्मण पर त्रिशूल से वार किया जिसे लक्ष्मण ने नष्ट कर दिया। [416]

अब रावण को अमोघ विजया शक्ति आकाश में घूमाते देख राम ने लक्ष्मण को विभीषण को बचाने हेतु कहा। लक्ष्मण तुरंत विभीषण के आगे खड़े हो गए। [417] रावण लक्ष्मण से बोला—यह शक्ति तेरे लिए नहीं है। ठीक है, तू ही मर। क्योंकि तू ही मरने योग्य है—

पुरःस्थं गरुडस्थं तं प्रेक्ष्योवाच दशाननः।
न तुम्यं शक्तिरुत्क्षिप्ता मा मृथाः परमृत्युना॥
म्रियस्व यदि वा मार्यस्त्वमेवाड सि यतो मम।
वराकस्त्वत्प्रदे ह्येष ममाग्रे ड स्थापद्विभीषणः ॥ [418]

इतना कहते ही रावण ने घुमाकर शक्ति लक्ष्मण पर फेंकी जिसे लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, नल, भामंडल, विराध आदि सभी ने रोकने का प्रयास किया परंतु वह शक्ति सीधी लक्ष्मण के हृदय में लग गई। शक्ति प्रहार से लक्ष्मण भूमि पर गिर पड़े। वानर सेना में चारों ओर हा-हाकार मच गया। [419] यह देख राम ने क्रोधित हो रावण को रथहीन कर दिया जिससे वह अन्य रथ में जा बैठा। अब रावण ने सोचा कि लक्ष्मण तो मर गया होगा, राम भी उसके विरह में मर जाएगा। अब मैं व्यर्थ में क्यों लड़ूँ। यह विचार कर वह लंका नगरी में चला गया। [420]

(ड़) लक्ष्मण की मूर्छा दूर करने का उपाय व लक्ष्मण का सचेत होना : राम लक्ष्मण के वियोग में संज्ञा-विहीन हो गए। होश आने पर वे लक्ष्मण से बोले, हे लक्ष्मण, है वत्स, है प्रियदर्शन, तू बोल, तेरी इच्छा मैं अवश्य पूरी करूँगा। [421] क्रोधित हो राम रावण को मारने को चले पर सुग्रीव के समझाने पर वे लक्ष्मण को जाग्रत करने का उपाय सोचने लगे। विभीषण की सलाह से शरभ की आज्ञानुसार सभी ने मिलकर सात किलों की रचना की तथा उनकी रक्षार्थ खड़े हो गए। [422]

इधर एक विद्याधर को भामंडल राम के दर्शनार्थ वहाँ लाया जिसने लक्ष्मण के लिए उपाय बताया कि, [423] युद्ध में घायल मुझे भरत ने गंगोदक् से ठीक किया था उससे लक्ष्मण शीघ्र ठीक हो सकते हैं। गंदोदक का महत्व बताते हुए उस विद्याधर ने कहा— द्रोणमेघ की पत्नी प्रियंकरा की पुत्री विशल्या के जल से सिंचन करने वाले रोगरहित हो जाते हैं। स्वयं विशल्या की माता प्रियंकरा भी इस उपाय से रोगरहित हो गई। [424] सत्यभूषण मुनि ने विशल्या के तप का फल इस प्रकार कहा है कि इसके स्नान जल से मनुष्यों

के घाव ठीक होंगे, शल्य का उपहार व व्याधि का नाश होगा। विशल्या के पति लक्ष्मण होंगे :-

व्रणसंरोहणं शल्याडपहारो व्याधिसंक्षय:।

नृणां स्नानाम्भसाडपयस्याभावी भर्ता च लक्ष्मण:।[425]

अत: हे प्रभु प्रात:काल तक विशल्या का जल मँगवा दीजिए। हे प्रभु, यह कार्य शीघ्र ही प्रात:काल से पूर्व तक कीजिए।[426]

आज्ञा पाते ही भामंडल, हनुमान व अंगद वायुवेग से विमान द्वारा अयोध्या पहुँचे व स्तुति कर भरत को जगाया। भरत समेत वे द्रोणधन के पास पहुँचे व विशल्या की याचना की। द्रोणधन ने एक हजार कन्याओं के साथ विशल्या को लक्ष्मण को सौंप दिया। तुरन्त ये सभी लक्ष्मण के समीप विशल्या सहित आ उतरे। विशल्या के स्पर्शमात्र से शक्ति बाहर निकल गई जिसे हनुमान ने पकड़ लिया। शक्ति के क्षमा माँगने पर उसे मुक्त किया तथा वह अदृश्य हो गई। लक्ष्मण उसी समय उठ बैठे व राम से आलिंगित हुए। रामाज्ञा से लक्ष्मण ने विशल्या को एक हजार कन्याओं समेत स्वीकार किया।[427] लक्ष्मण की मूर्छा दूर होने से राम की सेना में भारी उत्सव का आयोजन किया गया। रावण ने समाचार मिलते ही अपने मंत्रियों को बुलाकर मंत्रणा प्रारंभ की।

(च) रावण का राम को दूत भेजना तथा बहुरुपा विद्या की साधना : कुंभकर्ण आदि को छोड़ने हेतु राम को मंत्रियों ने बदले में सीता की छुड़ाने की सलाह दी।[427] इधर रावणदूत सामंत राम के पास आया एवं बोला - रावण कहता है, मेरे भाइयों को छोड़कर सीता मुझे सौंप दो। इसके बदले मेरा राज्य व तीन हजार कन्याएँ स्वीकार करो। राम ने कहा— सीता को मुक्त करने पर ही कुंभकर्णादि की मुक्ति की जाएगी।[428] रावण का दूत जब अधिक बड़बड़ाने लगा तब लक्ष्मण ने क्रोधित होकर कहा, तू जा, रावण को युद्ध के लिए यहाँ भेज, मेरी भुजाएँ उसके नाश के लिये तैयार हैं :-

तदगच्छ संवाह्य तं युद्धाय दशकंधरम्।

कृतान्त इव सज्जो मे तं व्यापादयितुं भुज : ॥[429]

दूत से समाचार जान रावण ने मंत्रियों से विचार-विमर्श किया तो सभी ने सीता को राम को सौंपने की बात कही।[430] अन्य कोई उपाय न देख बहुरूपी विद्या-सिद्धि के लिए वह शांतिनाथ चैत्य में जाकर पूजन-वंदन व स्तुति करने लगा।[431] वहाँ वह रत्नशिला पर आसन लगा, अक्षमाला धारण कर विद्या-सिद्धि में जुट गया। लंका नगरी में मंदोदरी ने आदेश निकाला कि— सभी लोग आठ दिन तक जैन धर्म में तत्पर रहें। आज्ञा का उल्लंघन करनें वालों को सजा-ए-मौत दी जाएगी।[432]

इधर जब वानरों को रावण के विद्या-सिद्धि करने के समाचार मिले तब वे सभी अविचलित रावण की सिद्धि में बाधा डालने हेतु चैत्य में पहुँच

गए। अंगद ने मंदोदरी को रावण के सामने केशों से पकड़कर खींचा, परंतु रावण ध्यानमग्न रहा। तभी विद्या प्रकट हुई एवं बोली, मैं सिद्ध हो गई हूँ। बोल, मैं क्या करूँ। मैं विश्व को तेरे अधीन कर सकती हूँ। [433] रावण बोला तुम अभी अपने स्थान पर जाओ। समय पर तुम्हे याद करूँगा, तब आ जाना। विद्या अंतर्धान हो गई एवं वानर भी वहाँ से अपने स्थान पर लौट आए। [434]

(छ) रावण वध : रावण स्नान-भोजनादि से निवृत्त हो सीता के समीप गया एवं बोला, लम्बे समय तक इंतजार के बाद अब मैं राम-लक्ष्मण को मारकर तेरे साथ बलात् भोग करूँगा। [435] सीता ने प्रतिज्ञा की कि, "अगर राम, लक्ष्मण की मृत्यु होगी तो मैं अनशन पर हूँ। रावण ने सोचा मैंने यह ठीक तो नहीं किया है परंतु अब राम-लक्ष्मण को बाँधकर यहाँ लाऊँ फिर सीता को अर्पण करुँ तो ठीक रहेगा। [436]"

प्रात:काल रणक्षेत्र में लक्ष्मण व रावण का युद्ध प्रारंभ हुआ। भयप्राप्त रावण ने विद्या का स्मरण किया व उसके बल से अपने अनेक भयंकर रुप पैदा किए। [437] लक्ष्मण के सामने अनेक मायावी रावण युद्ध कर रहे थे। गरुड़ पर आरुढ़ हो लक्ष्मण तेज मुद्रा में युद्ध करने लगे। अब रावण ने अर्द्धचक्रित्व के चिह्न के चक्र का स्मरण कर उसे लक्ष्मण पर फेंका। चक्र ने लक्ष्मण की प्रदक्षिणा की तथा दाहिने हाथ पर स्थिर हो गया। [438] रावण विचार करने लगा कि क्या मुनि का वचन सत्य होगा रावण को विचार करते देखकर विभीषण ने कहा— हे भाई, जीवित रहने की इच्छा हो तो अभी भी सीता को सोंप दो। रावण कोपायमान होकर बोला—चक्र तो है ही, फिर भी मैं मुट्ठियों के प्रहार से लक्ष्मण को मार दूँगा। तभी लक्ष्मण ने उसी चक्र से रावण के सीने को चीर दिया। ज्येष्ट मास की कृष्ण एकादशी दिन के पिछले प्रहर में रावण मृत्यु को प्राप्त हुआ एवं चौथे नरक में गया।

(ज) रावण वध के पश्चात् : रावण के मरणोपरांत विभीषण ने राक्षसों से कहा— ये राम एवं लक्ष्मण आठवें बलदेव एवं वासुदेव हैं अत: तुम्हें इनकी शरण में जाना चाहिए। तब राक्षसों ने राम का आश्रय स्वीकार किया तथा राम व लक्ष्मण ने भी उन्हें अनुग्रहीत किया। [439] रावण की मृत्यु पर विभीषण ने भी शोकमग्न होकर अपने पेट में छुरी मारकर जीवन-लीला समाप्त करनी चाही, पर तभी राम ने उसे पकड़ लिया। [440] राम ने विभीषण, मंदोदरी आदि को समझाया कि— पराक्रमी एवं देवताओं को भी भयभीत करने वाला रावण वीरता से मृत्यु को प्राप्त कर कीर्ति का पात्र हुआ है। अत: शोक को छोड़ इसकी अंतिम क्रिया करो। [441]

फिर राम ने कुंभकर्ण, इन्द्रजीत, मेघवाहन आदि को मुक्त किया। मुक्त हुए इन सभी ने गोपीचन्दन के काष्ट की चिता बना कपूर-अगरादि से मिश्रित अग्नि से रावण का अग्नि संस्कार किया। राम ने भी पद्मसरोवर में

स्नान कर रावण को जलांजलि दी। [442] अब राम ने कुंभकर्णादि से अपना राज्य करने को कहा, परंतु वे बोले— हे महाभुज, हमें राज्य नहीं दीक्षा चाहिए। प्रात:काल होते ही मुनि ने उन दोनों का पूर्वभव सुनाया। पूर्वभव सुनकर कुंभकर्ण, इन्द्रजीत व मेघवाहन ने मंदोदरी सहित दीक्षा ग्रहण की। [443]

अब राम-लक्ष्मण ने वानरों समेत लंका में प्रवेश किया। राम ने पुष्पगिरी पर्वत शिखर के बाग में सीता को देखा। सीता को राम ने शीघ्र आलिंगित किया। [444] लक्ष्मण द्वारा सीता को नमस्कार करने पर सीता ने उन्हें आशीर्वाद दिया। सुग्रीव, विभीषण, हनुमान, अंगदादि सभी ने सीता को प्रणाम किया। [445]

भुवनालंकार हाथी पर सवार होकर राम रावण के निवास पर गए जहाँ उन्होंने चैत्य में प्रवेश कर सीता व लक्ष्मण सहित पूजा की। विभीषण की प्रार्थना पर वे सभी विभीषण के घर पहुँचे जहाँ उन्होंने स्नान, देवपूजा एवं भोजन किया। [446] विभीषण ने राम से लंका का संपूर्ण स्वर्ण-रत्नादि हाथी, घोड़े एवं द्वीप ग्रहण करने का निवेदन किया। [447] परंतु राम बोले— हे विभीषण, लंका का राज्य तो मैं तुम्हें पूर्व में ही दे चुका हूँ। यह कहकर उसी समय राम ने लंका के राज्य पर विभीषण का राज्याभिषेक किया :

रामोऽप्युवाच दत्तं ते लंकाराज्यं मया पुरा।
व्यस्मार्षीस्तदिदानीं किं महात्मन् भक्तिमोहित: ॥
एवं निषिध्य तं पद्मो लंकाराज्ये तदैव हि ॥
अभ्यषिंचत् स्वयं प्रीत: प्रतिज्ञातार्थ चालक: ॥ [448]

पुन: वे सभी विभीषण के घर से रावण के आवास पर गए जहाँ सिंहोदर आदि की कन्याओं के साथ राम व लक्ष्मणने विधिपूर्वक विवाह किए। ये सभी कन्याएँ पूर्व में इनको दी हुई थीं। इस प्रकार निर्विघ्न रुप से रहते हुए राम-लक्ष्मण सीता एवं हनुमान-सुग्रीवादि कपियों ने लंका में छ: वर्ष का समय व्यतीत किया। [449] उनके सामने ही मेघवाहन व इन्द्रजीत का मोक्षकाल हुआ जहाँ मेघरथ तीर्थ बना। कुंभकर्ण के नर्मदा नदी में मोक्ष होने पर वहाँ पृष्ठरक्षित तीर्थ बना। [450]

(११) राम आदि का अयोध्या में आगमन : भरत से जब माताओं को समाचार मिले कि लक्ष्मण को शक्ति लगी है एवं उपाय स्वरुप विशल्या को ले जाया गया है तो वे अति चिंतित हो गईं। तभी नारद ने जाकर अपराजिता एवं सुमित्रा को धैर्य दिया व कहा कि मैं अभी लंका जाकर राम-लक्ष्मण को अयोध्या ले आता हूँ। यह कहकर नारद आकाश मार्ग से लंका को चले गए। [451] लंका पहुँचने पर राम ने नारद का स्वागत किया एवं आने का कारण पूछा। नारद ने उत्तर में माताओं की व्याकुलता को उन्हें बताया। समाचार सुनते ही राम ने विभीषण से विदा माँगी परंतु विभीषण ने उन्हें मात्र

सोलह दिन और ठहरने का निवेदन किया। इस समयावधि में विभीषण कुशल कारीगरों को भेजकर अयोध्या को सजाने की इच्छा रखता था। अब नारद ने पुन: जाकर माताओं को पुत्रों के आगमन के समाचार दिए।[452]

सोलहवें दिन पुष्पकविमान से राम-लक्ष्मण ने सीता सहित अयोध्या को प्रस्थान किया। अयोध्या के समीप पहुँचते ही भरत-शत्रुघ्न हाथी पर बैठ उनकी अगुवानी को आए।[453] जैसे ही राम का विमान पृथ्वी पर उतरा, भरत-शत्रुघ्न भी हाथी से उतर गए। भरत राम के चरणों में गिर पड़े,[454] राम ने उन्हें उठाया एवं चुम्बन किया। शत्रुघ्न को भी उठाकर राम ने स्नेह किया। दोनों भाइयों ने जब लक्ष्मण को प्रणाम किया तब लक्ष्मण ने उन्हें आलिंगित किया। चारों भाई विमान से अयोध्या आए व महलों को चले। प्रथमत: राम अपराजिता से मिले तथा सीता व विशल्या ने सासुओं के चरणस्पर्श किए। सभी ने माताओं का आशीर्वाद प्राप्त किया।[455] देवी अपराजिता ने लक्ष्मण को यह कहते हुए आशीष दी कि हे पुत्र, तू भाग्य से ही हमारे लिए पुनर्जीवित हुआ है। भरत ने अब अयोध्या में एक महोत्सव का आयोजन किया।[456] इस प्रकार राम-लक्ष्मण एवं सीता लंका से सकुशल अयोध्या को पहुँच गए।

(१२) राम का राज्य स्वीकार करना : अयोध्या में आनंदोत्सव संपन्न होने के बाद भरत ने राम से निवेदन किया कि— हे आर्य, आपकी आज्ञा से मैंने अब तक राज्य किया है। अब आप मुझे दीक्षा लेने की अनुमति दीजिए एवं स्वयं राज्य स्वीकारिए। इस पर राम ने उन्हें समझाया कि, हे भरत, दीक्षा लेने से तुम हमारा त्याग कर पुन: विरहयुक्त हो जाओगे अत: पूर्व की तरह यहीं रहकर तुम आज्ञा-पालन करो। इस पर भी दृढनिश्चयी भरत जब चलने को तैयार हुए तो उन्हें लक्ष्मण, सीता व विशल्या ने समझाया। भरत के विचारों को बदलने के लिए सीता व विशल्या ने उन्हें सरोवर में ले जाकर जलक्रीड़ादि मनोरंजन करवाए।[457]

भरत जब सरोवर से बाहर आए तो मदांध भुवनालंकार हाथी उन्हें देखते ही शांत हो गया। राम-लक्ष्मण भी जब उसी उपद्रवी हाथी को बाँधने के लिए उसके पीछे दौड़ते हुए सरोवर के समीप पहुँचे तो आश्चर्यचकित हो गए। तभी वहाँ कुलभूषण व देशभूषण मुनि आए जिनकी राम-लक्ष्मण व भरत ने उद्यान में जाकर वंदना की। अब राम ने मुनियों से प्रश्न किया कि— हे मुनि, मेरा भुवनालंकार हाथी भरत को देखकर मदरहित क्यों हुआ ?[458]

देशभूषण मुनि ने भरत व भुवनालंकार हाथी का पूर्वभव राम को सुनाया एवं कारण समझाया जिससे यह हाथी भरत को देखकर शांत हो गया। था।[459] अपना पूर्वभव सुन भरत को अत्यधिक वैराग्य उत्पन्न हो गया। वियोगी भरत ने उस समय एक हजार राजाओं सहित दीक्षा ग्रहण की एवं समय पर मोक्ष को गया। भुवनालंकार हाथीभी अनशन कर मरा एवं देव बना।

भरत की माता कैकेयी ने भी संयम व्रत स्वीकार कर लिया।[460] भरत के दीक्षा ग्रहण करने के बाद नगरजनों व विद्याधरों ने राम को राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना की। राम ने उन्हें वासुदेव लक्ष्मण का राज्याभिषेक करने की आज्ञा दी अतः उन्होंने तदनुसार लक्ष्मण का राज्याभिषेक किया। तत्पश्चात् बलदेव राम का राज्याभिषेक हुआ। अब आठवें वसुदेव एवं बलदेव राज्य करने लगे। राम ने विभीषण को राक्षसदीप, सुग्रीव को वानरदीप, हनुमान को श्रीपुरनगर, विराध को पाताल लंका, नील को ऋक्षपुर तथा प्रतिसूर्य को हनुपुर नगर दिए। इसी प्रकार रत्नजटी को नैवोपगीतनगर तथा भामंडल को रथनूपुर नगर सौंपा। शत्रुघ्न ने मथुरा नगर को ग्रहण किया। राम उन्हे मथुरा देना नहीं चाहते थे परंतु अधिक आग्रह करने पर राम ने उन्हें मथुरा का राज्य दे दिया।[461] अब राम एवं लक्ष्मण आनंद से साम्राज्य चलाने लगे।

(१३) परवर्ती घटनाएँ : (क) शत्रुघ्न की मथुरा विजय : शत्रुघ्न ने जब मथुरा का राज्य माँगा तो राम ने उन्हें समझाया कि मथुरा के राजा मधु के पास अमरेन्द्र द्वारा दिया हुआ शत्रुओं के लिए घातक त्रिशूल है, अतः तुम कष्टसाध्य मथुरा नगरी को न लेकर अन्य राज्य माँग लो। लेकिन शत्रुघ्न बोले— "प्रतिकारं करिष्यामि व्याधेरिव भिषग्वरः। राम ने देखा यह हठी मानेगा नहीं, अतः उसे समझाया कि मधु जब त्रिशूल रहित हो तभी तुम युद्ध करना।[462]"

राम ने कृतांतवदन सेनापित के साथ शत्रुघ्न को मथुरा जाने की आज्ञा दी। लक्ष्मण ने शत्रुघ्न को अग्निमुख बाण व अर्णवावर्त धनुष दिए। मथुरा पहुँच कर शत्रुघ्न नदी के तीर पर रहे एवं गुप्तचर को जानकारी लाने हेतु नगर में भेजा। गुप्तचर समाचार लाया कि वह मधु त्रिशूल रहित रानी जयंति के साथ उपवन में क्रीड़ारत है। यह देख शत्रुघ्न ने रात को मथुरा में प्रवेश किया। समाचार मिलते ही मधु की सेना सामने आ डटी। युद्धारंभ में ही शत्रुघ्न ने मधुपुत्र लवण को मार दिया।[463] पुत्र वध से क्रोधित मधु एवं शत्रुघ्न दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध में शत्रुघ्न ने समुद्रावर्त एवं अग्निमुख बाणों के प्रहार से मधु को मार दिया। मधु समझ गया कि त्रिशूल रहित इसने मुझे मारा है। मैंने कभी देवपूजा नहीं की, जिनालयों का निर्माण नहीं करवाया, दान-पुण्य नहीं दिया। ऐसे विचार करते हुए उसके प्राण निकल गए। मरने पर वह देव हुआ।

अब त्रिशूल ने जाकर उसके मित्र चमर को मधु के मरने की सूचना दी। समाचार पाते ही मधु-मित्र चमर शत्रुघ्न को मारने चला। इन्द्र के समझाने पर भी वह नहीं माना। चमर ने मथुरा में आकर अनेक व्याधियाँ उत्पन्न कीं। प्रतिदिन व्याधियों से दुःखी होकर शत्रुघ्न अयोध्या गए एवं राम-लक्ष्मण तथा कुलभूषण मुनि से प्रार्थना की कि, हे प्रभु, मथुरा में इस व्याधियों का क्या

कारण है? राम ने भी मुनि से प्रश्न किया कि हे मुनि, शत्रुघ्न को मथुरा से इतना आग्रह क्यों है? इस पर मुनि ने शत्रुघ्न के पूर्वभव की कथा उन्हें सुनाई।[464] पूर्वभव सुनाकर मुनियों ने वहाँ से विहार किया। अब शत्रुघ्न के मथुरा नगर के समीप एक गुफा में सप्त-ऋषियों ने निवास किया। सप्त-ऋषियों के प्रभाव से मथुरा की समस्त व्याधियाँ समाप्त हो गईं। शत्रुघ्न को सप्त-ऋषियों के प्रभाव की जानकारी होने पर वे कार्तिक पूर्णिमा को सप्त-ऋषियों के पास पहुँचे एवं भिक्षा-ग्रहण करने का निवेदन किया। परंतु उन्होंने उनका प्रस्ताव नहीं माना। तब शत्रुघ्न ने उन्हें कुछ काल और रहने का निवेदन किया उसे भी अस्वीकार करते हुए सप्तऋषियों ने शत्रुघ्न को आदेश दिया कि— हे शत्रुघ्न, तुम मथुरा नगर के घर-घर में अरिहंतों के बिम्ब प्रतिष्ठित करो तो किसी प्रकार की व्याधि नहीं होगी। शत्रुघ्न ने नगर के चारों ओर सातों ऋषियों की रत्न युक्त प्रतिमाएँ स्थापित कीं जिससे मथुरा व्याधि-रहित हो गई।[465]

इधर रत्नपुर के राजा रत्नरथ की रानी चंद्रमुखी से मनोरमा उत्पन्न हुई जिसे नारद ने लक्ष्मण को देने के लिए कहा। मनोरमा द्वारा नारद के अपमान से नारद लक्ष्मण के पास आए एवं चित्र के रुप में सुन्दर मनोरमा की प्रशंसा लक्ष्मण के सामने की। लक्ष्मण मनोरमा की सुन्दरता पर मोहित होकर राम सहित रत्नरथ राजा के पास पहुँचे तथा उससे युद्ध कर उसे हराया। हारे हुए रत्नरथ ने श्रीदामा व मनोरमा अपनी दोनों पुत्रियाँ क्रमशः राम एवं लक्ष्मण को सौंप दी।[466]

अब वैताढ्य पर्वत की दक्षिण श्रेणी को जीतकर राम अयोध्या गए एवं पृथ्वी का पालन करने लगे।

लक्ष्मण की सोलह हजार रानियाँ हुईं जिनमें, आठ पटरानियाँ थीं। उनके ढाई सौ पुत्र थे जिनमें आठ पुत्र पटरानियों से उत्पन्न हुए थे। राम की चार महारानियाँ थी जिनके नाम सीता, प्रभावती, रतिनिमा एवं श्रीदामा थे।[467]

(ख) राम द्वारा सीता का परित्याग : सीता ने एक बार स्वप्न में दो शेरों को अपने मुख में प्रवेश करते देखा एवं यह वृत्तांत राम से कहा। राम ने कहा कि तुम दो पुत्रों की माता बनोगी परंतु यह स्वप्न आनंदप्रद नहीं लगता। कुछ काल व्यतीत होने पर सीता के गर्भ-धारण के लक्षण स्पष्ट हुए जिन्हें देखकर सपत्नियाँ इर्ष्या करने लगीं। एक दिन सपत्नियों ने सीता से रावण का परिचय पूछा तो सीता ने रावण के पैरों को चित्रित किया। तभी उधर से राम आए जिन्हें सपत्नियों ने कहा कि "आपकी प्रिय सीता अभी तक रावण को नहीं भूली है। राम पर इस बात का असर" न होता देखकर यह प्रकरण दासियों द्वारा सपत्नियों ने जनता तक पहुँचा दिया।

बसंतोत्सव आने पर राम व सीता महेन्द्रोदय उद्यान में गए एवं क्रिड़ायुक्त अरिहंत पूजा के उत्सव को देखा। सीता को वहाँ अशुभ सगुन होने

से उन्होंने राम से दुःख आने की आशंका प्रकट की। राम बोले— हे देवी! खेद न करो! सुख व दुःख कर्म के आधीन हैं। तुम मंदिर में जाकर पूजा करो व दान दो, क्योंकि आपत्ति में धर्म ही शरण है। सीता ने अरिंहत की पूजा की एवं दान दिए।[467]

एक दिन नागरिक अधिकारियों ने कहने से पूर्व ही क्षमा माँगकर डरते हुए राम से कहा कि[468] हे देव, सीता के विषय में यह अपवाद फैल रहा है कि व्याभिचारी रावण ने अवश्य सीता को बलात्कार से भोगा होगा :

देव देव्यां प्रवादोडस्ति घटते दुर्घटो डपिहि ।
युकत्या हि यद्घटामेति श्रद्धेयं तन्मनीपिणां ॥
तथाहि जानकी हृत्वा रावणेन् रिरंसुना।
एकैव निन्ये तद्वेश्मन्यवात्सी कीच्च चिरं प्रभो॥
सीता रक्ता विरक्ता वा संविच्चा वा प्रसह्यवा वा।
स्त्रीलोलेन दशास्येन नूनं सयाद्भोगदूषिता ॥[469]

नगर अधिकारियों की ऐसी सूचना पर राम स्वयं गुप्त रीति से नगर में घूमे एवं लोकापवाद को सुना। पुनः राम ने लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण आदि जासूसों को भेजकर भी स्पष्टीकरण कर लिया कि समस्त नगरजन सीता को कलंकित कर रहे हैं। यह सुन लक्ष्मण अति क्रोधित हुए कि इन सभी निंदकों को क्षण मात्र में यमलोक पहुँचा दूँ। राम ने उन्हें समझाया कि लोक अपवाद के नाश के निमित्त सीता को त्यागना अब आवश्यक है। अब राम ने कृतांतवदन सेनापति को आदेश दिया कि गर्भवती होने के वावजूद भी सीता को जंगल में छोड़ आओ। लक्ष्मण जब राम को समझाने लगे तो राम बोले— नातः परं त्वया वाच्यम्" यह सुनकर लक्ष्मण मुँह ढक कर घर में चले गए।[470]

एक दिन राम की आज्ञा से कृतांतवदन समेत शिखर की यात्रा के बहाने सीता को रथ में बिठाकर गंगा को पार करता हुआ सिंहनिनादक वन में पहुँचा। वन में पहुँचने पर कृतांतवदन के गिरते आँसुओं को देखकर सीता ने इसका कारण पूछा तो कृतांतवदन बोला— हे देवी। आप निरपराध हैं परंतु लोकापवाद से राम ने आपका त्याग किया है। हे देवी, आपको यहाँ लाने का पापकर्म मैंने किया है। मैं पापी हूँ। ऐसे शब्द सुनते ही सीता रथ से गिर पड़ी एवं मूर्छित हो गईं। सीता को मरी हुई समझ कृतांतवदन रोने लगा। धीरे-धीरे सीता को चेतना प्राप्त हुई एवं वे बोली राम कहाँ है? अयोध्या कितनी दूर है? इस प्रकार वह विलाप करने लगी।[471]

अब कृतांतवदन जब अयोध्या के लिए रवाना होने लगा तब सीता ने उससे कहा — "मेरा यह संदेश राम को सुना देना कि," अभागिन मैं अपने कर्मफल को जंगल में भोगूँगी पर आपका यह कार्य विवेकपूर्ण एवं कुलानुरूप नहीं है। हे स्वामी, आप मेरी तरह जैन धर्म को मत छोड़ना।[472] यह कहती

हुई सीता मूर्छित हो गई एवं पुनः बोली, राम का कल्याण हो। लक्ष्मण को आशीष कहना। हे वत्स, अब तुम जाओ। तुम्हारा मार्ग कल्याणकारी हो।

कृतांतवदन ने सीता को प्रणाम किया एवं अयोध्या को चल दिया।[473]

(ग) लवण एवं अंकुश का विवाह : वन में विचरण करती हुई सीता ने सेना को अपनी ओर आते देखकर अपने समस्त गहने उतार लिए एवं सेना के राजा के सामने रखकर वह स्थिर हो गई। राजा ने सीता के आभूषण उसे लौटा दिए एवं पूछा— हे देवी, तुम कौन हो? किसने तुम्हारा त्याग किया है? मैं तुम्हारे दुःख से दुःखी हूँ। मंत्री द्वारा पुंडरीक नगर के राजा वज्राजंध का परिचय पाकर सीता ने राजा को अपना संपूर्ण वृत्तांत सुनाया। वज्राजंध बोला—तुम मेरी धर्म की बहन हो। मेरे घर चलो। राम पश्चात्ताप कर शीघ्र ही तुम्हारी खोज करेंगे। तब शिबिरका में आरुढ़ हो सीता पुंडरीकपुर में आई। धर्मपरायणतायुक्त वह वज्राजंध के घर में अलग से रही।[474] उधर कृतांतवदन ने अयोध्या पहुँचकर सीता द्वारा दिया गया संदेश राम को सुनाया। राम सीता का संदेश सुनकर मूर्छित हो गए। लक्ष्मण ने चंदन जल सिंचन कर उन्हें सचेत किया तब वे पुनः विलाप करने लगे। अब लक्ष्मण की सलाह पर राम कृतांतवदन व अनेक विद्याधरों को साथ में लेकर विमान से सीता की खोज में निकले। सीता कहीं भी नहीं मिली। राम ने उसे जंगली जानवरों द्वारा खाया हुआ जानकर वे घर आए एवं सीता का प्रेतकार्य किया।[475]

पुंडरीकनगरी में रहती हुई सीता के अनंगलवण व मदनांकुश नामक दो पुत्र हुए। राजा ने उनके जन्म व नामकरण का महोत्सव आयोजित किया। कुछ बड़े होने पर उन्हें विद्या प्राप्त करने हेतु सिद्धार्थ नामक अनुव्रतधारी सिद्धिपुत्र को सौंपा गया। भिक्षार्थ आए सिद्धार्थ ने "ये दोनों पुत्र तुम्हारे मनोरथ शीघ्र पूरा करेंगे, ऐसी भविष्यवाणी की। सिद्धार्थ ने दोनों शिष्यों को अनेक कलाओं में पूर्ण कर दिया। लवण जब यौवन वय का हुआ तब वज्राजंध ने अपनी पुत्री शिशिचूला एवं बत्तीस कन्याओं का विवाह उससे कर दिया। अंकुश के लिये राजा पृथु से युद्ध कर उसे हराकर उसकी पुत्री कनकमाला का विवाह करवाया। दोनों भाइयों के विवाह के बाद एक दिन वहाँ नारद आए। वज्राजंध के निवेदन पर नारद ने लवण व अंकुश के वंश का पूर्ण परिचय उन्हें दिया[476]"।

(घ) राम व लवण-अंकुश का मिलन : प्रसंगवश जब नारद से लवणांकुश को राम-लक्ष्मण का परिचय प्राप्त हुआ तो अंकुश को बिना परीक्षा किए राम द्वारा सीता का त्याग अनुचित लगा।[477] तब नारद से उन्होंने अयोध्या की दूरी पूछी जो नारद ने एक सौ साठ योजन बताई। अब लवण ने राजा वज्राजंध से अयोध्या जाने की आज्ञा माँगी। लवणांकुश की अयोध्या जाने की इच्छा पर [478] विवाह के बाद लवणांकुश, वज्राजंध एवं पृथु चारों ने

प्रस्थान किया। रास्ते में वे लोकपुर, लंपाक, विजयस्थली को जीतते हुए आगे बढ़े। आगे इन्होंने रुण, कालांशु, नंदिवंदन, सिंहल, शलभ, नल, भीम, भूधरवादि राजाओं को पराजित किया। अनेक राजाओं को जीतकर वे पुनः पुंडरीकपुर आए तथा महोत्सव का आयोजन किया। लवणांकुश की विजय पर सीता ने उन्हें आशीर्वाद दिया। अब लवण व अंकुश ने जीते हुए राजाओं समेत अयोध्या जाकर राम के पराक्रम की परीक्षा लेने की आज्ञा वज्राजंघ से माँगी, तब सीता ने अपने पुत्रों से कहा कि तुम अपने पिता से नम्रता पूर्व मिलना। अब लवणांकुश भारी सेना लेकर दिशाओं को रौंदते हुए अयोध्या के समीप पहुँचे। राम-लक्ष्मणादि को सेना की जानकारी मिलते ही सुग्रीवादि को लेकर युद्ध करने के लिए चल पड़े। भामंडल सीता को विमान में बिठाकर लवणांकुश की छावनी में ले आया एवं उसने लवणांकुश से अपने पिता राम एवं लक्ष्मण से युद्ध न करने की सलाह दी।[479]

फिर भी देखते ही देखते दोनों सेनाओं में युद्ध आरंभ हो गया। थोड़े ही समय में लवणांकुश ने राम की सेना को परास्त कर दिया।[480] राम इन छोटे-छोटे बालकों की वीरता को देख अचंभित हुए एवं सोचने लगे कि ये किसके पुत्र होंगे।[481] अब कृतांतवदन राम की आज्ञा से उनके रथ को लवणांकुश के सामने लाया, परंतु बोला, हे स्वामी, शत्रु के बाणों से रथ जर्जर हो रहा है, अश्व आगे नहीं बढ़ रहे हैं, मेरी भुजाएँ भी चाबुक मारने में असमर्थ हो गई हैं। राम बोले, तुम सत्य कह रहे हो, क्योंकि आज तो मेरे यह वज्रावर्त धनुष, मुशल, रत्न एवं हल रत्न भी बेकार साबित हो रहे हैं।[482] तभी युद्ध भूमि में अंकुश के बाण से लक्ष्मण मूर्छित हो गए। संज्ञा प्राप्त कर लक्ष्मण ने चक्र को अंकुश पर छोड़ा परंतु वह तो अंकुश की प्रदक्षिणा कर पुनः लक्ष्मण के हाथ में आ गया।[483]

उसी समय नारद ने आकर राम व लक्ष्मण को कहा कि ये तुम्हारे ही पुत्र है। नारद ने उनसे सीता त्याग से वर्तमान तक का संपूर्ण वृत्तांत कहा। लवणांकुश ने राम-लक्ष्मण के चरण स्पर्श किए। राम ने उन्हें गोद में बिठाकर चुम्बन किया। लक्ष्मण ने दोनों का आलिंगन किया। पुत्रों को प्राप्त कर राम अति सुखी हुए। अब सीता पुनः पुंडरीकपुर चली गई एवं पुत्रों सहित राम विमान से अयोध्या गए जहाँ महोत्सव आयोजित किया।[484]

(ड़) सीता का अग्नि दिव्य : लवणांकुश के अयोध्या आ जाने के पश्चात् लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण, हनुमान, अंगदादि ने सीता को अयोध्या लाने हेतु राम से आज्ञा माँगी। राम बोले कि ''लोकापवाद को मिटाने हेतु सीता लोगों के सामने कुछ दिव्य करे तो यह संभव हो सकेगा''।[485] राम की आज्ञा लेकर सुग्रीव पुंडरीकपुर पहुचे एवं सीता को विमान में बिठाकर अयोध्या की तरफ प्रस्थान किया। इधर राम ने नगर के बाहर एक ऊँचा मंच

बनाया जिस पर राजा, नगर-जन आमात्यादि विराजमान हुए। तभी सीता ने विमान से उतरकर मंच पर सभी राजाओं को प्रणाम किया।[486] लक्ष्मण ने जब सीता से नगर में प्रवेश करने का निवेदन किया तब वे बोली— हे वत्स, प्रथम मैं अपवाद शांत करने के निमित्त शुद्धि करूँगी, तत् पश्चात् नगर में प्रवेश करुँगी।[487]

तब राम ने सीता से कहा— "रावण के घर रहकर भी अगर रावण के साथ तुमने भोग न किया हो तो सभी के समक्ष शुद्धि के लिए कुछ दिव्य करो।"[488] सीता बोली— "आपके समान कोई बुद्धिमान नहीं जो प्रथम मुझे त्याग कर अब दोष-ज्ञान कर रहे हो।" मैं अब भी तैयार हूँ।[489] राम ने कहा— मैं जानता हूँ तुम निर्दोष हो मगर लोकापवाद मिटाने के लिए ऐसा करना आवश्यक था। सीता उस समय पंचदिव्य (अग्नि प्रवेश, तंदुल भक्षण, तराजू आरोहण, सीसापान एवं शस्त्रधार ग्रहण) करने को तैयार हो गई। सीता ने इसे करने हेतु लोगों से आज्ञा माँगी।[49]

सीता जब दिव्य करने हेतु उद्यत हो गई तब सिद्धार्थ, नारद एवं समस्त जनों ने राम से सीता की दिव्य प्रतीज्ञा न लेने को कहा क्योंकि सीता सती है इसमें इन्हें कोई संदेह नहीं। परंतु राम ने उनसे कहा—तुम सब दो प्रकार बातें बना रहे हो। जब सीता उस समय दूषित थी तो अब वह शीलवान कैसे हो गयी। अत: तुम्हारे आरोपों को दूर करने हेतु सीता अग्नि प्रवेश करे।[492] इस प्रकार कह कर राम ने तीन सौ हाथ चौड़ा एवं लगभग दस फीट गहरा गड्ढा खुदवाया। उसे चंदन की लकड़ियों से भरा गया। अब इन्द्र देव ने अपने सेनापति को निर्दोष सीता की सहायता करने का आदेश देकर वहाँ भेजा। राम की आज्ञा से अग्नि प्रज्ज्वलित की गयी। अग्नि की भयंकर लपटों को देख राम चिंतामग्न हुए[493] परंतु तभी सीता ने अग्नि के समीप जाकर कहा— "हे लोकों, अगर मैंने राम के अलावा किसी अन्य की इच्छा की हो तो यह अग्नि मुझे जला डाले अन्यथा शीतल हो जाए।" यह कह नमस्कार मंत्र का स्मरण करती हुई सीता ने अग्नि-प्रवेश किया।[495]

सीता के अग्नि में प्रवेश करते ही अग्नि शांत हो गई एवं गड्ढा जल से भर गया। लोगों ने सीता को जल के कमल पर आसीन देखा। देखते ही देखते वह जल गड्ढे से निकलकर संपूर्ण लोगों को डूबाने लगा। तब सभी कहने लगे— हे महा सती सीता, रक्षा करो, रक्षा करो। यह सुन सीता ने हाथ उठाया एवं जल शांत हो गया। वह गड्ढा सुन्दर वापिका बन गया जिसमें सुगंधित कमल, भ्रमर एवं हंसादि संगीत-नाद करने लगे। सीता की इस विजय से आकाश से पुष्पवृष्टि हुई एवं लोकों में जय-जयकार होने लगा। लवणांकुश हँसते हुए जाकर सीता की गोद में बैठ गए। सभी ने सीता को नमस्कार किया व राम बोले—" नगरजनों के अपवाद से मैंने तुम्हारा त्याग किया था अत: मुझे क्षमा करो। हे सीते, अब विमान में बैठकर घर चलो एवं पूर्व की तरह

कार्य करो सीता बोली— यह सब मेरे पूर्व-कर्म के दोष हैं, आपका नहीं। अब मैं इन कर्मों की नाशक प्रव्रज्या को ग्रहण करूँगी।[496] यह कह सीता ने अपनी मुष्ठि से केश खींचकर राम को अर्पित किए। राम यह देख मूर्छित हो गए। तब सीता ने जयभूषण मुनि के पास जाकर दीक्षा ग्रहण की एवं सुप्रभा साध्वी की शिष्या बन गई।[497]

(च) जयभूषण मुनि द्वारा पूर्वभव सुनाना एवं लक्ष्मण पुत्रों व हनुमानादि की दीक्षा : लक्ष्मण ने राम को सांत्वना दी एवं समझाया। अब राम एवं लक्ष्मण मुनि जयभूषण के पास गए। धर्मोपदेश की समाप्ति पर राम ने मुनि से पृछा— हे प्रभो, मैं आत्मा को नहीं जानता,, मैं भव्य हूँ या अभव्य, कृपया कहो।[498] मुनि ने कहा— भव्य हो एवं इसी जन्म में मुक्ति को प्राप्त करोगे। विभीषण ने मुनि से पृछा, हे मुनि, पूर्वजन्म के किस कर्म से रावण ने सीताहरण किया एवं लक्ष्मण ने उसे मारा। सुग्रीव, भामंडल, लवण, अंकुश एवं मैं आदि किस कर्म से राम के प्रति आग्रहयुक्त हैं। तब मुनि जयभूषण ने सुग्रीव, सीता, रावण, विभीषण, लक्ष्मण, विशल्या, भामंडल, लवण, अंकुश, सिद्धार्थ आदि के पूर्वभव को सुनाया।[499] मुनि के वचनों को सुनकर सेनापति कृतांतवदन ने उसी समय दीक्षा ली।[500]

अब राम समेत सभी ने मुनि को नमस्कार व सीता का वंदन किया एवं अयोध्या आ गए। सीता एवं कृतांतवदन तपस्या करने लगे। ये दोनों तप करते हुए मोक्ष को गए। कृतांतवदन ब्रह्मलोक में गया एवं सीता साठ वर्ष तक तपस्या कर, तीस दिन-रात्रि अनशन कर अच्युत इन्द्र हुए।[501]

इधर कांचनपुर के राजा कनकरथ ने अपनी पुत्रियों मंदाकिनी एवं चंद्रमुखी के स्वयंवर में राम व लक्षमण को अपने पुत्रों सहित आमंत्रित किया। स्वयंवर में मंदाकिनी ने अनंगलवण एवं चंद्रमुखी ने अंकुश को पसंद किया। यह देख लक्ष्मण के सभी पुत्र लवणांकुश से युद्ध करने लगे परंतु लवणांकुश ने अपने भाइयों को अवध्य समझकर[502] क्षमा कर दिया। अब लक्ष्मण के पुत्रों को अपनी भूल का अहसास होते ही उन्होंने महाबल मुनि से दीक्षा ग्रहण की।[503]

एक दिन भामंडल जब अपने महल की छत पर प्रव्रज्या ग्रहण करने की बात सोच रहा था तभी उस पर बिजली गिरी एवं मृत्यु को प्राप्त वह देवकुरु में पैदा हुआ।[504]

इधर चैत्र माह में हनुमान चैत्य वंदना कर मेरुपर्वत से लौट रहे थे। उनकी निगाह अस्त होते सूर्य पर पड़ी। उसे देख उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया तथा नगर में आकर अपने पुत्र को राज्यासीन कर उन्होंने धर्मरत्न आचार्य से दीक्षा ग्रहण की।[505] उनके साथ साढ़े सात सौ अन्य राजाओं ने भी संयम ग्रहण किया। हनुमान ने ध्यानावस्था को प्राप्त किया एवं अव्यक्त (मुक्त) पद को प्राप्त हुए।[506]

(छ) लक्ष्मण की मृत्यु, राम का अविवेकी होना, राम का मुनि बनना एवं निर्वाण : हनुमान को संयम लिए हुए देखकर राम हँसने लगे। यह देख सौधर्मेन्द्र ने सभा में कहा— लक्ष्मण से स्नेह, राम के वैराग्य में बाधा है। अत: दो देवों को माया रचने हेतु लक्ष्मण के घर भेजा। मायावी देवों ने लक्ष्मण के घर में राम की मृत्यु के वातावरण का सृजन किया। लक्ष्मण ने देखा कि अंत:पुर की स्त्रियाँ अरे राम! तुम्हारी अकाल मृत्यु क्यों हुई, इस प्रकार विलाप कर रही हैं। राम की मृत्यु के दु:ख को सहन न कर सकने वाले लक्ष्मण वास्तव में मृत्यु को प्राप्त हो गए। लक्ष्मण को हकीकत मरा हुआ समझने पर देव पश्चाताप करते हुए देवलोक को गए। [507]

अब लक्ष्मण की मृत्यु से चारों ओर वातावरण आक्रंदित हो उठा। तभी वहाँ राम आये एवं सभी को सांत्वना दी कि मै जिन्दा हूँ तथा लक्ष्मण अस्वस्थ है जो औषधि से शीघ्र ठीक हो जायेगा। राम ने उसी समय वैद्यों, ज्योतिषियों एवं तांत्रिकों को बुलाया पर लक्ष्मण जीवित नहीं हुए। यह देख स्वयं राम एवं शत्रुघ्न, विभीषणादि सभी रोने लगे। माताएँ विलाप करने लगीं। चारों और हा-हाकार मच गया। [508]

लक्ष्मण की मृत्यु से लवणांकुश को वैराग्य उत्पन्न हो गया एवं उन्होंने पितृज्ञा लेकर अमृतघोष मुनि से दीक्षा ग्रहण की। [509]

राम को अत्याधिक विलाप करते देख उन्हें विभीषणादि ने समझाया कि हे प्रभु आप तो घीरों में भी धीर हैं। अधैर्य का त्याग कर अब लक्ष्मण की अंतिम क्रिया कीजिए। राम बोले— ''तुम सब लुच्चे हो, झूठे हो, मेरा भाई जिन्दा है''। अब राम लक्ष्मण की मृतदेह को लेकर इधर-उधर विचरण करने लगे। [510] कभी वे उस शव को स्नान करवाते, कभी भोजन करने हेतु आग्रह करे, कभी चुम्बन करते तथा अपने साथ सुलाते। इस प्रकार की विकल चेष्टाओं में राम ने छ: माह व्यतीत किए।[511] ऐसी परिस्थिति देखकर इन्द्रजीत एवं सूंद राक्षस ने राम पर आक्रमण किया परंतु जटायु देव ने उन्हें भगा दिया। फिर उन सबने अतिवेग मुनि से दीक्षा ग्रहण की। [512] अब राम के अविवेकी कार्य को देखकर जटायु देव से कहा कि अरे मूर्ख! यह असफल प्रयोग सफल कैसे होंगे। इसी प्रकार कृतांतवदन के कंधे पर मृत स्त्री को देखकर भी राम ने उसे कहा कि— मूर्ख! मृत देह को लिए क्यों घूम रहा है ? तब जटायु देव व कृतांतवदन ने उन्हें समझाया कि आप सत्य हैं, परंतु हे राम, आप इस मृत लक्ष्मण को लेकर छ: माह से क्यों घूम रहे हो ? तब राम को संज्ञा प्राप्त हुई एवं उन्होंने लक्ष्मण का अंतिम संस्कार किया। अव राम ने शत्रुघ्न को राज्य ग्रहण करने का आदेश दिया परंतु शत्रुघ्न ने दीक्षा लेने की अनुमति मांगी। इसपर राम लवणपुत्र अनंगदेव को राज्य देकर स्वयं महामुनि सुव्रत के पास पहुँचे। [513]

महामुनि सुव्रत से राम ने शत्रुघ्न, सुग्रीव, विभीषण, विराधित एवं अन्य राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की। यह देख अन्य सोलह हजार राजाओं एवं तीस हजार महिलाओं ने भी दीक्षा ली। [514] राम ऋषि ने गुरु-चरणो में साठ वर्ष तक तपस्या की तथा अरण्य को विहार किया। अरण्य में एक रात्रि को उन्हें अवधि ज्ञान प्राप्त हुआ जिसमें लक्ष्मण के नरकवास का भी पता चला। राम सोचने लगे, लक्ष्मण ने अपनी उम्र के बारह हजार वर्ष व्यथा गुमा दिए, यह सोच राम कठोर तपस्या करने लगे। [515]

अरण्य में रहते हुए राम ने प्रतिज्ञा की कि अगर समय पर स्वतः भिक्षा मिल जाए तो पारणा करूँगा, अन्यथा नहीं। इस प्रतिज्ञा से समय पर भोजन न मिलने से राम का शरीर अति कृश हो गया। एक दिन प्रतिनंदी राजा ने अरण्य में आकर राम मुनि को पारणा करवाया एवं सपरिवार स्वयं ने भी भोजन किया। राम ऋषि के उपदेश को सुनकर प्रतिनंदी ने श्रावकत्व स्वीकार किया। [516]

अब धीरे-धीरे राम उग्र तप की ओर अग्रसर होने लगे। दो-दो माह के अंतर से पारणा करते। विचरण करते हुए एक दिन जब राम कोटिशिला पर बैठे थे तब सीतेन्द्र सीता के रुप में सखियों सहित वहाँ आए एवं राम से संयम छोड़ पुनः पति-पत्नीवत् रहने का आग्रह किया। उनकी इन क्षुद्र क्रीड़ाओं से राम मुनि अप्रभावित रहे। [517] माघ मास की शुक्ला द्वादशी को उन्हें कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति हुई। [518] तब सीतेन्द्र ने अपना असली रुप लेकर देवताओं सहित राम के कैवल्य ज्ञान की महिमा की। [519] कैवल्य ज्ञान प्राप्त रामर्षि ने सीता को धर्म उपदेश देते हुए रावण व लक्ष्मण को चौथे नरक में बताया। उन दोनों के संपूर्ण भविष्य का वर्णन किया। [520] राम को प्रणाम कर सीतेन्द्र सीधे लक्ष्मण के पास नरक में पहुँचे वहाँ सीतेन्द्र ने लक्ष्मण, रावण व शंबूक को अग्निकुंड में डाला। फिर वहाँ से निकल तेल की कुंभी व काल भट्ठी में डाला। [522] सीतेन्द्र ने उन्हें असुरों से छुड़ाकर उनका भविष्य कहा जो राम ने सीतेन्द्र को सुनाया था। सीता ने उन्हें देवलोक में ले जाने का प्रयत्न किया। परंतु लक्ष्मणादि ने कहा— आप हमे मुक्त कर स्वर्ग को जाओ। वहां से सीतेन्द्र ने नंदीश्वर तीर्थ को प्रस्थान किया।

नंदीश्वर की तीर्थयात्रा से लौटते समय देवकुरु प्रदेश में सीतेन्द्र ने भामंडल राजा के जीव को देखा। पूर्ण-स्नेह के कारण सीतेन्द्र ने उन्हें उपदेश दिया एवं स्वयं अपने कल्प में गए। [524]

अब राम जगत के जीवों को धर्म-उपदेश देते हुए पच्चीस वर्ष तक पृथ्वी पर विचरते रहे। अपनी उम्र के पंद्रह हजार वर्ष पूर्ण कर शैलेशी अवस्था प्राप्त कर राम शाश्वत सुख एवं आनंद के धाम मोक्ष को प्राप्त हुए। [525]

: संदर्भ-सूची :

१. त्रि. श. पु. च. पर्व ७-१/१३२
२. वही, १/१३३, १४१
३. वही, १/१४२, १३९
४. वही, १/१४३
५. वही, १/१४४
६. वही, १/१४५
७. वही, १/१४७, १५०
८. वही, १/१५१
९. वही, १/१५७- १५८
१०. वही, १/१६०
११. वही, १/१६१, १६३
१२. त्रिशपुच. पर्व ७ - १०/६८
१३. वही, १२/२१, २२
१४. वही, १०/६३
१५. वही, १०/६६
१६. त्रिशपुच. पर्व ७ - १/१५५-१५७
१७. वही, १२/२१, २२
१८. वही, १२/२७
१९. वही, १२/३०
२०. वही, १२/३३, ३५, ३९
२१. त्रिशपुच.पर्व ७-२/४३
२२. वही, २/४४
२३. वही, २/४५, ५१
२४. वही, २/५२
२५. वही, २/५४
२६. वही, २/५६
२७. वही, २/५८-६८
२८. वही, २/७३
२९. त्रिशपुच. पर्व ७, २/७४-७५
३०. वही, २/८१
३१. त्रिशपुच- पर्व - ७ २/८३
३२. वही, २/६८
३३. वही, २/८८
३४. वही, २/९९, ९०

३५. वही, २/९१
३६. वही, २/२३१, २३३
३७. वही, २/३३४
३८. वही, २/२७७
३९. वही, २/१०५, १०६
४०. त्रिशपुच. पर्व - ७ - २/३३७
४१. वही, २/१५१, १५३
४२. त्रिशपुच - पर्व ७-२/५७०
४३. वही, २/५७२
४४. वही, २/६०४-६२२
४५. त्रिशपुच. पर्व - ७-४/१२७
४६. वही, ४/२
४७. वही, ४/८७- ८८
४८. वही, ४/१३,२६-३०, ३७, ५१, ७०, ८५, १०५
४९. वही, ४/१३७
५०. वही, ४/७२-७८
५१. वही, ४/१३२-१३३
५२. त्रिशपुच. पर्व ७ - ४/१२१-१२५
५३. वही, ४/१२-१२५
५४. वही, ४/१८४
५५. त्रिशपुच. पर्व ७ - ७/२०४-२०५
५६. त्रिशपुच. पर्व ७ - ४/१७५-१७७
५७. वही, ४/१९७
५८. वही, ४/१८०
५९. वही, ४/१८१-१८२
६०. वही, ४/१८३
६१. वही, १८-१८९
६२. त्रिशपुच. पर्व ७-४/१७५
६३. त्रिशपुच. पर्व ७ ७, ४/१८४
६४. वही, ४/१९२
६५. त्रिशपुच. पर्व ७ - ४/१९४
६६. वही, ४/१९५
६७. वही, ४/१९६
६८. वही, ४/१९७
६९. वही, ४/१९८

७०. वही, ४/१९९
७१. वही, ४/२००
७२. वही, २०५
७३. त्रिशपुच. पर्व ७-४/१९७
७४. वही, ४/२००
७५. वही, ४/२६५
७६. त्रिशपुच. पर्व ७ -४/२७५
७७. त्रिशपुच. पर्व ७ - ४/२८६
७८. वही, ४/२८८
७९. त्रिशपुच - पर्व ७ - ४/२७
८०. वही, ४/२८६
८१. वही, ४/२८८
८२. अथेत्यं जनकोऽवोचन्मा भैषीरैष राधवः।
दृष्टासारो मया दैवि लतावत्तस्य तद धनुः। ४/३३१
८३. त्रिशपुच. पर्व ७-४/२८८
८४. वही, ४/३१९
८५. त्रिशपुच. पर्व- ४/२८९
८६. त्रिशपुच. पर्व ७-४/२९०-९४
८७. वही, ४/२९६-३२२
८८. वही, ४/३१४-३१६
८९. वही, ४/३१७-३१९
९०. वही, ४/३२१-३२४
९१. वही, ४/२३४
९२. वही, ४/२३२
९३. वही, ४/२३३
९४. वही, ४/३३४-३३६
९५. वही, ४/३३८
९६. वही, ४/३३९
९७. आकर्णान्तं तदाकृष्यं रोदःकुक्षिभिरध्वनि।
धनुरास्फालयामास स्वयशःषटहोपमम्
९८. त्रिशपुच. पर्व ७, ४/३४९
९९. वही, ४/३५६-३७४
१००. वही, ४/३७०
१०१. वही, ४/३७३-३७४
१०२. तच्छ्रुत्वा जातसंवेगस्तं बन्दित्वानरण्यजः।
प्रविव्रजिषुराधातुं रामे राज्यं गृहं ययौ। त्रि. पर्व ४/४१८

१०३. अथ राज्ञी : सुतान्मंत्रिमुख्यानाहूय पार्थिवः। आपप्रच्छे यथौचित्यं दत्तालापसुधारस : /४१९

१०४. ततो ययाचे कैकेयी त्वं चेत् पव्रजसि स्वयम्।
स्वामिन् विश्वंभरामेताम् भरताय प्रयच्छ तत्
त्रिशपुच. पर्व ७ ४/४२६

१०५. त्रिशपुच. कपर्व ७ ४/४२८

१०६. रामोडपि हष्टोडभाषिष्ट मात्रेदं साधुयाचितम्।
यन्मद् भ्रात्रे भरताय राज्यादानं महौजसे॥ प्रिशपुच पर्व ७-४/४२९

१०७. त्रिशपुच. पर्व ७ ४/४३०

१०८. वही, ४/४३१

१०९. वही, ४/२४२

११०. वही, ४/४२३

१११. वही, ४/४४२

११२. वही, ४/४५१

११३. वही, ४/४५३

११४. वही, ४/४२७

११५. निर्भयः साम्प्रतंहत्वा भरतात्कुलपांसनात् नयस्यामिं राज्यं किं रामे विरामाय निजक्रुधः। त्रि श पुच ७-४/४६९

११६. त्रिशपुच. पर्व ७ - ४/४७१

११८. गमिष्यति रामों वनं अनुगमिष्यामि तं त्वहम्।
मर्यादाब्धिं बिनाह्यार्यन स्थातुं लक्ष्मण क्षमः ॥ प्रिशपुच. ७ ४/४७३

११९. वही, ४/४८०

१२०. वही, ४/४८२

१२१. वही, ४/४५

१२२. वही, ४/४५७-४५८

१२३. वही, ४/४६१

१२४. वही, ४/४६३-४६५

१२५. त्रिशपुच. पर्व ७ - ४/४४७

१२६. वही, ४/४४९

१२७. वही, ४/४५६ से ४५८

१२८. वही, ४/४५९

१२९. त्रिशपुच. पर्व ७ - ४/४७४

१३०. वही, ४/४७५

१३१. वही, ४/४७६

१३२. त्रिशपुच. पर्व ७ - ४/४२०

१३३. वही, ४/४२१

१३४. वही, ४/४३४

१३५. वही, ४/४३९

१३६. सत्यम् मातृमुखोडस्मयेष गर्वष गर्वमेवं करोति चेत।
त्रिशपुच. ७-४/४४०

१३७. त्रिशपुच. पर्व ७ ४/४२३-२५

१३८. वही, ४/४२६

१३९. त्रिशपुच पर्व ७-४/४३२

१४०. रामो राजानामित्युवे भरतो मयि सत्यसौ। राज्यम् नादास्यते तस्माद् वनवासाय याम्यहम् ॥ ७/१४१

१४१. इयच्चिरं वरं धृत्वा याचते साडनथ्था कथम्। वही-४/४६७

१४२. त्रिशपुच. पर्व ७ /४६७

१४३. वही, ४/४४९

१४४. अतिदूरे भवति ते मा विलंवस्व वत्स तत् ॥
त्रिशपुच. पर्व ७-४/४७५

१४५. वेगात्तानन्बधावन्तानुरागेण गरीयसा। नागरा: क्रूर कैकेयी विध्योराक्रोशदायिन: ॥

१४६. त्रिशपुच. पर्व ७-४/४६८

१४७. वही, ४/४४/८८-४८९

१४८. रतश्च भरतो राज्यं नाददे किं तु प्रत्युत।

१४९. वही, ४/४९१

१५०. उपाध्वं भरतं मद्वत्तातबद्वापयत: परम् ॥ त्रिशपुच. पर्व ७-४/३९९

१५१. त्रिशपुच. पर्व ७, ४/३९९

१५२. त्रिशपुच. पर्व ७-५०२

१५३. वही, ४-५०३

१५४. वही, ४/५२९

१५५. त्रिशपुच. पर्व ७ - ४/५०४

१५६. वही, ४/५१०

१५७. त्रिशपुच. पर्व ७ - ४/५०५

१५८. त्रिशपुच. पर्व ७-४/५०७

१५९. भरतेन समं गत्वा तौ वत्सो राम लक्ष्मणो।
अनुनीय समानेष्याभ्यनुजानीहिनाथ माम्। वही - ४/५०९

१६०. वही, ४/५१०

१६१. कैकेयी भरतो षड्भि:प्राप्तुस्तद्वनंदिनै।
अपशयतां द्वमूले च जानकीराम लक्ष्मण ॥
त्रिशपुच प. ७, ४/५१

१६२. भरतोऽपि नमश्चक्रे रामपादाबुदश्रुहक्। प्रत्यपश्वत मूर्च्छा
च मूर्च्छेत्खेदमहाविष:। वही -४/५१४
१६३. राज्यार्थी भरत इति मातृदोषेणयो ड भवत्। ममापवादो हरतमात्यना सह
मां नयन्। वही-४/५१६
१६४. त्रिशपुच. पर्व०-७, ४/५१७
१६५. वही, ४/५१८
१६६. वही, ४/५२६
१६७. वही, ४/५२८
१६८. त्रिशपुच. पर्व ७ - ५/२३
१६९. वही, ५/७८
१७०. वही, ५/१३-१५
१७१. वही, ५/११
१७२. वही, ५/१९
१७३. वही, ५/११
१७४. वही, ५/१९
१७५. वही, २०-२२
१७६. त्रिशपुच. पर्व ७ - ५/२३
१७७. वही, ५/२४-२५
१७८. वही, ५/२६-२८
१७९. वही, ५/२९-३३
१८०. वही, ५/३५
१८१. वही, ५/४५-६०
१८२. वही, ५/७३
१८३. वही, ५/७७-८१
१८४. त्रिशपुच. पर्व ७ - ५/८८-८९
१८५. त्रिशपुच. पर्व ७ - ५/८८-८९
१८६. वही, ५/९१
१८७. वही, ५/९३
१८८. वही, ५/९५
१८९. वही, ५/९६-९८
१९०. वही, ५/१०१
१९२. अरे ... रे ... पथिकाबेतों नाशयित्वा विनाश्य वा।
एतां वरस्त्रियं हत्वं समानयत मत्कृते।
१९३. वही, ५/१०८-१०९
१९४. वही, ५/११०-११२

१९५. वही, ५/११९

१९६. वही, ५/१२०-१२१

१९७. वही, ५/१२३

१९८. वही, ५/१२४-१२५

१९९. वही, ५/१२७-१२९

२००. वही, ५/१२९-१३०

२०१. त्रिशपुच. पर्व ७-५/१३३-१३६

२०२. वही, ५/१३७

२०३. वही, ५/१३८-१३९

२०४. सोऽवोचद्विस्मितं रामं स्वामी त्वमतिथिश्च मे।

२०५. वही, ५/१४०-१४१

२०६. वही, ५/१५२-१५४

२०७. वही, ५/१५५-१६१

२०८. दत्त रामाय हारंनाम्ना स्वयं प्रभमं। वही - /१६५

२०९. सौमित्रये च ताडष्के। दिव्यरत्नविनिर्मिते ॥
वही, /१६६

२१०. वही, ५/१८८-१७१

२११. वही, ५/१७३-१८१

२१२. त्रिशपुच पर्व ७ - ५/१८२

२१३. वही, ५/१८३-१८४

२१४. वही, ५/१८५-१८९

२१५. वही, ५/१९२-१९३

२१६. वही, ५/१५७-१५८

२१७. वही, ५/११९

२१८. वही, ५/२०५

२१९. वही, ५/२०६-२०७

२२०. वही, ५/२०९-२१०

२२१. वही, ५/२१६

२२२. वही, ५/२१८

२२३. वही, ५/२२३-२२५

२२४. वही, ५/२२६-२२७

२२५. वही, ५/२२८-२३०

२२६. वही, ५/२३३-२४०

२२७. वही, ५/२४१

२२८. त्रिशपुच. पर्व ७ - ५/२४२-२४५

२२९. वही, ५/२४६-२४७
२३०. वही, ५/२४८-२५०
२३१. वही, ५/२५१
२३२. वही, ५/२५४
२३३. वही, ५/२५५-२५७
२३४. परिणेस्यामि व्यावृत्त स्त्वत्सुतामिति॥ वही - ५/२५८
२३५. वही, ५/२५९-२६२
२३६. वही, ५/२६३-२६५
२३७. वही, ५/२६६-२६८
२३८. वही, ५/२६८
२३९. त्रिशुच पर्व ७ - ५/२७१-३१०
२४०. वही, ५/३२०
२४१. रामनाम्ना रामगीरिगिरिः सोभूत्तत्दादि च ॥ वही - ५/३२१
२४२. वही, ५/३२७
२४३. वही, ५/३२८-३३०
२४४. त्रिशपुच. पवज्ञ ७ - ५/३२४-३२६
२४५. वही, ५/३२७
२४६. वही, ५/३२८-३३०
२४७. वही, ५/३३१-३३२
२४८. वही, ५/३३५-३७
२४९. वही, ५/३७३
२५०. वही, ५/३७६-३७७
२५१. वही, ५/३७८
२५२. वही, ५/३२८
२५३. एवं च तस्थुषस्तस्य ब्लगुलीस्थानकस्पृश :।
वर्षाणि द्वादशातीयुश्चत्वारि दिवसानि च ॥ वही - ५/३८३
२५४. वही, ५/३८३-३८७
२५५. त्रिशपुच. पर्व ७ - ५ वही - ५/३८८-३८९
२५६. वही, ५/३९०-३९१
२५७. वही, ५/३९२
२५८. वही, ५/३९३-३९४
२५९. वही, ५/३९५-३९७
२६०. वही, ५/४०६
२६१. वही, ५/४१०
२६२. विद्याधरसह स्ते चतुर्दशभिरावृत्तां : ततोडभ्येयुरूपद्रोतुं रामं शैलमिव दिपा :। त्रि.पर्व ७ ५/४१२

२६३. गच्छ वत्स जयाय त्वं यदि ते संकटं भवत्। विसनादं ममाहुत्ये कुर्या इत्यन्वशात्सत्म्। वही - ५/४१४

२६४. त्रिशपुच० पर्व ७ - ५/४१६-४१८

२६५. सीता च रूपलावण्यश्रिया सीमेव योषिताम् ॥

२६६. त्रिशपुच० पर्व ७ - ५/४२१

२६७. वही, ५/४२३

२६८. वही, ५/४२४-४२५

२६९. वही, ५/४२६-४२७

२७०. वही, ५/४२८-४२९

२७१. वही, ५/४३१

२७२. वही, ५/४३४-४३६

२७३. वही, ५/४३७

२७४. वही, ५/४३८

२७५. नि:शङ्कोऽथ दशग्रीव : सीतामारोप्य पुष्पेके। चचाल नभसा तूर्ण पूर्णप्रायमनोरथ: ॥

२७६. त्रिशपुच- पवज्ञ ७ -६/१४

२७७. वही, ६/१६-१९

२७८. वही, ६/३१

२७९. वही, ६/३२

२८०. लक्ष्मणोऽप्यवदत्सिंहनादोऽकारि मया न हि।
त्रिशपुच पर्व ७-६/४

२८१. वही, ६/५

२८२. वही, ६/५

२८३. इतुयुक्तों राम भद्रोऽगात्स्वास्थानं तत्र जानकीम्। नाऽपश्यच्च महीपृष्ठे मूर्च्छितो निपपातच। त्रिशपुच पर्व ७ - ६/७

२८५. वही, ६/३४

२८६. स्वामिन्येषोऽस्मि मा भेष स्तष्ठ तिष्ठ निशाचर। रोषादिति वद्न दूराज्जटायुस्तमधावत ॥ त्रिशपुच पर्व ७ - ५/४३९

२८७. त्रिशपुच पर्व ७, ५/४४०

२८८. वही, ५/४४१

२८९. वही, ५/४४८-४४९

२९०. वही, ६/१०-११

२९१. त्रिशपुच० पर्व ७ - ५/४४४

२९२. नभश्चरक्ष्माचराणां भर्तुमें महिषीपदम्।
प्राप्ताऽसि रोदिषी कथंहर्पस्थाने कृतं सुचा। वही - ५/४५१

२९३. मां पतिं देवि मन्यस्व सेवया दाससिन्नभम् ॥ वही - ५/४५३
२९४. प्रपत्सये त्यति दासीत्वं भजस्व दशकं धरम्-वही - ६/१३२
२९५. अद्याऽपि तब रामेम भूचरणे तपस्विना। पतिमात्रेण किम् पत्या प्राप्तये चेद्दशाननः। वही - ६/१३४
२९६. वही, ६/१४९-१५९
२९७. वही, ६/१६०-१६१
२९८. यद्रामपत्न्या : सीतायाः कृते न कुलसंक्षयः ॥ वही - ६/१६४
२९९. वही, ६/१६७-१७२
३००. तस्य प्राणैः सहैवाऽहमाहरिष्यामि जानकिम्।
त्रिशपुच० पर्व ७-६/४४
३०१. पाताललंकाराज्ये व स्थाप्यतामेष, पैतृके। वही - ६/४५
३०२. सीता प्रवृत्तिमानेतुं विद्याधरभटानथ।
३०३. वही, ६/४८
३०४. वही, ६/४९
३०५. वही, ६/५१-५२
३०६. वही, ६/५४-५५
३०७. वही, ६/५६
३०८. वही, ६/५७-५८
३०९. वही, ६/९६
३१०. वही, ६/९७
३११. वही, ६/९८-१००
३१२. वही, ६/१०२
३१३. वही, ६/१०५-१०५
३१४. सुग्रीवः प्रतसस्थे च किष्किंधा प्रति राधव : वही - ६/१०६
३१५. त्रिशपुच. पर्व ७-६/५९-६९
३१६. वही, ६/६२-६४
३१७. वही, ६/६५-६६
३१८. त्रिसपुच पर्व ७ - ६/६७-७६
३१९. वही, ६/७८
३२०. वही, ६/८०-८१
३२१. वही, ६/१०७-११२
३२२. वही, ६/११४
३२३. वही, ६/११८
३२४. त्रिशपुच. पर्व ७ - ६/१८३-१८६
३२५. त्रिशपुच. पर्व ७ - ६/१८९-१९०

३२६. ऊचे लक्ष्मण: कुद्ध: कृतकृत्योऽसि बानर। सुखं तिष्ठसि नि:शङक: स्वाडन्त: पुरसमावृत: ॥ वही - ६/१८७

३२७. भो मौ: सर्वेडपि दोर्भृत:। सर्वत्राड स्खलिता यूयं गवेषयत मैथिलीम् ॥ वही - ६/१९२

३२८. वही, ६/१९३

३२९. वही, ६/१९६-१९८

३३०. वही, ६/१९९-२००

३३१. वही, ६/२०१-२०४

३३२. वही, ६/२०६

३३३. वही, ६/२११

३३४. जाम्बवान् व्याजहाराथ सर्व वो युज्यते परम्। यो हि कोटिशलोत्पाटी स हनिष्यति रावणम्। त्रिशपुच पर्व ७ - ६/२१२

३३५. त्रिशपुच. पर्व ७ - ६/२१३-२१४

३३६. वही, ६/२१५

३३७. कपिवृद्धास्तत: प्रोचुर्युष्मतो रावणक्षय:२ वही - ६/२१७

३३८. वही, ६/२२२-२२३

३३९. वही, ६/२२४-२२५

३४०. वही, ६/२२८-२२८

३४१. वही, ६/२३१

३४२. वही, ६/२३१

३४३. त्रिशपुच. पूर्व - ७,६/२३३

३४४. वही, ६/२३४

३४५. वही, ६/२३६

३४६. त्रिशपुच. पर्व ७ -६/२३४-२३९

३४७. वही, ६/२४०-२४२

३४८. वही, ६/२४३-२४७

३४९. वही, ६/२४८-२५०

३५०. वही, ६/२५२

३५१. वही, ६/२५३-२५६

३५२. त्रिशपुच. पर्व ७ - ६/२६६-२६७

३५३. वही, ६/२६८-२६९

३५४. वही, ६/२७०-२७१

३५५. वही, ६/२७२-२७५

३५६. वही, ६/२७८

३५७. वही, ६/२८०

३५८. वही, ६/३०८
३५९. वही, ६/३०९-३१७
३६०. त्रिशपुच. पर्व ७ - ६/३१८-३१९
३६१. वही, ६/३२३
३६२. वही, ६/३२४
३६३. त्रिशपुच. पर्व ७ - ६/३२५-३२८
३६४. वही, ६/३३२
३६५. वही, ६/३३३-३४१
३६६. वही, ६/३४२-४३
३६७. वही, ६/३४६
३६८. वही, ६/३४७-३५०
३६९. वही, ६/३५३
३७०. त्रिशपुच- पर्व ७ - ६/३५५
३७१. वही, ६/३५८-३५९
३७२. वही, ६/३६२-३६३
३७३. त्रिशपुच पर्व ७ - ६/३७४-३७८
३७४. वही, ६/३७९-३८८
३७५. वही, ६/३८९-३९८
३७६. वही, ६/४०२
३७७. वही, ६/४०४
३७८. वही, ६/४०५
३७९. त्रिशपुच. पर्व - ६/४०६-४०७
३८०. त्रिशपुच. पर्व ७ - ७/१-३
३८१. वही, ७/५-७
३८२. वही, ७/१०
३८३. वही, ७/११-१५
३८४. वही, ७/३६-३८
३८५. वही, ७/४०
३८६. वही, ७/४१-४३
३८७. लंकाराज्यं तदा तस्मैं प्रत्यपदयत राघवः ॥ वही - ७/४४
३८८. त्रिशपुच. पर्व - ७/१४-१६
३८९. वही, ७/१९-२२
३९०. वही, ७/२८
३९१. वही, ७/३४-३५
३९२. दशकन्धरसेनान्योऽनन्यसाधारणौजसः सद्यः संवर्मयामासुः प्रहस्ताद्या उदायुधाः। त्रिशपुच० पर्व ७ - ७/४८

३९३. त्रिशपुच. पर्व ७ - ७/४९-५६

३९४. वही, ७/५७-६२

३९५. त्रिशपुच. पर्व ७, ७/६३-६४

३९६. वही, ७/६६

३९७. सुभटा मुग्दराधा तैर्लोठयन्तो द्विपान्मुहु :। दण्ड़कन्दुकिनीं क्रीडां तन्वाना इव रेजिरे॥ वही - ७/६८

३९८. वही, ७/७०-८७

३९९. त्रिशपुच. पर्व ७, ७/८९-९२

४००. त्रिशष्टिशलाकापुरुष चरित पर्व ७ (गुजराती भाषांतर) पृ. १०७ अरिहंत प्रकाशन अहमदाबाद

४०१. वही, ७ पृ-१०८

४०२. वही पर्व - ७, पृ-१०८

४०३. क्क मारूतिः क्क सुग्रीवस्ताभ्याम्प्यथवा कृतम्॥
त्रिशपुच पर्व ७, ७/१४५

४०४. नागपाशैस्तथा बद्धो भामंडल कपीश्वरौ ॥ वही - ७/१५३

४०५. गद्या ताडितः पृथ्वयांमारूतिमूर्च्छितोऽपतत ॥ वही - ७/१५४

४०६. त्रिशंपुच पर्व ७ - ७/१६२-१६६

४०७. त्रिशंपुच पर्व - ७ - ७/१०६-१६८

४०८. वही, ७/१६९-१७१

४०९. वही, ७/१७२-१७३

४१०. वही, ७/१७७-१७८

४११. वही, ७/१७९-१८१

४१२. वही, ७/१८२-१८५

४१३. वही, ७/१८६-१८९

४१४. वहा, ७/१९०-१९९

४१५. वही, ७/२००-२०४

४१६. वही, ७/२०५-२०८

४१७. रामः सौमित्रिमित्यूचेऽस्माकमेष विभीषणः।
आगन्तुर्हन्यतेहन्तधिग्र आश्रितधातिनः॥
इति रामबचः श्रुत्वा सौमौमित्रीर्मित्रवत्सलः।
विभीषणाडग्रे गत्वास्थादा क्षिपन् दशकन्धरम् ॥ ७/२१२२१३

४१८. त्रिशपुच. पर्व ७, ७/२१४-२१५

४१९. वही, ७/२१६-२१९

४२०. वही, ७/२२०-२२४

४२१. त्रिशपुच. पर्व ७, २२५ - २२९ व ३३४-३३६

४२२. वही ७, ७/२४०-२४६
४२३. वही, ७/२६०-२६२
४२४. वही, ७/२६९-२७४
४२५. वही, ७/२७४-२७७
४२६. वही, ७/२७८-२८३
४२७. वही, ७/२८४-३०२
४२८. त्रिशपुच. पर्व ७ - ७/३०२-३०७
४२९. षेषयिष्यत्यर्चयित्वा जानकी रावणो यदि। तदा मोक्ष्यामि तद् बंधुंलयान्नयथा न हि ॥ त्रिशपुच पर्व ७ - ७/३२०-३१३
४३०. वही, ७ / ३२२ - ३२६
४३१. वही, ७ / ३२७ - ३३७
४३२. अथ मंदोदरी द्वाः स्थं यमदण्डमदोडवतद्। जिनर्धमरतो डष्टाहान्यस्तु स्वोंडपि पूर्जन :। ७/३३९
४३३. त्रिशपुच. पर्व ७, ७/३५०
४३४. वही, ७ / ३५१-३५२
४३५. त्रिशपुच. पर्व ७ / ३५४-३५५
४३६. बध्धवेह राम सौमित्री समानेस्ये ततस्तयो :।
अर्पयिष्याम्यभूं धर्म्य यशस्यं च हि तद्भवेत ॥
वही, ७ / ३६० - ३६१.
४३७. स्मृतिमात्रोपस्थितायां विद्यायां तत्र रावणः।
विचक्रे भैरवाण्याशु स्वानि रुपाण्यनेकशः ॥
वही, ७ / ३६५ - ३६६
४३८. वही, ७ / ३६७ - ३७१
४३९. ते सर्वे शिश्रियुः पद्मसौमित्री तौ च चक्रतुः।
तैषां प्रसादं वीरा हि प्रजासु समदृष्य्या ॥ वही ८/३
४४०. त्रिशपुच पर्व ७ - ८/४ - ५
४४१. वही ७, - ८/६ - ८
४४२. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित - प्रकाशक - अरिहंत प्रकाशक अहमदाबाद.
४४३. कुंभकर्णेन्द्रजिन्मेधवाहनाद्या निशम्य तत्।
मन्दोदर्यादयश्चापि तदैवाददिरे व्रतम् ॥ त्रिशपुच पर्व - ७, ८/३४
४४४. तामुत्क्षिप्य निजोत्सङ्गे द्वितीममिव जीवितम्।
तदैव जीवितंमन्यो धारयामास राघवः ॥ वही - ८/३८
४४५. त्रिशपुव पर्व ७, ८/३६, ३७, ३९-४३
४४६. वही, ८/४५ - ४९
४४७. रत्नस्वर्णादिकोशोडयंमिदं हस्तिहयादि च।
अयं च राक्षसद्वीपो गह्यतां पतिरस्मि ते ॥ वही - ८/५१

४४८. वही, ८/५४ - ५५

४४९. अथ स्वस्वप्रतिपन्नास्ता: कुमारीर्यथाविधि।
राघवा वुपयेमाते खेचरीगीत मंङ्गलौ।
भौगास्तत्रोपभुंञ्जानो निर्विघ्नं राम लक्ष्मणौ ॥
सुग्रीवाद्यै : सैव्यमानौ षडब्दीमतिनिन्यतु: ॥

४५०. वही, ८/५७ - ५८

४५१. त्रिशपुच. पर्व ७, - ८/६१-६८

४५२. त्रिशपुच. पर्व ७, - ८/६९ - ७४

४५३. आयांतों पुष्पकारुढौ दुरादपि निरीक्ष्य तों।
अभ्यगात्कुंजरारुढो भरत: सानुजोऽपि हि।

४५४. त्रिशपुच पर्व ७, - ८/७८ - ७९

४५५. वही, ८/८० - ८९

४५६. अथोत्सवमयोध्यायां भरतोऽकारयन्मुदा।
पुरतो रामपादनां पत्तिमात्रत्वमाचरन् ॥
वही, ८/९१ - ९७

४५७. त्रिशपुच पर्व. ७, ८१, ९८, १०६

४५८. त्रिशपुच पर्व ७, ८/१०७ - ११२

४५९. वही, ११३ - १४८

४६०. इति पूर्व भवाच्छ्रुत्वा विरक्तो भरतोऽधिक्म्। व्रतं राजसहस्त्रेणाग्रहीन्मोक्षमियाय च॥ कुँजर: सोऽपि वैराग्याद्विधाय विविधं तप:।
प्रपन्नानशनो मृत्वा ब्रह्मलोके सुरोऽभवत्॥ व्रतं भरतमातापि कैकेयी समुपादेद पालयित्वा निष्कलंकं प्रपेदे पदमव्ययम्। ६/८-१४९-१५१

४६१. त्रिशपुच. पर्व ७, ८/१५३ - १६३

४६२. त्रिशपुच. पर्व ७, ८/१६० - १६४

४६३. वही, ८ / १६५-१७१

४६४. त्रिशपुच. पर्व ७, ८/१९१-२१४

४६५. वही, ८ / २३९ - २४६.

४६६. वही, ८ / २४८ - २५३

४६७. त्रिशपुच. पर्व ७, ८ / २५४ - २७५

४६८. वही, ८ / २७६ - २८१

४६९. वही, ८/२८२ - २८४

४७०. वही, ८/२८५ - ३०५

४७१. त्रिशपुच. पर्व ७, ८/३०६ - ३१८

४७२. यदि निर्वादभीतस्तवं परीक्षां नाकृथा: कथम्।
शंकास्थाने हि सर्वोऽपि दिव्यादि लभते जन: ॥

अनुभोक्ष्येस्वकर्माणि मन्दभाग्या वनेऽप्यहम्।
नानुरुपं त्वकार्षीस्त्वं विवेकस्य कुलस्य च॥ यथा खलगिरात्याक्षी :
स्वामिन्नेकपदेऽपि माम् ॥ तथा मिथ्यादृशां वाचा मा धर्म जिनभाषितम् ॥
त्रिशपुच. पर्व ७, ८/३२१ - ३२३

४७३. त्रिशपुच. पर्व ७, ८/३२४ - ३२६

४७४. वही, ९ / १-१८

४७५. वही, ९ / २४ - ३३

४७६. वही, ९ / ३५ - ६२

४७७. अथांकुशो हसितवोचे ब्रह्मन्न खलु साधु तत्।
चक्रे रामेण वैदेहीं त्यजता दारुणे वने ॥ त्रिशपुच. पर्व ७, - ९/६९

४७८. वही, ९ / ६६ - ७४

४७९. त्रिशपुच. पर्व ७, ९, / ९६ - १०८

४८०. वही, ९य१०८ - ११९

४८१. तौ प्रेक्ष्य राम सौमित्री एवमन्योऽन्युमूचतुः।
कावप्येतावभिरामौ कुमारौ विद्विषौ च न : ॥ वही - ९ / १२०

४८२. कृतांतोऽपि बभाषेऽद : खेदं प्राप्ता ह्यमी हया :।
स्वांगं विशिखैर्विद्वाः प्रतियोधेन तेऽयुना ॥
तुरंगा न त्वरंतेऽमी कशाभिस्ताडिता अपि।
रथश्च जर्जरस्तेऽभुदसौ वैर्यस्त्रताडितः ॥
एतौं च मम दोर्दडौ द्विट्कांडाधातजर्जरौ।
न हि रश्मिं प्रतोदं वा क्षमौ चालयितुं प्रभो ॥
पदमनाभोऽप्यभाषिष्ट ममापि शिथिलायते।
धनुश्चित्रस्थितमिव वज्रावर्त न कार्यकृत ॥
अभून्मुशलरत्नं च वैरिनिर्दलनाक्षमम्।
कणकंडनमात्रार्हमेवैतदपि संप्रति।
अनेकशोङ्कशीभूतं यद् दुष्टनृपदन्तिनाम्।
हलरत्नंतदप्यैतदभूदभूपाटनोचितम्। सदा यक्षै रक्षितानां
विपक्षक्षयकारिणाम् ॥
तैषामेव ममास्त्रामणामवस्था केयमागता ॥ वही - ९/१३१-१३७

४८४. वही, ९ / १३८ - १४८

४८४. वही, ९ / १४९ - १६७

४८५. प्रत्यक्षं सर्वलोकानां दिव्यं देवी करोतु सा।
त्रिशपुच. पर्व ७, ९ / १७३.

४८६. त्रिशपुच - पर्व ७, ९/१७४ - १८१

४८७. सीताप्यूचे प्राप्तशुद्धि : प्रवेक्ष्यामि पुरीमिमाम् ।
ग्रहं च नान्यथा वत्सापवादो जातु शाम्यति ॥ वही ० ९/१८३
४८८. भोगा न चेद्देशास्येन तस्थुष्या अपि तद्गृहे ।
समक्षं सर्वलोकानां तद्दिव्यं कुरु शुद्धये ॥ वही - ९ / १८५
४८९. स्मित्वा सीताऽप्युवाचैवं विज्ञस्तवत्तोऽपरो न हि ।
अज्ञात्वा यो हि मे दोषं त्यागं कुर्या महावने ॥ वही, ९/१८६
४९०. जगाद जानकी दिव्यपंचक स्वीकृतं मया ।
विशामि वह्नौ ज्वलिते भक्षयाम्यथ तंडुलान्म
तुलां समधिरोहामि तातं कोशं पिबाम्यहम् ।
गृहाणामि जिह्वया फालं किं तुभ्यं रोचते वद ॥
वही, ९ / १९१ - १९०
४९१. वही, ९/१९०
४९२. त्रिशपुच. पर्व ७, ९/१९६ - २०७
४९३. हे लोकपाला लोकाश्च सर्वे श्रुणुत यद्यहम ।
अन्यमभ्यलषं रामात्तदाग्निर्मा दहत्वयम् ॥ वही - ९/२०९
४९४. त्रिशपुच. पर्व ७ - ९ / २११ - २२२
४९५. स्वभावादप्यसद्दोषग्राहिणां पुरवासिनाम् ।
छंदानुवृत्त्या त्यकताऽसि मया देवि सहस्व तत् ॥
क्षान्तवा सर्व ममेदानी मिदमध्यास्स्व पुष्पकम् म चलस्व वेश्मनि
प्राग्वद्रमस्व सहितामया ॥ वही - ९/२२६ - २२८
४९६. त्रिशपुच. पर्व ७, ९/२२९ - २३०
४९७. इत्युत्वा मैथिली केशानुच्चखान स्वमुष्टिना ।
रामस्य चार्पयामास शक्रस्येव जिनेश्वर: ॥
सद्यो मुमूर्छ काकुत्स्थो नोत्तस्थो यावदेष च ।
तावत्सीता ययौ साधु जय भूषणसंनिधौ ॥
केवली स जयभूषणो मुनिमैथिलीं विधिवदप्यदीक्षयत् ।
सुप्रभाख्यगणिनीपरिच्छदे तां चकार च तप: परायणाम् ॥
त्रिशपुच. पर्व ७, ९/२३१ - २३३
४९८. त्रिशपुच. पर्व ७, - १०/१ - ११
४९९. वही, १०/१२ - ८७
५००. एवं मुनिवच: श्रुत्वा संवेगं बहवोययु: ॥
तदैव रामसेनानी : कृतांत : प्राव्रजत्पुन: ॥ वही - १०/८८
५०१. वही, १०/८९-९६
५०२. वह, १० / ९७ - १०२
५०३. सद्य संवेगमापन्ना: पितरावनुमान्य ते ॥
बहाबलमुने: पादपद्यान्ते जगृहुर्व्रतम् ॥ वही - १० / १०४

५०४. वही, १० / १०६ - १०८

५०५. एवं विचिन्त्य स्वपुरे गत्वा राज्यं सुते न्यधात्।
धर्म रत्नाचार्य पार्श्वे प्रव्रज्यामाददे स्वयम् ॥ वही - १० / १११

५०६. वही, १० / ११२-११३

५०७. त्रिशपुच. पर्व ७, - १० / ११४ - १२६

५०८. वही, १० / १२८ - १३४

५०९. नत्वाथ राममूचाते कुमारौ लवणांकुशौ।
भवादद्यातिभीतौ स्व: कनीयस्तातमृत्युना ॥
इत्युक्त्वा राममानम्यामृतघोषमुने : पुर।
उभौ जगृहतुर्दीक्षा क्रमाच्च शिमीयतु ॥
वही, १० / १३५ - १३८

५१०. वही, १० / १३९ - १४८

५११. नीत्वा स्नानग्रहे राम : कदाप्यस्नपयत् स्वयम्।
ततश्च तं स्वहस्तेन विलिलेप विलेपनै : ॥
आनाय्य दिव्यभोज्यानि पूरयित्वा च भोजनम्।
कदाचित्तस्य पूरतो मुमोच स्वयमंव च॥
कदाप्यारोपयदंके निजेडचुम्बच्छिरो मुहु:॥
कदाप्स्वापयत्तल्पेवाससाच्छादिते स्वयम्॥
कदापि स्वयमाभाष्यं स्वयं स्म प्रतिभाषते ॥
स्वयं संवाहकी भूय ममर्द व कदाचन ॥
इत्यादि चैष्टा विकला: स्नेहोन्मत्तस्य कुर्वत:
ययौ रामस्य षण्मासी विस्मृताशेषकर्मण :।.
वही, १-/१४९ - १५३

५१२. त्रिशपुच. पर्व ७, १० / १५४ - १७८

५१३. तत्र शत्रुध्नसुग्रीर्वविभीषणाविराधितै:।
अन्येश्च राजभि: सार्ध रामो व्रतमुपाददे ॥ वही - १० / १७९
..... षोडशा महीभुजां सहस्त्राणि भववैराग्ययोगत: ॥
वही १०/८८०
सप्तत्रिशंत्सहस्त्राणि प्राव्रजन् वरयोषित: ॥ वही - १० / १८१

५१४. त्रिशपुच. पर्व ७, १०/१८२ - १९२

५१५. अरण्येडत्रैव चैद्भिक्षाकाले भिक्षोपलप्स्यते।
तदानीं पारणं कार्यमस्माभिर्नान्यथा पुन: ॥
इत्यभिग्रहभृद्रामो निरपेक्षो वपुष्यपि।
परं समाधिमापन्नोडवतस्थे प्रतिमाघर: ॥
वही, १० / २०१-२०२

५१६. वही, १० / २०३ - २०८

५१७. त्रिशपुच. पर्व ७, १०/२१०-२२६

५१८. त्रिशपुच. पर्व ७, १०/२२८

५१९. माध्स्य शुक्लद्वादश्यां तदायोमेऽन्तिमे निशि। उपपद्यत रामर्षे: केवलज्ञानमुज्ज्वलम् ॥ वही - १० / २२७

५२०. वही, १० / २२९ - २४४

५२१. त्रिशपुच. पर्व ७, १० / २४४ - २४६

५२२. परमाधार्मिका : कुद्वा अग्निकुंडेष तान्ययधुः ॥ वही - १० /२४७
ततः कृष्ट्वा तप्ततैलकुंभ्यां निदधिरे वलात् ॥ १० / २४८
विलीनदेहास्तत्रापि भ्राष्ट्रे चिक्षिपिरे चिरम्।
तडत्तडिति शब्देन स्फुटन्तो दुद्रुवुः पुनः ॥ वही - १० / २४९

५२३. त्रिशपुच. पर्व ७, १० / २५० - २६०

५२४. वही, १० / २६१.

५२५. उत्पन्ने सति केवले स शरदां पंचाधिकां विंशतिं,
मेदिन्यां भविकान् प्रबोध्य भगवांच्छ्रीराम भट्टारकः।
आयुश्य व्यतिलंध्य पंचदश चाब्दानां सहस्रान् कृती,
शैलेशीं प्रतिपद्य शाश्वतसुखानंदं प्रपेदे पदम् ॥
वही, १० / २६२

5

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व 7 (जैन रामायण) का काव्य सौष्ठव

किसी भी काव्य के दो रुप हैं, भाव पक्ष एवं कला पक्ष। समालोचक अध्ययन की सुविधा के लिए दोनों पक्षों की अलग-अलग विवेचना करते हैं। रस विवेचना काव्य के भाव पक्ष का अंग माना गया है। कलापक्षान्तर्गत भाषा, छन्द, अलंकार, काव्यगुण-दोष, शब्द शक्ति, वर्णन कौशल, संवाद कौशल, संगीत विधान आदि पर विचार किया जाता है। चौथे अध्याय में कथावस्तु शीर्षकान्तर्गत जैन रामायण की संक्षिप्त कथा प्रस्तुत की गई है। यहां काव्य सौष्ठव में भाव पक्ष के अंतर्गत आने वाले रस पर भी विचार कर कला पक्ष के समस्त अवयवों पर दृष्टिपात किया गया है।

(१) रस व्यंजन : प्रत्येक काव्य का एक अंगी रस होता है तथा अन्य रस उस मुख्य रस के इर्दगिर्द भासित होते हैं। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व ७ का अंगी रस है शांत। वीर, श्रृंगार तथा रौद्र आदि उसके प्रधान अंग हैं।

श्रृंगार-संयोग तथा वियोग : त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित में निम्नांकित प्रसंगों में संयोग श्रृंगार के उदारहण उपलब्ध होते हैं— १. सहस्रहार की रानी चित्रसुन्दरी का इन्द्र से संयोग का प्रसंग, २. तड़ित्केश राजा का रानियों के साथ नंदनवन में क्रीड़ारत होना, ३. रावण एवं मंदोदरी की केलि, ४. छः हजार अप्सराओं व कन्याओं के साथ रावण की केलि, ५. सहस्रांशु की जल क्रीड़ा, ६. अंजना पवनंजय क्रीड़ा, ७. हनुमान व लंका सुन्दरी की क्रीड़ा, ८. अनेक स्त्रियों के नख-शिख सौंदर्य वर्णन[1] आदि। यहाँ हम दो उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

जब वियोग के पश्चात् अंजना एवं पवनंजय मिलते हैं तब अंजना अपने स्वामी को पहचान नम्राकृति धारण कर सलज्ज सम्मुख खड़ी रही। पवनंजय अंजना को बाहों में लेकर पलंग पर बैठ गया। वहाँ दोनों की इच्छानुसार क्रीड़ा करते हुए रसासक्त रात्रि मात्र एक प्रहर के समान शीघ्र ही बीत गई।

इत्युक्तवंतं सा नाथमुपलक्ष्य त्रपावती।
पर्यंकेषामवष्टभ्याभ्युत्तस्थौ विनमन्मुखा ॥
लतां हस्तीव हस्तेन दोष्णा वलयितेन ताम्।
आददानोऽधिपर्यऽकं न्यवदत् पवनंजय ॥
रेमाते तत्र च स्वैरमंजना पवनंजयौ।
विरराम रसावेनेशा च्चैकयामेव यामिनी ॥[2]

सहस्त्रांशु की जल क्रीड़ा का वर्णन हेमचंद्र ने इस प्रकार किया हैं :

समं राज्ञीसहस्त्रेण सहस्त्रांशुरसावितः।
वशाभिर्बरदंतीव सुखं क्रीडति वीरिभीः ॥
क्षुभितं जलदेवीभिर्यादोभिश्च पलायितम्।
जलक्रीडाकराधातैरूजितैस्तस्य दौष्मतः ॥
इदमत्यंतरूद्वत्वात् स्त्रीसहस्त्रयुतेन च।
तेन पर्यस्यमाणत्वात् काम मुल्लुठितं पयः ॥
रोदषी प्लावयित्वोभे बेगाद्वारीदमुद्वतम्।
इह ते प्लावयामास देवपूजां दशाननः ॥[3]

वियोग श्रृंगार : पूर्वराग, मान, प्रवास एवं करुण, वियोग श्रृंगार के ये चार भेद माने गये हैं। जैन रामायण में ये चारों ही भेद मिलते हैं। यथा,

१. अंजना विरह, २. पवनंजय विरह, ३. वनमाला विरह, ४. सीता विरह, ५. राम विरह, ६. रावण विरह आदि वर्णन।[4] उदारहणार्थ राम वियोग एवं अंजना वियोग के अंश यहाँ प्रस्तुत हैं :

सीता के विरह में व्याकुल राम आकाश की ओर निहारते हुए विलाप कर रहे हैं :

वनं भ्रांतमिदं तावन्मया दृष्टा न जानकी।
युष्माभिः किं न सा दृष्टा ब्रूत हे वनदेवताः ॥
अमुष्मिन्भीषणेडरण्ये भूतश्वापदसंकुले।
विमुच्यैकाकिनीं सीतां लक्ष्मणाय गतोऽस्मि हा ॥
रक्षोभट सहस्त्रागे संयत्येकं च लक्ष्मणम्।
मुक्तवा भूयोडहमत्रागमहो धीर्मम दुर्धियः ॥
हा सीते निर्जनेऽरण्ये कथं मुक्ता मया प्रिये।
हा वत्स लक्ष्मण कथं मुक्तोऽसि रणसंकटे ॥
एवं बुवन्रामभद्रो सूर्छया न्यपतत्क्षितौ।
क्रुन्दभ्दिः पक्षिभिरपि वीक्ष्यमाणो महाभुजः[5] ॥

पवनंजय जब अंजना सुन्दरी को छोड़कर चला गया तब उस निर्दोष बाला का हृदय विरहाग्नि से प्रदीप्त हो उठा।

बिना शशाङ्कं श्यामेव सा बिना पवनजंजयम्।
वाष्यान्धकारवदना तस्थावस्वास्थय भाजनम् ॥
पार्श्वद्वितयमाध्नंत्या: पर्यडकस्य मुर्हुमुहु:।
तस्याश्य संवत्सर वद्राधीयस्योऽभवन्निसा॥
अन्नयमानसा जानुमध्यन्यस्तमुखाम्बुजा।
भर्त्तुरालेखनैरेव व्यतीयाय दिनानि सा।
मुहुरालप्यमानापि सखी भिश्चाटुपूवकम्।
पुरपुष्टेव हेमंते न सा तुष्णीकर्ता जहौ ॥[6]

इसी प्रकार आगे भी अंजना के वियोगजन्य भावादि का ब्यौरा दिया गया है जो स्थानानुरोध के कारण विस्तृत नहीं हो सकता है।

हास्य : जैन रामायण में हास्य रस की आंशिक अभिव्यक्त ही देखने को मिलती है। यथा—हनुमान द्वारा सीता की खोज के प्रसंग में, हनुमान रावण संवाद, हनुमान को रावण द्वारा गधे पर बिठाकर, पंचशिख करके लंका की गलियों में घुमाने का आदेश आदि प्रकरण हास्य की झलक देते हैं।[7]

करुण : हेमचंद्र की करुण रस व्यंजना का वैभव जैन रामायण में स्थान-स्थान पर लक्षित हुआ है। हेमचंद्र ने अपनी रामकथा में लगभग साठ हजार राजा-रानियों की दीक्षा लेने का वृत्तांत दिया है।[8] स्वाभाविक ही है कि संसार से विरक्त होकर जब मानव सन्यास धारण करता है तो कवि वहाँ सहज ही करुणाजन्य वातावरण का सृजन कर सकता है। जैन रामायण में अनेक स्थानों पर करुण विलाप वर्णन देखने को मिलते हैं— १. पुत्र व पति की मृत्यु पर चंद्रणखा का विलाप, २. लक्ष्मण के युद्ध भूमि में अमोध विजया प्रहार से मूर्छित होने पर राम का विलाप, ३. रावण की मृत्यु पर विभीषण, मंदोदरी आदि का विलाप, ४. सीता के परित्याग पर राम का विलाप, ५. लक्ष्मण की मृत्यु पर कौशल्या व राम का विलाप आदि।[9] उपर्युक्त प्रसंगों के अतिरिक्त भी अनेक राजाओं के दीक्षा ग्रहण करते समय अत्यंत कारुणिक दृश्य उपस्थित हुए है।

उदारहणस्वरूप "लक्ष्मण की मृत्यु पर राम-विलाप एवं सीता के परित्याग पर राम की दशा के कुछ अंश यहां दिए जा रहै हैं।"—

त्व किं बाधते वत्स ब्रुहि तूर्ष्णीं स्थितोऽसि किम्।
संज्ञयाऽपि समाख्याहि प्रीणयाऽग्रजमात्मन: ॥
एते त्वनमुखनीक्षन्ते सुग्रीवाद्यास्तवानुगा: ॥
नानुग्रह्णासि किं वाचा दृशा वा प्रियदर्शन ॥
जीवन्त्राणाद्रावणोऽगादिति लज्जावशाध्रु वम् ॥
न भाषसे तद्भाषस्व पूरयिष्ये तवेप्सितम् ॥

रे रे रावण दुष्टात्मंस्तिष्ठ तिष्ठ क्व यास्यसि।
एष प्रस्थापयामि त्वां नचिराय महापते ॥[10]
१. इत्याकर्ण्य वचो रामः पपात भूवि मूर्छया।
संभ्रमाल्लक्ष्मणैनैत्य सिषिचे चंदनांभसा।
२. उत्थाय विललापैवं क्व सा सीता महासती।
सदा खलानां लोकानां वचसा ही मयोज्झिता ॥
३. प्रतिस्थलं प्रतिजलं प्रतिशैलं प्रतिद्रुमम्।
रामो गवेषयामास ददर्श न तु जानकीम् ॥[11]

इसी प्रकार की करुण रस युक्त विचाराभिव्यक्ति हेमचंद्र की जैन रामायण में ठूँस-ठूँस कर भरी है जो ग्रंथावलोकन पर ही हृदयगोचर हो सकती है।

रौद्र : 'वीर' एवं रौद्र एक दूसरे के पूरक हैं। जैन रामायण में हेमचंद्र ने अवसरानुकूल रौद्र रूप प्रस्तुत किए हैं। इसमें अनेक युद्धों के वर्णनों में रौद्र की अभिव्यंजना हुई है यथा— इन्द्रजीत के विभीषण पर क्रोधित होने के प्रसंग में, विभीषण द्वारा रावण को स्तंभ लेकर मारने के प्रसंग में, रावण व बंदर सेना के युद्ध प्रसंग में , लक्ष्मण-रावण युद्ध तथा अनेक स्थलों पर रौद्र रस का परिपाक हुआ है।[12]

लक्ष्मण के क्रोध का हेमचंद्र ने अतिरौद्र चित्र प्रस्तुत किया है।
लक्ष्मणस्तद्गिरा कुद्धोऽभ्यधाद्रे दूतपांशन।
स्वशक्तिं परशक्तिं वा वेत्यद्यापि न रावणः ॥
यथा सोऽपितथैकाऽगः कियत्स्थास्यति रावणः ॥
कृतान्त इव सज्जो में तं व्यापादयितुं भुजः।[13]

लक्ष्मण के पराक्रम के सामने रावण ने भयंकर मायावी रूप पैदा किए :
स्मृतिमात्रोपस्थितायां विद्यायां तत्र रावणः।
विचक्रे भेरवाण्यांशु स्वानि रूपाण्यनेकशाः ॥
भूमौ नभसि पृष्ठेऽग्रे पार्श्वयोरपि लक्ष्मण :।
अपश्यद्रावणानेव विविधायुध वर्षिणः ॥[14]

वीर : जैन रामायण में हेमचंद्र ने वीर रस की सर्वाधिक अभिव्यक्ति की है। सूक्ष्मता से अवलोकन किया जाए तो दानवीर, दयावीर, धर्मवीर एवं युद्धवीर, ये चारों ही वीर-रूप कृति में उपलब्ध होते हैं। युद्धवीर के कतिपय प्रसंग निम्नांकित है— पुष्पत्तर-श्रीकंठ युद्ध, तड़ित्केश-वानरों का युद्ध, सुकेशपुत्र-लंकापुत्र युद्ध, इन्द्र-माली युद्ध, सूर्यरजा-ऋक्षरजा का युद्ध, इन्द्र-रावण युद्ध, अतिवीर्य-लक्ष्मण युद्ध, असली व नकली सुग्रीव युद्ध, राम-नकली सुग्रीव युद्ध, हनुमान व महेन्द्र युद्ध, लंका सुन्दरी-हनुमान युद्ध, हनुमान-अक्षयकुमार-इन्द्रजीत युद्ध, युद्धभूमि में अनेक राजाओं के युद्ध,

लक्ष्मण-रावण युद्ध, शत्रुघ्न-मधु युद्ध, लवणांकुश-पृथु युद्ध, लवणांकुश-राम युद्ध आदि।[15]

युद्धों के सजीव वर्णनों में हेमचंद्र ने जो वीर रस की धारा बहाई है उससे पाठक सहज ही रसासिक्त हो जाते हैं। लक्ष्मण व रावण के भयंकर युद्ध का वर्णन देखिए :

विधूया ऽ शेषरक्षांसि तूलानीव महाबलः।
लक्ष्मक्षस्ताड़यामास विशिखैर्दशकंधरम् ॥
भूमौ नभसि पृष्ठेऽग्रे पार्श्वयोरपि लक्ष्मणः ॥
अपश्यद्रावणानेव विविधायुधवर्षिणः ॥
रोषारूणाक्षस्तच्चक्रं भ्रमयित्वा नभस्तले।
मुमोच रावणः शस्त्रमन्त्यं रामाड नुजत्मने ॥
कृत्वा प्रदक्षिणां तत्तुं सो मित्रेर्दक्षिणे करे।
अवतस्थे रविरिवोदयपर्वतृ मूर्धनि ॥
इति दर्पाद्विब्रुवतो रक्षोनाथस्य लक्ष्मणः।
वक्षस्तेनैव चक्रेका कूष्माण्डवद्पाटयत् ॥[16]

भयानक : अन्य रसों की भांति "भयानक" की अभिव्यक्ति भी त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित पर्व-७, में हुई है। यथा— १. रावण की तपस्या में अनादृत देवता का उपसर्ग, २. कुलभूषण एवं मुनि का उपसर्ग, ३. अंजना का वनभ्रमण करते हुए सिंह को देखने का प्रसंग, ४. लंका में सीता के समक्ष भूत-प्रेतों का प्रकट होना, ५. धोर नरकों की यातनाओं का वर्णन आदि सभी को भयानक रस के उदाहरणों में गिना जा सकता है।[17]

जब सीता को क्रीड़ा के लिए रिझाने में रावण असफल हो गया तब उसने एक रात्रि को सीता के समक्ष भूत-पिशाच-प्रेत-वेताल आदि प्रकट किए—

धूष्कारिणो महाधूकाः फेत्कुर्वाणाःश्च फेखः।
वृका विचित्रं क्रन्दन्त ओतवोऽन्योऽन्ययोधिनः ॥
पुच्छाच्छोटत्कृतो व्याध्राः फुत्कुर्वाणा : फणाभृत : ॥
पिशाचप्रेतवेतालभूताश्चाकृष्टकर्त्रिका ॥
उल्ललन्तो दुर्ललिता यमस्येव सभासदः ॥
विकृता रावणेनेयुरुपसीतं भयंकराः ॥[18]

वीभत्स : पूर्व में हम वीररसान्तर्गत युद्धों के वर्णनों में हेमचंद्र की कला पर दृष्टिपात कर चुके हैं। प्रत्येक युद्ध के पश्चात् युद्ध मैदान "विभत्स" का महासागर बन जाता है। युद्धस्थल की वीभत्सता के साथ-साथ जैन रामायण में ऐसे अनेक वर्णन प्रस्तुत किए हैं, यथा, रावण की सेना के वीर हाथियों, ऊँटों, खरों, सिंहों, मेषों, घोड़े आदि पर सवार होकर युद्ध भूमि में पहुँचे तथा रावण के चारों ओर घेरा बनाकर वे शत्रुओं से लड़ने लगे :

केचिन्मतड़गजोद्राह्येरपरे वाहवाहनै :।
शार्दूलवाहयैरन्ये तु खरवाह्यै रथै : परे।
कुबेरवन्नरै: कैचिन्मैषै : केचित्तु वह्निवत्।
यमवन्माहिषै : केचित्केचिद्रेवन्तवद्वै यै:॥
विमानैर्देववत्केचित्प्रह्या: समरकर्मणे।
उत्पत्य युगपद्वीश: परिवव्रुर्दशाननम् ॥ [19]
वीरा: शीरांसि वीराणां छित्वा भूमौ प्रचिक्षिपु : ॥
बभुक्षिताय कीनाशायोचितान् कवलानिव ॥

इसी तरह नरक में परमधार्मिकों द्वारा संसारी जीवों की यातनाएं भी ''वीभत्स'' का सृजन करती हैं—

नैवं वो युद्धमानानां दुखं भावीति वादिन: ॥
परमाधार्मिका: कुद्धा: अग्नि कुंडेषु तान्ययधु:॥
दह्यमानास्त्रोयोऽप्युच्चैरटन्तो गलितांगका :।
तत: कृष्ट्वा तप्ततैलकुंभ्यां निद्धिरे बलात्।
विलीनदेहास्तत्रापि भाष्ट्रे चिक्षिपिरे चिरम्।
तडत्तडिति शब्देन स्फुटन्तो दुद्रुव: पुन: ॥ [20]

अद्भुत : जैन रामायण के अनेक प्रसंगों में ''अद्भुत'' की अभिव्यक्ति हुई है। जैन धर्म में यंत्रतंत्रादि एवं सिद्धियों पर विशेष बल रहा है। विद्याधरों के अनेक प्रसंग अद्भुत रस की सृष्टि करते हैं। मायावी युद्ध, माया द्वारा अनेक दुर्गादि भौतिक वस्तुओं के प्रकटीकरण का वर्णन, विद्याधरों की आकाशमार्गीय यात्राएँ तथा धार्मिक अभिषेकादि के वर्णन इस रस की सहज अभिव्यक्ति करते हैं।

सीता के अग्निदिव्य [21] करते समय धधकती आग शीतल जलवापी में बदल गई। सुन्दर कमलों युक्त वह जलराशि उफनकर सभी को समेटती नजर आती हैं, तब जनवाणी— हे महासती सीते, रक्षा करो, रक्षा करो की पुकार करती है, सीता ने अपना कर उठाकर उस जलराशि को शांत किया। देवताओं ने पुष्पवर्षा की तथा नारद नर्तन करने लगे।

यावत्सा प्राविशन्तावद्विध्यातो बहनिराश्वपि।
गर्त : स्वच्छोदकापूर्ण : स तु वापीत्वमाययौ ॥
सीता त्वधिजलं पद्भोपरि सिहासनस्थिता।
पद्मेवास्थात्सती भावतुष्टदेवप्रभावत: ॥
तुदुच्छलज्जलं वाप्या उद्वेलस्येव ववारिधे :।
आप्लावयि तुमारेभेमंचानपि गरीयस: ॥ [22]
उत्पलै : कुमुदै: पद्मैं:पुंडरीकै निरंतरा॥
सौरभौद्भ्रांतभृंगालीसंगीता हंसशालिनी ॥

आस्फलद्वीचिनि चयमणिसोपान बंधुरा।
बद्धोभयतटा रत्नोपलैर्वापी बभूव सा ॥
ननृतुर्नाददाधा : रवे सीताशीलप्रशंसिनः सीतो
परिष्टाष्तुटाश्च पुष्पवृष्टि व्युधः सुराः ॥[23]

शांत : पूर्व में हम कह चुके हैं कि जैन रामायण में लगभग साठ हजार राजा-रानियों के दीक्षाग्रहण करने का वर्णन आया है। दीक्षा लेने के पीछे जगत से वैराग्य का कुछ न कुछ कारण अवश्य रहा है। इष्टजन की मृत्यु का खेद, स्वयं के अपराध पर खेद, अस्त होते सूर्य से वैराग्य की प्रेरणा, साधुओं से पूर्वभव सुनकर वैराग्य-प्रेरणा, स्वयं की समझ से व्रत ग्रहण, लोकापवाद अथवा मानभंग से संसार से विरक्ति, वृद्धावस्था आदि कारणों[24] से जब कोई व्यक्ति जगत को अनित्य समझने लगता है एवं वैराग्य की भावना उसमें घर कर जाती है तब कवि के लिए शांत रस को अभिव्यक्त करने का मार्ग प्रशस्त होता है। हेमचंद्र के सामने ऐसे अनेक प्रकरण आए हैं जिनका उन्होंने भरसक लाभ उठाया। कुछ अंश उदारहणार्थ यहां प्रस्तुत हैं—

तैनैवं दर्शितैस्तैर्हैतुभिर्जातचेतनः ।
रामो दध्यौ किं नु सत्यं न जीवति ममानुजः ॥
ततस्तौ लब्दबोधाय रामाय स्वमशंसताम् ॥
दैवो जटायुः कृतान्तौ निजस्थानं च जग्मतुः ॥
मृतकार्य ततौ रामश्चकार स्वानुजन्मनः ॥
दीक्षां प्रपित्सुः शत्रुध्नं राज्यादानाय चादिशत् ॥[25]
इत्श्च हनुमांश्चैतै चैत्यवन्दनहैतवै।
मेरुंगतो निवृत्तोऽस्तमयंतं सूर्यमैक्षत ॥
एवं च दध्वाबुदयो यथा ह्यस्तं तथा खलु ॥
निदर्शनमयं सूर्यो धिगधिक् सर्वमशाश्वतम् ॥
एवं विचिन्तय स्वपुरे गत्वा राज्यं सुते न्यधात्।
धर्मरत्नाचार्यपार्श्वै प्रवव्रज्यामाददे स्वयम्।[26]

वात्सल्य : श्रृंगार की तरह वात्सल्य के भी दो पक्ष हैं— संयोग एवं वियोग। दोनों पक्षों की अभिव्यक्ति जैन रामायण में हुई है। वात्सल्य के प्रमुख स्थल हैं— पवनंजय के विवाह पर उसके माता-पिता की प्रसन्नता, अंजना का पुत्र जन्म पर उसका हर्ष, राम-लक्ष्मण की बालक्रीड़ाएं, विदेह का जन्म एवं जनक का पुत्री-वात्सल्य, लवण एवं अंकुश की बालक्रीड़ाएँ आदि।[27]

राम एवं लक्ष्मण बाल्यावस्था में दशरथ के गोद की शोभा बढ़ाते हैं। वे कभी उनकी मूछों के बाल खींचते हैं तो कभी राजसभा में दशरथ की गोद से उठकर अन्य राजाओं की गोद में जा बैठते हैं।

तौ द्वावपि पितुः कूर्चकचाकर्षणाशिक्षकम्।
विशिष्टं प्रापतुबाल्यं क्रमेण क्षीरपायिणौ ॥
धात्रीभिर्लाल्यिमानौ तावपश्यत्परया मुदा।
मुहुर्मुहुर्महीपाल : स्वदोर्दण्डा विवापरौ॥
संचरेतुः सदस्यानामंकादंकं महीभुजाम् ॥
तैषामड़गेषु वर्षन्तौ तौ स्पर्शेन सुधामिव॥
क्रमेण तो वर्धमानौ नीलपीताम्वरौ सदा।
विजहतुः पादपातै : कम्पयन्तौ महीतलम् ॥ [28]

इसी प्रकार लवणांकुश की बाल चेष्टाएँ भी वात्सल्य का सहज सृजन करती हैं—

इतश्च तत्र वैदेही सुषुवे युग्मिनौ सुतौ।
नामतोऽनंगलवणं मदनांकुशमप्यथ ॥
वज्रजंधस्तयोश्चक्रे जन्मनामहौत्सवौ।
स्वपुत्रलाभादधिकं मोदमानो महामनाः ॥
छात्रीजनैलल्यिमानौ लीलादुर्ललिता वुभौ ॥
क्रमेण ववृधाते तावशिचिनाविव भूचरौ ॥
कलाग्रहणयोग्यौतावजायेतां महाभुजौ।
कलभाविव शिक्षार्हो नरेन्द्र नयनोत्सवौ ॥ [29]

आगे भी सिद्धार्थ मुनि से पुत्रों की प्रशंसा सुन सीता अति हर्षित हो उन्हें अध्ययनार्थ वहाँ रख लेती है।

भक्ति : हेमचंद्र की दृष्टि में "जिनपूजा" या जिनभक्ति सर्वोच्च रही। जब उनका उद्देश्य ही जैन धर्म के सिद्धांतों के अनुकूल राम कथा सृजन करना रहा तो फिर "जिन" भक्ति के लिए अपनी कृति में अवसरों की कमी क्यों रखते। इसीलिए हेमचंद्र ने लगभग अपने सभी पात्रों को जैन धर्म में दीक्षित किया। जैन रामायण में अनेक स्थानों पर जैन पूजा, चैत्यवंदन, जितेन्द्रदेव स्तुति आदि के माध्यम से भक्ति रस की व्यंजना हुई है। रावण, दशरथ, सीता, हनुमान एवं देवताओं आदि द्वारा अरिहंत पूजा, चैत्य महोत्सव आदि प्रसंग भक्तिरसयुक्त प्रस्तुत हुए हैं। [30] उदारहणार्थ रावण द्वारा शांतिनाथ की स्तुति इस प्रकार की गई—

देवाधिदेवाय जगत्तायिने परमात्मने।
श्रीमते शांतिनाथाय षोडशायाऽर्हते नमः ॥
श्रीशांतिनाथभगवन् भवाऽम्भोनिधितारण ॥
सर्वार्थसिद्धमंत्राय त्वन्नाम्नेऽपि नमोनमः ॥
ये तवाऽष्टविद्यां पूजां कुर्वन्ति परमेश्वर।
अष्टाऽपि सिद्धयस्तेषां करस्था अणिमादयः ॥

धन्यान्यक्षीणि यानि त्वां पश्यन्ति प्रतिवासरम्।
तेभ्योऽपि धन्यं हृदयं तददृष्टो येन धार्यसे ॥

स्तुति के अंत में रावण शांतिनाथ से भक्ति मांगता है—

भूयो भूयः प्रार्थये त्वामिदमेव जगद्विभो।
भगवन भूयसी भूयात्तवयि भक्तिर्भवे भवे।
स्तुत्वेति शांतिलंङ्केशः पुरो रत्नशिलस्थितः ॥
तां साधयितुमारेभे विद्यामक्षस्त्रजं दधत्।[31]

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि हेमचंद्र की भावप्रणवता शास्त्रस्थितिसंपादित एवं बोझिल है। उसमें कृत्रिमता की गंध विद्यमान है। रस वर्णनों के स्थल भले ही विस्तृत एवं स्थूल हों परंतु उनमें मार्मिकता एवं सहजानुभूति का अंश कुछ कम नजर आता है। शांत वीर एवं भयानक रसों का परिपाक हेमचंद्र की अनोखी देन कहा जा सकता है।

(२) छंद विधान : वृत्तरत्नाकर की भूमिका में श्रीधरानंद शास्त्री लिखते हैं— "छंदशास्त्र" का ज्ञान साहित्यानुशीलनशील व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। तदनुसार छंद ज्ञान के अभाव में उच्चारण गति व लय ठीक नहीं चल सकते। साहित्य-आस्वाद हेतु आवश्यक है कि छंद का ज्ञान हो। स्वयं हेमचंद्र ने अनेक व्याकरण ग्रंथों, कोश ग्रंथों एवं अलंकार ग्रंथों की रचना की है। इन ग्रंथों में एक प्रधान छंद एवं अन्य अवसरानुकूल सहायक छंद होने की परंपरा का निर्वाह हेमचंद्र ने काफी हद तक किया है।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व ७ में छंद विधान

(क) संस्कृत काव्यशास्त्रीय परंपरा के अनुसार

१. महाकाव्य सर्गबद्ध रचना होती है। त्रि.श.पु.च. में अनेक पर्व हैं और प्रत्येक पर्व में अनेकानेक सर्ग हैं।

२. सातवां पर्व सर्ग १ से १० रामचरित्रात्मक है। अर्थात् त्रिशपुच. नामक वृहन्महाकाव्य के अंतर्गत प्रतिष्ठित महाकाव्य ही माना जा सकता है।

३. आमतौर पर प्रत्येक सर्ग में एक मुख्य छंद होता है— प्रथम छंद से लेकर उपान्त्य तक और अंत्य छंद में परिवर्तन होता है, अर्थात् वह उपर्युक्त छंद से भिन्न होता है (इस परंपरा के अपवाद स्वरुप अनेक उदारहण भी मिलते हैं।)

४. हेमचंद्र ने पर्व ७ के प्रथम सर्ग से लेकर दसवें सर्ग तक में से प्रत्येक के अंतिम छंद को छोड़कर सर्वत्र अनुष्टुप् छंद का ही प्रयोग किया हैं। प्रत्येक सर्ग में अंतिम छंद अनुष्टुप् से भिन्न हैं।

(ख) सर्गानुसार विवरण : प्रथम सर्ग—छंद संख्या १ से १६३ (अपान्त्य तक)—अनुष्टुप-अनुष्टुप् छंद के लक्षण—

१. ८-८ अक्षरों के कुल ४ पाद (=चरण = अष्टक)

२. प्रथम द्वितीय ८ + ८ + १६ अक्षर एक इकाई।
तृतीय + चतुर्थ ८ + ८ + १६ अक्षर एक इकाई।
(८ अक्षरों के विभाग को अष्टक कहा गया है)

२. चारों अष्टक्ों में प्रत्येक का पाँचवां अक्षर लघु होता है।
चारों अष्ट्कों में से प्रत्येक का छठा अक्षर गुरु होता है।
प्रथम व तीसरे अष्टकों का सातवां अक्षर गुरु होता है।
दूसरे व चौथे अप्टक का सातवां अक्षर लघु होता है।
परन्तु इन लक्षणों का कहीं-कहीं निर्वाह नहीं किया जाता। यहाँ ऐसे भी उदारहण पाए जाते हैं।

अंत्य छन्द : (१६४वां) रथोद्धता—प्रत्येक पाद में ग्यारह अक्षर।
पाद ४, यति तीसरे अक्षर पर, कहीं-कहीं चौथे पर भी
अक्षर गण - र म न र ल ग।

द्वितीय सर्ग : छन्द १ से ६५३ तक—अनुष्टुप्।
अंत्य-(६५४वां)—मालिनी—प्रत्येक पाद में १५ अक्षर
पाद - ४, यति - ८ व १५ पर
अक्षर गण-नम न म य य

तृतीय सर्ग : छंद १ से ३०२ अनुष्टुप्।
अन्त्य (३०३वां) वसंततिलका—प्रत्येक पाद में १४ अक्षर।
पाद - ४, यति ८ व १४ पर।
अक्षर गण - त भ ज ज ग

चतुर्थ सर्ग : छंद १ से ५३० - अनुष्टुप्।
अन्त्य (५३३वां) वसंततिलका
- प्रत्येक पाद में १४ अक्षर। पाद ४, यति ८ व १४ पर।
अक्षर गण - त भ जज ग

पंचम सर्ग : छंद १ से ६४० - अनुष्टुप्।
अंत्य (४६१वां) शार्दूलविक्रीडित - पाद - ४
प्रत्येक पाद में १९ अक्षर। यति १२ व १९ पर अक्षर गण
म स ज स तत ग

षष्टम सर्ग : छंद १ से ४०६ - अनुष्टुप्।
अंत्य (४०८वां) वसंततिलका १ पाद - ४
प्रत्येक पाद में १४ अक्षर। यति ९ व १४ पर।
अक्षर गण - त भ जज ग ग

सप्तम सर्ग : छंद १ से ३७६ - अनुष्टुप्।
अंत्य (३७७वां) मालिनी - पाद ४
प्रत्येक पाद में १५ अक्षर। यति ८ व १५ पर।
अक्षर गण - न न म य य

अष्टम सर्ग : छंद १ से ३२५ - अनुष्टुप्।
अंत्य (३२६वां) वसंततिलका - पाद - ४
प्रत्येक पाद में १४ अक्षर। यति ८ व १४ पर।
अक्षर गण - न भ ज ज ग ग

नवम सर्ग : छंद १ से २३२ - अनुष्टुप।
अंत्य (२३३वां) रथोद्वता - ४ पाद
प्रत्येक पाद में ११ अक्षर, यति ३, ११
अक्षर गण - र न र ल ग

षष्टम सर्ग : छंद १ से २६१ - अनुष्टुप्।
अंत्य (२६२वां) शार्दूलविक्रीडित - पाद ४।
प्रत्येक पाद में १९ अक्षर। यति १२ व १९ पर।
अक्षर गण - म स ज स त त ग

विश्लेषण :

छंद	सर्ग
अनुष्टुप्	सर्ग १ से १० प्रत्येक के अंतिम छंद को छोड़कर।
रथोद्वता	सर्ग - १ व ९
वसंततिलका	सर्ग - ३, ४, ५ व ८
मालिनी	सर्ग - २ व ६
शार्दूलविक्रीडित	सर्ग - ५ व १०

अक्षर-गण-छन्द या वृत्त: तीन-तीन अक्षरों की एक-एक इकाई लेकर उसमें से प्रत्येक का लघु-गुरु की दृष्टि से गण निर्धारण किया जाता है। शेष एक या दो अक्षर लघु का "ल" गण व गुरु का "ग" गण माना जाता है। अंत्य अक्षर लघु होने पर भी गुरु ही माना जाता है एवं विसर्ग युक्त ह्रस्व अक्षर ही मानते हैं तथा-मन: शक्ति न: एवं श क्रमश: गुरु - गुरु हैं।

अक्षरयुक्त छंद के प्रत्येक पाद में ३ + ३ + ३ = ९ कुल अर्थात् ३ मुख्य गण ही होते हैं, शेष दो अक्षरों के लघु गुरु ही गण रहते हैं। वसंततिलका में दो अक्षर तथा सार्दूलविक्रीडित में एक अक्षर शेष रहता है जो लघु-गुरु गण द्वारा पूर्ण छंद हो जाता है। लघु को। चिह्न से तथा गुरु कोऽ चिह्न से दर्शाते हैं। कहीं-कहीं लघु - १ तथा, गुरु + चिह्न से भी दर्शाया जाता है।

गणों का विवरण :

कृति में प्रयुक्त गणों का संक्षिप्त विवरण

1	1	1		
न	म	न	-	न गण

1	S	1		
वि	का	र	-	ज गण
S	1	S		
रा	धि	का	-	र गण
S	S	1		
आ	का	श	-	त गण
1	S	S		
ज	मा	ना	-	य गण
S	S	S		
मा	ना	वा	-	म गण
1	1	S		
न	ग	री	-	स गण
		1		
		ल	-	ल गण
		S		
		गा	-	गुरु
		S		
		म:	-	ग गण

इस प्रकार हम देखते हैं कि हेमचंद्र ने जैन रामायण में केवल पाँच छंदो का प्रयोग किया है। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व ७ का प्रधान छंद अनुष्टुप् है। हेमचंद्र की छंद योजना योजनाबद्ध एवं संगत रही है। यह ग्रंथ छंदविधान की दृष्टि से प्रबंधत्व की कसौटी पर खरा उतरता है। कृति का छंदविधान ठोस तथा पश्चातवर्ती कवियों के लिए मार्गदर्शक बन पड़ा है।

(३) अलंकार विधान : अलंकार काव्यसौंदर्य के मूल कारण एवं सर्वस्व भी कहे जाते हैं। ''काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारम् प्रचक्षते'' के अनुसार ये काव्य की सुन्दरता के धर्म हैं। अलंकारों के मुख्य तीन प्रकार हैं— शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा उमयालंकार। इन तीन मुख्य अलंकारों के अलावा भी इनमें अनेक भेदोपभेद हैं।

जैनाचार्य हेमचंद्र काव्यशास्त्र के ज्ञाता थे। अपने काव्य में इन्होंने अलंकारों का भलीभांति निर्वाह किया है। त्रिशष्टिशलाकापुरुष चरित, पर्व ७ में आए सभी अलंकारों के उदाहरण यहां स्थानाभाव के कारण देने संभव नहीं हैं फिर भी मुख्य-मुख्य अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

अनुप्रास : अनुप्रास में चारों भेद त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित में आए हैं :[33]

छेकानुप्रास : इति श्रुत्वाथ पवनो ययो पवनरंहसा।
पारापत इव प्रेयस्युत्कः श्वशुरपत्तनम्। (३/२२६)

वृत्त्यानुप्रास : तां मात्रवन्नमस्कृत्य क्षमायित्वा च ते ययुः ॥
स्वामिवत्स्वाम्यपत्येऽपि सेवकाः समवृत्तयः॥ (३/१३२)

श्रुत्यानुप्रास : ममभामंडलस्येव भ्रातुरेहि तदोकसि।
स्त्रीणां पतिगृहान्यत स्थानं भातृनिकेतनम् (९/१४)

अंत्यानुप्रास : तत् कर्णान्ते नमस्कारदायिनं पुरुषं च तम्।
तदभ्यर्णे तदीयं च सपर्याणं तुरंगमम् ॥ (१०/३६)

यमक : श्री कंठेनैकदा मेरोर्निवृत्तेन व्युदेक्ष्यत।
पुरुषोत्तरस्य दुहिता पदमा पद्मेव रुपतः ॥[34] (१/१२)

श्लेष : कुठारधातैराच्छिन्ना भटानामपरैभटैः।
पंचशाखा : पतति स्म शाखा शाखावतीमिव॥ (७/६९)

दीपक : राजा राजसु सोऽराजद् द्विराज इवोडुष।
ग्रहेष्विव ग्रहराजः सुमेरुः पर्वतेष्विव।. (४/११७)

उपमा : जयानाम्न्यां च जायायां तस्याजायत नन्दन :॥
दमयन्त : प्रियदम : कलानां निधिरिन्दुवत्[35] (३/१६४)

३४४, ३५०, ४११, ४५९ - ४६२, ४७३, ५४०, ५/१, ५, १७, ३१, ५७, ५८, ७९, ११५, १६९, १८८, १९६, २२१, ३५१, ,३८५, ३९९, ४१२, ४१५, ४२६, ४४०, ४६०, ६/१४, २५, २८, ३३, ५८, ६०, ६९, ७२, ९९, १०४, १०९, १४५,, १२७, १५७, २०७, २१५, २२३, २६८, २७०, २७४, २९५, ,२९९, ३०३, ३४५, ३४८, ३४८, ३४९, ३६६, ३७५, ३८१, ७/७, ३२, ३३, ४६, ४७, ५०, ५१, ६४, ६६, ७०, ७२, ७७, ८८, १३९, १४७, १५५, १५६, १६७, १७३, १७५, ,,१८४, १९४, २०१, २०७, २१०,,, २१८,, २४६, २४८, ,२५५, ,,२९२, २९३, ३१९, ,३२८, ,३५२, ३६४, ३७१, ३७५,, ,८/३६, ४२, ४४, ५५,, ,८६, १०७, १६३, १७१, १७५, २५७, २७८, २९७, ३००, ९/१६, २३, ३७, ३८, ४२, ४७, १०७, ११७, ११८, १४७, २२२, २२२, २२३, १०/७०, ९०, १२०, १२५, १५५, १८५, १९४, २५७, २५८, आदि स्थल।

व्याजोक्ति : ददर्श तत्र तं बालं दिव्यालंकार भाषितम्।
विधाधरेन्द्रः सोऽपुत्रः पुत्रीयन्नाददे स्वयम् ॥
प्रेयस्याः पुष्पवत्याश्चार्पयामास तमर्भक्रम।
देव्यद्य सुपुवे पुत्रमिति चाधोषयत पुरि[36]

(४/२४६-२४७)

अनन्वय : यथा तथा कालो गत : रावणस्य सुखाय स:।
कालरूपस्त्वयं कालस्तस्येदानीमुपस्थित: ॥
(२/६०२)

मालोपमा : विदुद्रुव: राक्षासास्तेऽप्याक्रान्तास्तै : कपीश्वरै : ॥
नागा इव गरुत्मभ्दिरभिदरामघटा इव ॥ [37]
(७/१७८)

रुपक : ततस्तस्याहमित्याख्यं वपुर्वेदिरुदीरिता।
आत्मा यष्टा तपो वहिनर्ज्ञानं सर्पि : प्रकीर्त्तितम्।
कर्माणि समिध: क्रोधादयस्तु पशवो मता:।
सत्यं युप: सर्व प्राणिरक्षणं दक्षिणा पुन: ॥ [38]
(२/३६८-३६९)

स्मरण : पूर्वोपकारान् स्मरता मया मुक्तोऽसि सम्प्रति।
दत्तंतं च प्रथिवीराज्यमखंडाज्ञ: प्रशाधि तत् ॥ [40]
(२/२२३)

भ्रांतिमान : तस्यां सिद्धासनं वेदौ चेदीशस्य निवेशितम्।
सत्यप्रभावादाकाशस्थितमित्य बंधुजन: ॥ [41]
(२/४१५)

सन्देह : दूतोऽप्युचे महावीर्योऽतिवीर्यस्तावदेष न: ॥
भरतोऽपि न सामान्यस्तदद्वयो: शंशयो जपे॥ [42]
(५/२०१)

अतिश्योक्ति : एवं विमृश्य भगवान् पादांगुष्टेन लीलया।
अष्टापदाद्रैर्मूधानां बाली किंश्चिदपीडयत॥ [43]
(२/२५३)

उत्प्रेक्षा : तिष्ठते स्म कुमारी सा श्रीकंठायोन्मुखाम्बुजा।
स्वयंवरस्त्रजमिव क्षिपन्ती स्निग्धया दृशा॥ [44]
(१/१४)

विभावना : पूर्वोपात्तामभुंजानां मृणाललतिकामपि।
तप्यमानां हिमेनापि क्वथितैननेव वारिणा।
दूयमानां ज्योत्स्नयापि वहन्यर्चिश्छटयेव ताम्।
क्रंदन्तीं करुणं प्रेक्ष्य स एवं पर्यचिन्तयत् ॥
(३/७९-८०)

असंगति : नवरागो नवरागो सिषेवे वारुणीमसौ।
मां हित्वेत्यपमानेनै म्लानास्या प्राच्यभृद्ध्रुवम्।
(६/२८४)

निदर्शना : यादृग्रूपं यथावस्थं विक्रर्तु नेश्वराः सुराः।
नानुकर्तु सुरनरा न च कर्तु प्रजापतिः ॥
तस्या मधुरता काचिदाकृतौ वचनेऽपि च।
कंठे च पाणिपादे च रक्तता काचिदुच्चके : ॥
अथवा तां यथावस्थां यथा नालेखितुं क्षमः।
नालं तथा वक्तुमपि वच्म्यतः परमार्थतः ॥
योग्या भांमंडलस्येति विचार्य मनसा मया।
यथाप्रज्ञं समालिख्य दर्शितेयं पटे नृपः।.[45]
(४/३०९-३१२)

व्यतिरेक : आजन्मोर्पार्जतां कीर्ति निजं कुलामिवामलाम।
प्रवाद सहनेनत्वं मा देव मामिनी कृथा : ॥[46]

समासोक्ति : इतश्च लक्ष्मणो वीरः खरेण प्राज्यपत्तना।
योध्धुं प्रावर्ततैकोऽपि न सिंहस्य सखा युधि।[47]

परिकर : द्वारस्तम्भनिषण्णाङ्गी प्रतिपच्चन्द्रवत्कृशम्।
लुलितालकसंछन्नललाटां निर्विलेपनाम् ॥
नितम्बन्यस्तविस्रस्तश्लथलम्बिभुजालताम्।
ताम्बुलरागरहितघूसराधरपल्लवाम् ॥
वाष्पाम्बुक्षालित मुखीमुन्मुखां पूरतः स्थिताम्।
अंजनां व्यंजनदृशं ददर्श पवनो व्रजन ॥[48]

आक्षेप : सरसो लूनपद्मस्य भग्नदंतस्य दंतिनः।
शाखिनश्छिन्नशाखस्यालंकारस्य च निर्मणे : ॥
नष्ट्ज्योत्सनस्य शशिनस्तोयदस्य गमाभ्भसः ॥
परेश्च भग्रामानस्य मानिनो घिगवस्तितिम् ॥
तस्याथवास्त्ववस्थानं यतमानस्य मुक्तये।
स्तोकं विहाय वह्विष्णुर्न हि लज्जास्पदं पुनाम् ॥[49]

विरोधाभास : सर्वथा स्त्री बिना नाथं मैकाहमपि जीवतु।
यथाहमेका जीवामि मन्दभाग्याशिरोमणि :[50]
(३/१५७)

विशेषोक्ति : तुरंगा न त्वंरतेऽमी कशाभिस्ताडिता अपि।
रथश्च जर्जरस्तेऽभूदसौ वैर्यस्त्रताडितः[51] (९/१३२)

विभय : क्षिप्त्वा करीषं दृषदि रोपयामास पद्मिनीम्।
बीजान्युवापाकालेऽपि मृतोक्ष्णा लांगलेन च।
यंत्रे च बालुका : क्षिप्त्वा तैलार्थ पर्यपीलीयत्।
इत्याद्य साधकं रामस्यान्यद्प्युभावयत्।[52]
(१०/१६२-१६३)

सार : कच्चिदाष्ट्रे पुरे गौत्रे सेन्ये सवांगेऽन्येतोऽपि च।
कुशलं मिथिलाभर्तुर्ब्रूह्यागमनकारणम् ॥
(४/२६२)

उत्तर : दृष्ट्वा सिंहोदरो रामं नत्वा चेदमभाषत।
न ज्ञातस्त्वमिहायातो मया रघुकुलोद्वह॥ [53]
(५/६१)

उदारहण : गुरुपदेशो हि यथापात्रं परिणमेदिह।
अभ्राम्भः स्थानभेदेन मुक्तालवणतां व्रजेत। [54]
(२/४०३)

काव्यलिंग : पुरे हनुरुहे यस्माज्जातमात्रोऽयमाययौ।
तत् सुनोर्मातुलश्चक्रेऽमिधानं हनुमानिति॥ [55]
(३/२१६)

अर्थान्तरन्यास : अन्यस्य शास्राल्लंकां यः शास्त्येवं वदन् स किम्।
न लज्जते स्वात्मनोऽपि तस्य घाष्ट्र्यमहोमहत्॥ [56]
(२/११३)

भाविक : स चंद्रहासं मामूद्वा यथा ब्राम्यस्त्वमब्धिषु।
तथा त्वां साद्रिमुत्त्पाट्य क्षेप्स्यामि लवणार्णवे
(२/२४३)

वक्रोति : उवाच चैवमुदयसुन्दरोऽथ कुमार किम्।
आदित्ससे परिव्रज्यां सोऽवदच्चित्तमस्ति मे॥
उदयो निर्मणा भूयः प्रोचे यद्यस्ति ते मनः
तदद्य मा विलम्बस्व सहायोऽहमपीह ते॥ [57]
(४/१४)

पुनरुक्तवदाभास : अरे कोरावणो नाम तेन किं ननु सिध्यति।
नाहमिन्द्र कुबेरो व न चास्मि नलकूबरः ॥
सहस्ररश्मिनप्यिस्मि न मरूतो न वा यमः ॥
न च कैलासशैलोऽस्मि किं त्वस्मि वरूणो ननु॥ [58]
(३/५४-५५)

स्वाभोवोक्ति : क्षुधिता तृर्षिता श्रान्ता निःश्वसन्त्य श्रुवर्षिणी।
दर्भविद्धपदासृग्भी रंजयंती महीतलम् ॥
पदे पदे प्रस्खलन्ती विश्राम्यन्ता तरौ तरौ।
सह सख्यांजनाचाली द्रोदयंती दिशोऽपि हि॥ [59]
(३/१४९-१५०)

उदात्त : दीपायमाननयनं व्रजकंदाभदंष्ट्रिकम्।
क्रकचक्रूरदशनं ज्वालासोदरकेसरम ॥

लोहांकुशोपमनखं शिलासदृगुर: स्थलम्।
पंचाननयुवानं ते समायान्तमयश्यताम् ॥
(३/१८८-१८९)

अप्रस्तुतप्रशंसा : शराशरि चिरं कृत्वा यमोऽधाविष्ट वेगत:।
शुण्डादण्डमिव व्योलो दण्डमुत्पाट्य दारुणम् ॥
(२/१५२)

उपर्युक्त अलंकारों के उदारहण तो संकेत मात्र ही हैं वास्तविकता तो कृति के अवलोकन से ही जानी जा सकती है। पाठकों को वास्तविक आनंद प्राप्त करने के लिए ग्रंथ को पढ़ना चाहिए। हमने जिन अलंकारों के उदाहरण यहां प्रस्तुत किए हैं, संभव हैं, उनके अतिरिक्त भी अनेक अलंकार कृति में मौजूद हों, परंतु हमारा लक्ष्य यहाँ अलंकारों का वर्णन करना न होकर दिशामात्र संकेत करना हैं। अत: इन उदारहणों से स्पष्ट है कि त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व ७ अलंकार- विधान की दृष्टि से उत्तम कोटि के काव्यों में गण्य ग्रंथ हैं।

उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा तो कृति में अनवरत दौड़ लगाते प्रतीत होते हैं तथा शेष अलंकार भी यथाप्रसंग अपनी उपस्थिति देने में हिचकिचाए नहीं हैं। अस्तु, हेमचंद्र का शत-प्रतिशत अलंकाराधिकार परिपुष्ट है।

(३) वर्णन कौशल : लोकोत्तर वर्णन में निपुण कविकर्म को काव्य कहा गया है। [477] काव्य की पूर्णता वर्णन से ही संभव है। कवि की निपुणता का आभास वर्णनों को देखने से मिल जाता है। कवि के वर्णन जितने स्वाभाविक, मनोहर एवं आकर्षक होंगे, जनमानस में वह काव्य उतना ही ख्यातिप्राप्त होगा। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने वर्णन के लिए कुछ बिंदु चुने हैं जिसे सूची के रुप में स्वीकारा गया है। संध्या, सूर्य, चंद्र, रात्रि, प्रदोष, दिवस, प्रात:काल, मध्याह्न, पर्वत, वन, सागर, शिकार, संभोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, युद्ध, मंत्र, पुत्रजन्म, उत्सव आदि। वर्णनात्मक पदकाव्य में वर्णनों का स्थान महत्वपूर्ण होता है।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित पर्व ७ (जैन रामायण) के १ से १० सर्गों को आद्यान्त पढ़ने पर ज्ञात होता है कि हेमचंद्र का मन वर्णनों में पर्याप्त मात्रा में रमा है। केलि वर्णन, स्थल वर्णन, जलक्रीडा वर्णन, युद्ध वर्णन, प्रकृति वर्णन आदि को कवि ने विस्तार दिया है। ये सभी वर्णन हमें स्वाभाविक, मनोहर एवं रसमय प्रतीत होते हैं। अनेक स्थलों पर एक ही वस्तु को नवीन प्रकार से अनेक बार प्रस्तुत किया गया है, जो पाठकों को आकर्षित करता हैं। हेमचंद्र के वर्णनों को निम्न सूची में प्रस्तुत किया जा सकता है।

१. धार्मिक वर्णन :

१. मुनि वर्णन [60]

२. जिन अष्टप्रकारी पूजा, चैत्यवंदनादि वर्णन [61]
३. अरिहंत बिंब स्थापना वर्णन [62]
४. चैत्य महोत्सव वर्णन [63]
५. धर्म श्रवण वर्णन [64]
६. धर्माचरण वर्णन [65]
७. शांतिनाथ पूजा, स्तुति वर्णन [66]
८. तीर्थयात्रा-वर्णन [67]

२. स्थल वर्णन

१. मधु पर्वत वर्णन [68]
२. समवेत गिरीशिखर वर्णन [69]
३. दुर्लंघयनगर - किले का वर्णन [70]
४. अर्ध-बर्बर देश का वर्णन [71]
५. शोकमग्न अयोध्या वर्णन [72]
६. चित्रकूट पर्वत व अवंतिदेश वर्णन [73]
७. अवंतिदेश वर्णन [74]
८. निर्जलदेश वर्णन [75]
९. विंध्यवीर वर्णन [76]
१०. विजयपुरनगर वर्णन [77]
११. क्षेमांजलिनगर वर्णन [78]
१२. दण्डकारण्य वर्णन [79]
१३. युद्धस्थल वर्णन [80]
१४. नव-निर्मित अयोध्या वर्णन [81]

३. प्रकृति वर्णन :

१. रेवा नदी वर्णन [81]
२. भयंकर रात्रि वर्णन [82]
३. जंगली शेर का वर्णन [83]
४. गंभीरा नदी एवं वन वर्णन [84]
५. वर्षा ऋतु वर्णन [85]
६. उद्यान वर्णन [86]
७. रात्रि व सूर्यास्त वर्णन [87]
८. प्रकृति सौंदर्य वर्णन [88]
९. चंद्रोदय, सूर्यास्त व निशा वर्णन [89]
१०. सूर्योदय वर्णन [90]
११. वापी सौंदर्य वर्णन [91]
१२. सूर्यास्त वर्णन [92]

४. नारी सौन्दर्य - व्यापार - आलाप वर्णन :

१. पद्मा सौंदर्य वर्णन [93]
२. श्रीमाला स्वयंवर वर्णन [94]
३. कैकेयी - गर्भावस्था वर्णन [95]
४. सरुपनयना सौंदर्य वर्णन [96]
५. पंकज श्रीनख - शिख वर्णन [97]
६. चंद्रणखा विवाह वर्णन [97]
७. सुरसा विवाह वर्णन [99]
८. अहिल्या स्वयंवर वर्णन [100]
९. अंजना-स्वरुप वर्णन [101]
१०. अंजना-गर्भावस्था वर्णन [102]
११. अंजना-पुत्रजन्म तिथि वर्णन [103]
१२. सिंहीका के सतीत्व का वर्णन [104]
१३. कैकेयी के सारथी-कार्य का वर्णन [105]
१४. सीता सौंदर्य वर्णन [106]
१५. सीता स्वयंवर वर्णन [107]
१६. कैकेयी का वरदान - मांग ने का वर्णन [108]
१७. कल्याणमाला वर्णन [109]
१८. वनमाला आत्महत्या-प्रयास वर्णन [110]
१९. सीता-वर्णन [111]
२०. विशल्या-स्नानजल-प्रभाव वर्णन[112]
२१. सीता का उद्यान-क्रीडा वर्णन [113]
२२. सीता के संदेश भेजने का वर्णन[114]
२३. सीता पंचदिव्य वर्णन [115]

५. पुरुष सौंदर्य - व्यापार - वैभव - वर्णन :

१. अतीन्द्र वर्णन [116]
२. कीर्तिधवल राज्य वर्णन [117]
३. श्रीकंठ राज्य वैभव वर्णन [118]
४. दत्त वर्णन [119]
५. अशनिवेग वर्णन [120]
६. सहस्त्रहारपुत्र-इन्द्र वर्णन [121]
७. रत्नश्रवा तपस्या वर्णन [122]
८. रावण-जन्म-बाल्यकाल वर्णन [123]
९. विभीषण ख्याति वर्णन [124]
१०. रावण विद्यासिद्धि वर्णन [125]

११. मय-परिवार वर्णन [126]
१२. रावण-गजारुढ़ वर्णन [127]
१३. बालि-वर्णन [128]
१४. बालि-मुनि वर्णन [129]
१५. रावण का अष्टापदगिरी उठाने का वर्णन [130]
१६. नारद वर्णन [131]
१७. सुमित्र-प्रभाव राजा वर्णन [132]
१८. रावण-मृत्यु कारण वर्णन [133]
१९. हनुमान - नामकरण-बाल्यावस्था वर्णन [134]
२०. पवनंजय द्वारा अंजना-खोज वर्णन [135]
२१. दशरथ-गुण वर्णन [136]
२२. दशरथ-विवाह वर्णन [137]
२३. भामंडल जन्म-बाल्यकाल वर्णन [138]
२४. म्लेच्छों द्वारा धर्मनाश का वर्णन [139]
२५. नारद सौंदर्य वर्णन [140]
२६. राम-लक्ष्मण का वज्रावर्त-अर्णवावर्त धनुभंग [142]
२७. वन में भरत-राज्याभिषेक वर्णन [143]
२८. लक्ष्मण को तीन सौ साठ कन्या देने का वर्णन [144]
२९. लक्ष्मण द्वारा म्लच्छों को हराने का वर्णन [145]
३०. कपिल ब्राह्मण द्वारा राम का तिरस्कार करने का वर्णन [146]
३१. लक्ष्मण का शत्रुदमन की शक्तियों के सहन करने का वर्णन [147]
३२. शंबूक द्वारा सूर्यहास खड्ग की साधना व उसकी मृत्यु वर्णन [148]
३३. रावण द्वारा सीताहरण वर्णन [149]
३४. लक्ष्मण द्वारा कोटिशिला उठाने का वर्णन [150]
३५. हनुमान का आकाश मार्ग से लंका गमन वर्णन [151]
३६. रावण पराक्रम वर्णन [152]
३७. राम द्वारा विभीषणादि को राज्य बाँटने का वर्णन [153]
३८. लवणांकुश जन्म एवं बाल्यकाल वर्णन [155]
३९. लवणांकुश के वंश का नारद द्वारा परिचय का वर्णन [156]
४०. लवणांकुश विवाह वर्णन [157]
४१. राममुनि की तपस्या का वर्णन [158]

६. सम्भोग - जल क्रीड़ा, उत्सव, आमोद-प्रमोदादि वर्णन :

१. तडित्केश का सुन्दरियों के साथ उपवन-क्रीड़ा वर्णन [159]
२. चित्रसुन्दरी का इंद्र से संभोग की इच्छा का वर्णन [160]
३. रत्नश्रवा कैकेसी विवाह वर्णन [161]

४. यक्ष स्त्री का रावण पर कामातुर होने का वर्णन [162]
५. रावण-मंदोदरी विवाह वर्णन [163]
६. छ: सहस्र कुमारियों के साथ रावण-केलि का वर्णन [164]
७. सुग्रीव-तारा विवाह वर्णन [165]
८. साहसगति का तारा से संभोग की इच्छा का वर्णन [166]
९. सहस्रांशु का रानियों के साथ जलकेलि वर्णन [167]
१०. रावण द्वारा स्वर्णाचल पर उत्सव वर्णन [168]
११. उपरंबा का रावण के साथ कामक्रीड़ा की इच्छा का वर्णन [169]
१२. पवनंजय-अंजना विवाह वर्णन [170]
१३. पवनंजय-अंजना कामक्रीड़ा वर्णन [170]
१४. पवनंजय-अंजना पुनर्मिलन उत्सव वर्णन [171]
१५. बज्रबाहु-मनोरमा-विवाह वर्णन [172]
१६. दशरथ का रानियों के साथ क्रीड़ा वर्णन [173]
१७. राम जन्मोत्सव वर्णन [174]
१८. राम-सीता विवाह महोत्सव वर्णन [175]
१९. कामलता विधुदंग समागम-वर्णन [176]
२०. वज्रकर्ण के देश को सिंहोदर द्वारा उजाड़ने का वर्णन [178]
२१. मधु व जयंति का क्रीड़ा वर्णन [179]

७. युद्ध, सेना, यात्रा, उपद्रव आदि वर्णन :

१. विजयसिंह-किष्किंधि युद्ध वर्णन [179]
२. अशनिवेश-किष्किंधि युद्ध वर्णन [180]
३. मेरुगिरि पर किष्किंधि का यात्रा वर्णन [181]
४. इन्द्र-माली युद्ध वर्णन [182]
५. अनादृत देव का रावण पर उपसर्ग वर्णन [183]
६. अमरसुंदर-रावण युद्ध वर्णन [184]
७. दशमुख-वैश्रवण युद्ध वर्णन [185]
८. यम-सूर्यरजा-ऋक्षरजा युद्ध वर्णन [186]
९. रावण-यम युद्ध वर्णन [187]
१०. खर का चंद्रणखा हरण वर्णन [188]
११. बालि-रावण युद्ध वर्णन [189]
१२. रावण-सहस्रांशु युद्ध वर्णन [190]
१३. रावण-इन्द्र युद्ध वर्णन [191]
१४. रावण-वरुण युद्ध वर्णन [192]
१५. हनुमान-वरुण युद्ध वर्णन [193]
१६. सिंहिका-युद्ध व विजय वर्णन [194]

१७. सौदास-सिंहरथ युद्ध वर्णन [195]
१८. राम-म्लेच्छ युद्ध वर्णन [196]
१९. राम-अतीवीर्य युद्ध वर्णन [197]
२०. लक्ष्मण-खर-त्रिसिरा युद्ध वर्णन [198]
२१. विराध-सुंद युद्ध वर्णन [199]
२२. सत्य सुग्रीव-कपटी सुग्रीव युद्ध वर्णन [200]
२३. भूत-प्रेतादि वर्णन [201]
२४. हनुमान-महेन्द्र युद्ध वर्णन [202]
२५. हनुमान-लंकासुन्दरी युद्ध वर्णन [203]
२६. हनुमान का देवरमण उजाड़ने का वर्णन [204]
२७. राम-सैन्य का लंका प्रस्थान वर्णन [205]
२८. रावण-सैन्य वर्णन [206]
२९. राम-सैन्य वर्णन [207]
३०. युद्ध वर्णन [208]
३१. राम-रावण युद्ध वर्णन [209]
३२. लक्ष्मण-रावण युद्ध वर्णन [210]
३३. शत्रुघ्न-मधु युद्ध वर्णन [211]
३४. राम, लक्ष्मण-लवणांकुश युद्ध वर्णन [212]

८. विरह-विलाप वर्णन :

१. साहसगति वियोग वर्णन [213]
२. सुमित्रा वियोग वर्णन [214]
३. उपरंभा-विरह वर्णन [215]
४. अंजना-विरह वर्णन [216]
५. पवनंजय का आत्मदाह निर्णय वर्णन [217]
६. अंजना-विलाप वर्णन [218]
७. पवनंजय का आत्मदाह निर्णय वर्णन [219]
८. कौशल्यादि रानियों का विरह वर्णन [220]
९. वनमाला वियोग वर्णन [221]
१०. सीता विरह वर्णन [222]
११. राम विलाप वर्णन [223]
१२. मंदोदरी, चंद्रणखादि का विलाप वर्णन [224]
१३. राम विरह वर्णन [225]
१४. सीता विलाप वर्णन [226]
१५. रावण विरह वर्णन [227]
१६. विभीषण विलाप वर्णन [228]

१७. अंत:पुर की रानियों का विलाप वर्णन [229]
१८. राम-विरह विलाप वर्णन [230]

९. अन्य वर्णन :

१. पशुवध निषेध वर्णन [231]
२. सत्य महिमा वर्णन [232]
३. कु-आचरण हेतु उपदेश वर्णन [233]
४. सिंह द्वारा मुनि भक्षण वर्णन [234]
५. वृद्धावस्था वर्णन [235]
६. जटायु-वर्णन [236]
७. सैन्य दुर्गों का वर्णन [237]
८. नरक की यातनाओं का वर्णन [238]

इन वर्णन सूचियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित, पर्व ७ विभिन्न वर्णनों से युक्त चरितकाव्य है। इस सूची के अतिरिक्त भी अनेक संक्षिप्त वर्णन कृति में समाहित हैं परंतु उनका महत्व न होने के कारण उन्हें सूची में नहीं लिया गया है।

अस्तु, जैन रामायण के वर्णन अलंकारिक, रसयुक्त, स्वाभाविकता युक्त, अवसरानुकूल एवं वर्णन कौशल के मानदंडों पर खरे उतरने वाले हैं। अधिक स्पष्टता के लिए हम हेमचंद्र के कुछ वर्णनों के उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं :

प्रकृति वर्णन : प्रकृति के वर्णन चारुतायुक्त बन पड़े हैं। सूर्यास्त, चंद्रोदय रात्रि, तारागण आदि का वर्णन इस प्रकार किया गया है— ''गगनरुपी अरण्य में परिभ्रमण के श्रम से स्नान की इच्छा वाला सूर्य उस समय पश्चिम-समुद्र में डूब गया। पश्चिम दिशा को भोगकर जाते हुए सूर्य से संध्या के बादल मानों पश्चिम दिशा के वस्त्रों को छल से दूर कर रहे थे। अरुण मेघ परंपरा पश्चिम दिशा को भोगेगा ऐसे अपमान से युक्त पूर्व दिशा का मुख म्लान हो गया था। क्रीडास्थल का त्याग करने से जो पीड़ा हुई वह पक्षियों के क्रन्दन से स्पष्ट हो रही थी। रजस्वला स्त्री की भांति चक्रवाकी अपने पति से अलग हो रही थी। पतिव्रता की भांति सूर्य रुपी पति अस्त होने पर कमलिनी उच्च प्रकार से मुख संकोच कर रही थी। गायें वन से पुन: घर की ओर आ रही थीं। राजा जैसे युवराज को राज्य संपत्ति देता है वैसे ही अस्त होते सूर्य ने अपना तेज अग्नि को सौंप दिया।

नगर स्त्रियों ने आकाश के नक्षत्रों की शोभा को चुराने वाले दीपकों को प्रकट किया। अंधकार इस प्रकार बढ़ने लगा जैसे अंजनगिरी के चूर्ण से, काजलयुक्त पात्र की तरह भूमि व आकाशरुपी पात्र अंधकार पूर्ण हो गया हो। उस समय अपना हाथ भी दीखता नहीं था। श्यामाकाश में तारे चोपट-कोडियों की तरह दीख रहे थे। स्पष्ट नक्षत्र वाला काजल जैसा श्याम गगन,

कमलयुक्त कालिंदी के तालाब के समान बन गया था। उस समय समग्र विश्व विना प्रकाश के पाताल जैसा हो गया था। अंधकार से सघन होने पर कामीजनों से मिलने के लिये दूतियाँ तालाब की मछलियाँ की तरह निश्शंक चेष्टाएँ करने लगी। जानुपर्यन्त धारण किए हुए झांझर वाली, तमाल वृक्ष-से श्याम वर्ण वाली, कस्तूरी युक्त देहवाली अभिसारिकाएँ घूमने लगी।

अब उदयगिरी-रुप प्रसाद पर सुवर्ण कलश की उपमा युक्त, किरणों-रुप अंकुश के लिये महाकंद सम चंद्र उदिय हुए। विशाल गोकुल के समान नभस्तल में गायों के साथ महावृषभ की तरह तारों के साथ चंद्र-वैरयुक्त क्रीड़ा कर रहा था। कस्तूरी के आधार रुपा के पात्र समान स्फुरमान चिह्न वाला चंद्रमा स्पष्ट रुप से प्रकाशित हुआ। कामदेव के बाणों के समान चंद्रकिरणें विरही-जनों के द्वारा बीच में पकड़े हाथ छुड़ाते हुए फैलने लगीं। चिरकाल तक भोगने पर भी दुर्दशा को प्राप्त पद्मिनी को छोड़ भ्रमर कुमुदिनी को प्यार करने लगे। चंद्रकांत मणियों की वर्षा करता हुआ, नवीन सरोवरों की रचना करता हुआ चंद्रमा आत्मीयजनों को ख्याति युक्त बना रहा था। दिशाओं के मुख को स्वच्छ करने वाली ज्योत्स्ना पद्मिनियों की तरफ उच्च प्रकार से भटकती कुलटाओं के मुख को म्लान बना रही थी।[239]

सौंदर्य वर्णन : जैन रामायण में सौंदर्य वर्णनों की कमी नहीं। अनेक स्थल दर्शनीय हैं। सीता-सौंदर्य वर्णन अत्यंत उत्कृष्टतायुक्त प्रतीत होता हैं। कुछ अंश दिखिए—

उसके बाद दिव्य अलंकार धारण किए हुए, पृथ्वी पर चलने वाली, देवी के समान, सखियों से घिरी हुई सीता वहाँ आई। वहाँ धनुष-पूजा कर व राम को मन में रखकर मानवों की आँखों के लिए अमृत सरिता-समान सीता वहाँ खड़ी रही।[240]

"और सीता रुप व लावण्य की संपदा के साथ बढ़ने लगी। चंद्ररेखा के समान धीरे-धीरे वह कलाओं में पूर्ण हुई। धीरे-धीरे युवावस्था को प्राप्त, कमल जैसी पवित्र आँखों वाली, लावण्य की लहरों की नदी-जैसी समुद्र कन्या लक्ष्मी जैसी दिख रही थी।"[241]

सीता रुप एवं लावण्य के वैभव से पूर्ण स्त्रियों की सीमा रुप हैं वह देवी नहीं, नागकन्या नहीं, मनुष्य भी नहीं, कोई अन्य ही है। जिसने समस्त देव-दानव की स्त्रीजनों को दासी रुप किए हैं। ऐसा उसका रुप तीनों लोकों में अप्रतिम व वाणी से अगोचर है।[242]

नारद ने भी इस प्रकार कहा— वह सीता मिथिलानगर के जनक की पुत्री है जो मेरे द्वारा चित्र में बताई गई है। रुप से वह जैसी है वैसी चित्रित करने मैं असमर्थ हूँ। दूसरा भी कोई नहीं कर सकता। आकृति से वह लोकोत्तर ही है। सीता जैसा रुप देवियों का भी नहीं है, भवनपति देवियों का

भी नहीं है, गंधर्वनारियों का उसका रुप है वैसा देव चित्रित नहीं कर सकते, पुरुष अनुकरण नहीं कर सकते एवं स्वयं ब्रह्मा बना नहीं सकते।

युद्ध वर्णन : जैन रामायण में लगभग पचास युद्धों का वर्णन है उनमें से कुछ वर्णन अति विस्तारयुक्त हैं। इनके युद्ध वर्णनों से पाठक सहज की कवि की वर्णन कुशलता का परिचय प्राप्त कर लेते हैं। युद्ध वर्णनों की सूची हम पीछे दे चुके हैं। यहाँ लक्ष्मण-रावण युद्ध का लघु अंश प्रस्तुत हैं—

राम, रावण के अति उग्र सैनिकों की भुजाओं के प्रहारों से त्रासयुक्त दिग्गजों युक्त युद्ध पुनः प्रारंभ हुआ। रुई को जैसे हवा दूर कर देती है वैसे ही समस्त राक्षसों को दूर करते हुए लक्ष्मण बाणों से रावण को परेशान करने लगा। लक्ष्मण के पराक्रम से भयभीत रावण ने विश्वभयरुपा बहुरूपी विद्या का स्मरण किया। स्मरण मात्र से विद्या वहाँ उपस्थित हो गई जिसकी सहायता से रावण ने अनेक रुप पैदा किए। उस समय लक्ष्मण ने पृथ्वी पर, आकाश पर, आगे-पीछे एवं दाएँ-बाएँ भी विविध शस्त्रों से युक्त रावण के रूप देखे तब लक्ष्मण भी गरुड़ रुपी लक्ष्मण बनकर अनेक बाणों से रावण को मारने लगे। लक्ष्मण के बाणों से व्याकुल हुए रावण ने अर्द्ध चक्रित्व से चिह्न रुप जाज्वल्यमान चक्र का स्मरण किया। रोष युक्त लाल नेत्रों वाले इस रावण ने अंतिम शस्त्र रुप उस चक्र को गगन में घुमाकर लक्ष्मण पर फेंका परंतु वह चक्र उदायाचल के शिखर पर सूर्य की तरह प्रदक्षिणा करके लक्ष्मण के दाहिने हाथ में स्थिर हो गया।

खिन्न हुआ रावण विचार करने लगा, मुनि का वचन सत्य हुआ, विभीषणादि के विचार भी सत्य होंगे। भाई को निराश जान कर विभीषण पुनः कहने लगा — "हे भाई, अगर तुम्हें जीने की इच्छा हो तो अभी सीता को छोड़ दो।" क्रोधयुक्त रावण बोला— क्या मेरे पास केवल चक्र ही अस्त्र है। चक्ररहित होने पर भी मैं इस शत्रु लक्ष्मण को केवल मुट्ठियों के प्रहार से ही मार दूँगा।"

इस प्रकार अभिमान युक्त बोलते हुए राक्षसपति रावण की छाती लक्ष्मण ने उसी चक्र से फाड़ डाली।

इस प्रकार हेमचंद्र ने अवसरानुकूल विविध वर्णन प्रस्तुत किये हैं। ऋतु वर्णन सूक्ष्म व संक्षिप्त रहे हैं। सौंदर्य वर्णन में सीता के अंगों का वर्णन कर मर्यादा का अंकुश कुछ ढीला रहा हैं। श्रृंगार वर्णन विस्तृत एवं पार्थिवतायुक्त हैं। युद्ध वर्णन अधिक ठोस प्रतीत होते हैं। [762] जो बिंबोत्पादकता पूर्ण हैं। सारंशतः त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित पर्व ७ के वर्णन विस्तृत, चित्रात्मक एवं अलंकारिक हैं।

(५) भाषा : त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व ७ (जैन रामायण की भाषा) भाषा अभिव्यक्ति की प्राणशक्ति है। डॉ. भोलानाथ तिवारी भाषा की परिभाषा देते हुए लिखते हैं— "भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चरित मूलतः

प्राय: यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा समाज के लोग आपस में अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। अर्थात् अनुभूति की अभिव्यक्ति का प्रधान साधन है भाषा। बिना अर्थ के शब्द का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता। इस हेतु शब्द व अर्थ का नित्य संबंध आवश्यक है। नादसौंदर्य एवं अवसरानुकूलता काव्यभाषा का अनिवार्य अंग है। आगे के पृष्ठों में हम आलोच्य कृति त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित की भाषा पर विचार कर रहे हैं। "जैन रामायण" नाम से लोकप्रसिद्ध ग्रंथ त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, (पर्व) ७ संस्कृत भाषा का काव्य ग्रंथ है। ग्रंथावलोकन से हेमचंद्र का भाषाधिकार सहज ही अनुमानित हो जाता है। डॉ. वि. भा. मुसलगाँवकर के अनुसार "त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित की भाषा सरल, सरस एवं ओजमयी है। आख्यान साहित्य में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें वर्णन की अधिकता है। वैदिक पुराणों के समान ही हेमचंद्र के पुराण में भी अतिशयोक्ति शैली का स्वच्छंदता से प्रयोग किया गया है। तीर्थंकरों के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करने में आचार्य सिद्धहस्त हैं।" [244] इसी प्रकार मधुसूदन मोदी ने अपने ग्रंथ हेमसमीक्षा मैं "आलोच्य कृति की भाषा पर विचार करते हुए लिखा है कि काव्य एवं शब्द शास्त्र की दृष्टि से तो इस काव्य की बात ही क्या कहें,। इसमें प्रसाद है, कल्पना है। शब्दों का माधुर्य है, सरलता एवं गौरव है। यह सब बताने के लिऐ उद्धरण कैसे दिए जाए। [245] इसी ग्रंथ की भाषा पर विचार करते हुए एक शोधकर्ता तो यहाँ तक लिखते हैं कि "यह ग्रंथ आदि से अंत तक पढ़ा जाए तो संस्कृत भाषा के संपूर्ण कोश का अभ्यास हो जाता है ऐसा इसका भाषा सौष्ठव है।" [246] कृति का भाषायी अन्वेषण करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इसकी भाषा भावानुकूल, समासशैली युक्त, नादसौंदर्य युक्त, चित्रात्मक, गतिशील, अंलकारिक एवं प्रसादगुण युक्त है। अधिक स्पष्टता के लिए हेमचंद्र की कतिपय भाषा-विशेषताओं का सोदारहण संक्षिप्त विवेचन दिया जा रहा है। हेमचंद्र की भाषा की प्रथम विशेषता उसकी भावानुकूलता है। कहीं-कहीं वस्तुगत वर्णनों में भाषा समस्त रही है तो लघु प्रसंगों यथा-विरह-विलाप, संवाद, उपदेश आदि में भाषा व्यस्त रही है। अलंकारों से बेझिल भाषा कहीं- कहीं गुम्फित हो गई है तो साधारण कार्यकलापों की भाषा समास रहित। कई स्थानों पर श्लोक के संपूर्ण पाद एक शब्द के रुप में सामने आए हैं। यथा

त्वमुपात्तपरिव्रज्योऽन्येद्युर्वारासीमगा:।
दृष्टोऽनेनापशकुनमित्याहत्य निपातित:।
दंतादंतिप्रवृते मैरुत्स्फुलिङ्गेगकृताम्बर :।
कुन्ताकुन्तिमिलत्सादी शराशरिमिलद्रथी॥
सिंहद्वियाश्वमहिषवराहवृषमा दिभि: ॥' [247]

इस प्रकार कृति में आए अनेक उदाहरण हेमचंद्र की समास शैली के साक्ष्य हैं। अलंकारिक एवं संश्लिष्ट वर्णनों में भी हेमचंद्र ने इस समस्त भाषा का खुलकर प्रयोग किया है। समस्त भाषा का प्रयोग कर हेमचंद्र दंडी, बाण, सुबन्ध, रविणेश आदि की परंपरा में आ खड़े हुए हैं।''

दूसरी तरफ इसी कृति में समास रहित छोटे-छोटे वाक्यांश भी मिलते हैं। हेमचंद्र रससिद्ध कवि थे। रस व्यंजना के अंतर्गत हम इनकी रसाभिव्यक्ति पर दृष्टिपात कर चुके हैं। इसी रसाभिव्यंजना के लिए कवि का मोह सरल वाक्यों एवं सरल भाषा के प्रति रहा है। भाषा की सरलता निम्न उदारहण द्वारा आंकी जा सकती है—

मया भ्रान्त्वाखिलां पृथ्वीं सम्यऽमार्गयतापि हि।
न सासा मंदभाग्येन रत्नं रत्नाकरे यथा ॥
तदर्द्ध स्वां तनुमिमां जुहोम्यत्र हुताशने।
जीवतो मे यावज्जीवं दु:सहो विरहनल: ॥
यदि पश्यथ में कान्तां ज्ञापयध्वं तदाह्यद:।
त्वद्वियोगात्तव पति: प्रविवेश हुतांशने ॥
इत्युक्त्वा तत्र चित्यायां दीप्यमाने हविर्भुजि।
झंपां प्रदातुं पवन: प्रोत्पपात नमस्तले।[248]

हेमचंद्र की भाषा कहीं कहीं कृत्रिमता की शिकार भी हुई है। कुछ अवसर ऐसे भी आए हैं जहाँ कवि ने स्वाभाविकता से वैराग्य प्राप्त कर बनावटी-पन को गले लगाया है। निम्न उदारहण में जहाँ कवि ने (तड़तड़िति, झलज्झलिति, खड़त्खड़िति एवं कड़त्कड़िति) शब्दों द्वारा ध्वन्यात्मकता पैदा की है वहीं भाषा कृत्रिमातापूर्ण भी हो गई है—

तडत्तडितिनिर्धोषं चित्रस्तव्यन्तरामरम्।
झलज्झलितिलोलब्धिपूर्यमाणरसातलमू ॥
कडत्कडिति निर्मग्नं नितम्बोपवनहुमम् ॥[249]

हेमचंद्र की भाषा में जहाँ रौद्र या भयानक रस उत्पन्न हुआ है उस स्थल पर कठोर वर्गो का प्रयोग हुआ है। यथा-रावण के द्वारा क्रोधित किए हुए भयंकर रुप वाले, उछलते हुए, दुष्ट चेष्टाओं वाले, यम के मंत्रियों जैसे भयंकर चीत्कार करने वाले पक्षियों जैसे, फुफकार करते सियारों, विचित्र आक्रंद करते हुए जानवरों, लड़ते हुए वन बिलावों, पूँछ पछाड़ते हुए बाघों, फुफकार करते साँप, तलवार खींचते हुए पिशाच, प्रेत, बेताल एवं भूत सीता के पास जाने लगे।

यहां भाषा ने भावों का अनुकरण किया है—

धूत्कारिणो महाधूका: फेत्कुर्वाणाश्च फैख:।
वृका विचित्रं क्रन्दन्त ओतवोऽन्योन्ययोधिन:।

पुच्छाच्छोट कृतो व्याघ्राः फुत्कुर्वाणाः फणाभृतः ॥
पिशाचप्रेतवेताल लभूताश्चाकृष्टकर्त्रिका ॥ [250]

कृति की भाषा में समयानुसार नादसौंदर्यानुभूति के लिए कवि ने अनुरणात्मक शब्दों का प्रयोग किया है जिससे भाषा को विशिष्टता प्राप्त हुई है। रावण की सेना का वर्णन करते हुए हेमचंद्र के इस गुण का ज्ञान सहज होता है—

शार्दूलकेतवः केचित्केचिच्छरभकेतवः ॥
चमूरुकेतत्वः कैचित्केचित्करतिकेतवः।
मयुरकेतवः केचित्केचित्पन्नगकेतवः।
मार्जाचरकेतवः केचित्केचित्कुक्कुटकेतवः ॥
कोदण्डपाणयः केचित्केचिन्निस्त्रंपपाणयः ॥
भुशुण्डीपाणयः केचित्केचिद्मुद्गरपाणयः ॥
त्रिशूलपाणयः केचित्केचित्परिघपाणयः।
कुठारपाणयः केचित्केचिच्च पाशपाणयः ॥ [251]

नादसौंदर्य हेमचंद्र की भाषा का मुख्य गुण होने से ऐसे उदारहण कृति में भरे पड़े हैं। अनेक श्लोक ऐसे हैं जिन्हें पढ़ते हुए पाठकों का हृदय तरंगित हो जाता है। यथा—

सदपि जय जयेति व्याहरद्भिर्धुसद्भिर्व्यरचि
कुसुमवृष्टिर्लक्ष्मणस्योपरिष्टात्।
समजनि च कपीनां ताण्डवं चण्डहर्षोत्थित
किलकिलनादापूर्णरोदोनिकुंजम्। [252]

जैन रामायणकार ने यत्र-तत्र भावानुकूल सूक्तियों का भी प्रयोग किया है। अधिकतर सूक्तियां संस्कृत की पूर्व परंपरा से ग्रहण की गई हैं। [253] सूक्तियों की भाषा प्रसादगुणयुक्त एवं सरल है। यथा—

क जिते नाथे जिता एवं पदातयः। (त्रिशपुच- पर्व ७-२/६२०)
ख पुत्रार्थे क्रियते न किम्। (वही-२/४३०)
ग प्राप्तोदयं हि तरणिं तिराधातुं क इश्वरः (वही-४/३६)
घ शोको हर्षश्च संसारे नरमायति याति च। (वही-४/२५३)
ड़ सतां संगो हि पुण्यतः। (वही-६/९७)

हेमचंद्र की भाषा का एक मुख्य गुण और है— उसकी अलंकारिकता। भाषा की अलंकारिकता हेतु हम "अलंकार-विधान" शीर्षकान्तर्गत पृथक विवेचना कर चुके हैं।

सारांशतः त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व ७ जैन रामायण की भाषा प्रांजल, परिमार्जित, अलंकृत, नादसौंदर्ययुक्त, अनुरणात्मक, समस्त एवं व्यस्तता मिश्रित एवं सरल है। हाँ, भाषा में कही-कहीं कृत्रिमता के पुट को हम नकार नहीं सकते।

(६) **संवाद** : त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व ७ (जैन रामायण) एक पौराणिक काव्य है। पौराणिक काव्यों की विशेषता रही है उनकी वक्ता-श्रोता की योजना। संवादों को दो भागों में बाँटा जा सकता है— १. शृंखलाबद्ध संवाद एवं २. उन्मुक्त संवाद। मुख्य कथा शृंखलाबद्ध संवाद के अंतर्गत चलती है एवं बीच-बीच में उन्मुक्त संवाद भी चलते रहते हैं। पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप का उद्देश्य कथानक को गति प्रदान करते हुए, पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं का उद्घाटन करना एवं काव्य में नाटकीयता उत्पन्न करना होता है। इस हेतु संवादों का संक्षिप्त, सारगर्भित एवं रोचक होना आवश्यक है। चारित्रिक अंतर्द्वंद्व को व्यंजित करने वाले संवाद श्रेष्ठ संवादों की श्रेणी में आते हैं। संवादों के परीक्षणार्थ उनकी अवसरानुकूलता, गत्यात्मकता, प्रभावशीलता, व्यावहारिकतां स्वाभाविकता, एवं व्यंजनाशीलता पर दृष्टि डालेंगे।

जैन रामायण में हेमचंद्र ने अनेक संवादों को स्थान दिया है। कृति के संवादों में स्वाभाविकता परिलक्षित होती है। कुछ संवाद संक्षिप्त तो कुछ विस्तारयुक्त भी है। जहाँ-जहाँ मुनि पूर्वभव वृत्तांतादि सुनाने लगे हैं वहाँ संवाद विस्तारयुक्त हो गए हैं। ये सभी संवाद उन्मुक्त संवादों की श्रेणी में आते हैं। जैन रामायण के संवादों को हम निम्न प्रकार से सूची-बद्ध कर प्रस्तुत कर सकते हैं—

१. कीर्तिधवल-श्रीकंठ संवाद [259]
२. ताडित्केश-अब्धिकुमार संवाद [260]
३. रत्नश्रवा-विद्याधर कुमारी संवाद [261]
४. रत्नश्रवा-कैकेसीसंवाद [262]
५. रावण-कैकेसीसंवाद [263]
६. विभीषण-कैकेसीसंवाद [264]
७. अनादृत-यक्ष-दशमुखादि संवाद [264]
८. रत्नश्रवा-दशमुख संवाद [265]
९. पवनवेग-रावण संवाद [266]
१०. यम-इन्द्र संवाद [267]
११. रावणदूत-बालि संवाद [268]
१२. बालि-रावण संवाद [269]
१३. धरण-रावण संवाद [270]
१४. रावण-विद्याधर संवाद [271]
१५. रावण-शतबाहु मुनि संवाद [272]
१६. नारद-रावण संवाद [273]
१७. रावण-मरुत् संवाद [274]
१८. नारद-मरुत् संवाद [275]

१९. मधु-अमरेन्द्र संवाद [275]
२०. उपरंभा-दूती-रावण संवाद [276]
२१. विभीषण-रावण संवाद [277]
२२. रावण-उपरंभा संवाद [278]
२३. सहस्त्रहार-इन्द्र संवाद [279]
२४. रावण-दूत-इन्द्र संवाद [280]
२५. सहस्त्रहार-रावण संवाद [281]
२६. इन्द्र-मुनि संवाद [282]
२७. महेन्द्र-मंत्री संवाद [285]
२८. प्रह्लाद-महेन्द्र संवाद [286]
२९. पवनंजय-प्रहसित संवाद [287]
३०. वसंततिलका-अंजना संवाद [288]
३१. रावण दूत-प्रह्लाद संवाद [289]
३२. अंजना-वसंततिलिका-पवनंजय संवाद [290]
३३. केतुमति-अंजना संवाद [291]
३४. महोत्सवाह-महेन्द्र संवाद [292]
३५. वसंततिलका-चारणमुनि संवाद [293]
३६. पवनंजय-नागरी संवाद [294]
३७. पवनंजय-प्रहलाद संवाद [295]
३८. कुमार-उदयसुन्दर संवाद [296]
३९. उदयसुन्दर-वज्रबाहु संवाद [297]
४०. सुकोशल-रानी संवाद [298]
४१. महामुनि-सौदास संवाद [299]
४२. दशरथ-कैकेयी संवाद [300]
४३. जनकदूत-दशरथ संवाद [301]
४४. चन्द्रगति-भामंडल संवाद [302]
४५. चंद्रगति-जनक संवाद [303]
४६. दशरथ - कैकेयी - कंचुकी संवाद [304]
४७. सत्यभूति मुनि-दशरथ संवाद [305]
४८. दशरथ-राम-भरत संवाद [306]
४९. राम-अपराजिता संवाद [307]
५०. सीता-अपराजिता संवाद [308]
५१. लक्ष्मण-सुमित्रा संवाद [309]
५२. दशरथ-भरत-कैकेयी संवाद [310]
५३. भरत-राम-कैकेयी संवाद [311]

५४. वज्रकर्ण-एक पुरुष संवाद [312]
५५. लक्ष्मण-सिंहोदर संवाद [313]
५६. वज्रकर्ण-राम संवाद [314]
५७. कुबेरपति-राम संवाद [315]
५८. राम म्लेच्छाधिपति संवाद [316]
५९. लक्ष्मण-कपिल ब्राह्मण संवाद [317]
६०. लक्ष्मण-वनमाला संवाद [318]
६१. महीधर-लक्ष्मण संवाद [319]
६२. राम-लक्ष्मण-अतिवीर्यदूत संवाद [320]
६३. राम-कुलभूषण मुनि संवाद [322]
६४. राम-चंद्रणखा संवाद [323]
६५. चंद्रणखा-रावण संवाद [324]
६६. रावण-सीता संवाद [325]
६७. राम-लक्ष्मण संवाद [326]
६८. विराध-लक्ष्मण संवाद [327]
६९. लक्ष्मण - खर संवाद [328]
७०. दूत-विराध संवाद [329]
७१. सुग्रीव-राम संवाद [330]
७२. मंदोदरी-रावण संवाद [331]
७३. विभीषण-सीता संवाद [332]
७४. रावण-मंत्री संवाद [333]
७५. सुग्रीव-हनुमान-राम संवाद [334]
७६. हनुमान-महेन्द्र संवाद [335]
७७. हनुमान-विभीषण संवाद [336]
७८. त्रिजटा-रावण-मंदोदरी संवाद [337]
७९. हनुमान-सीता संवाद [338]
८०. रावण-हनुमान संवाद [339]
८१. इन्द्रजीत-विभीषण संवाद [340]
८२. भामंडल-विद्याधर संवाद [341]
८३. रावण-मंत्रीगण संवाद [342]
८४. सामंत-राम संवाद [343]
८५. राम-विभीषण संवाद [344]
८६. नारद-अपराजिता संवाद [345]
८७. अपराजिता-लक्ष्मण संवाद [346]
८८. राम-भरत संवाद [347]

८९. राम-शत्रुघ्न संवाद [348]
९०. राम-देशभूषण मुनि संवाद [349]
९१. शत्रुघ्न-सप्तर्षि संवाद [350]
९२. राम-सीता संवाद [351]
९३. विजय-राम संवाद [352]
९४. कृतांतवदन-सीता संवाद [353]
९५. सैनिक-सीता संवाद [354]
९६. कृतांतवदन-राम संवाद [355]
९७. नारद-अंकुश संवाद [356]
९८. भामंडल-लवणांकुश संवाद [357]
९९. नारद-राम-लक्ष्मण संवाद [357]
१००. जयभूषण-राम संवाद [358]
१०१. जयभूषण-विभीषण संवाद [359]
१०२. जटायुदेव-राम संवाद [360]
१०३. सीतेन्द्र राम मुनि संवाद [361]
१०४. वज्रसंघ-नारद संवाद [362]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हेमचंद्र ने जैन रामायण में संवाद के महत्व को स्वीकार किया है। विवेचित संवादों में कुछ तो साधारण महत्व के है। कुछ संवादों के माध्यम से भावी कथा का संकेत किया है। कथा को गति देने के लिये बीच-बीच में ''एक स्त्री'',[362] कोई पुरुष,[364] आदि अनाम पात्रों को साथ लेकर संवाद शृंखला को आगे बढ़ाया है। संवादों मे कवि का जैन धर्म के प्रति विशेष पूर्वाग्रह लक्षित होता है। यह पूर्वाग्रह इतर पाठकों को आकर्षित नहीं करता। उदाहरणार्थ हम यहाँ रावण-सीता-मंदोदरी संवाद का अंश प्रस्तुत कर रहे हैं—

मंदोदरी : हे सीता। तू धन्य है क्योंकि विश्वपूजित चरणकमलवाला मेरा महाबलवान पति तुझे चाहता है। अब भी अगर तुझे रावण प्राप्त हो तो पृथ्वी पर भ्रमण करने वाले रंक पति क्या हैं।

सीता (सक्रोध) : कहां सिंह और कहाँ सियार। कहाँ गरुड़ और कहाँ कौआ। कहाँ राम और कहाँ तेरा पति रावण। तेरा और रावण का दाम्पत्य योग्य है क्योंकि रावण स्त्रियों में रमण करने वाला और तू उसी का कार्य करने वाली है। बात करना तो दूर रहा, तू देखने योग्य भी नहीं है। मेरी आँखों से दूर हो, जा, जा।

रावण : अरे सीते! तू क्यों क्रोधित हो रही है। मंदोदरी तेरी दासी है। मैं स्वयं तेरा सेवक हूँ। हे देवी! मुझ पर कृपा करो। हे सीते! मुझको दृष्टि से भी प्रसन्न क्यों नहीं कर रही हो।

सीता : मुझे, राम की पत्नी को हरण करने वाला तू यमराज की दृष्टि से देखा गया है। अरे, नष्ट आशा वाले, तेरी आशा को धिक्कार है। लक्ष्मण सहित राम के शत्रुओं के नाश करने पर तू जिन्दा नहीं रह सकेगा। [365]

इन संवादों की लम्बी सूची से स्वत: स्पष्ट है कि जैन रामायण में अवान्तर कथाओं की भरमार होने से संवाद योजना विस्तृत एवं तात्विक दृष्टि से खरी उतरती है। अत: संवाद मनौवैज्ञानिक कम हैं परंतु कथ्यात्मक अधिक लगते हैं।

(६) काव्य रुप :

महाकाव्यत्व : साहित्य शास्त्र में काव्य के अनेक भेद मिलते हैं। ''जहाँ तक पद्य साहित्य का संबंध है, प्रबंधकर्ता के आधार पर उसके दो भेद किए जाते हैं— प्रबंधकाव्य एवं मुक्तककाव्य। प्रबंधकाव्य के पुन: तीन उपभेद किए जाते हैं-- महाकाव्य, खण्डकाव्य और एकार्थकाव्य! [366] भारतीय काव्यशास्त्रीय परंपरा में काव्यरुपों पर क्रमश: भामह, दण्डी, वामन, रुद्रट, विश्वनाथ आदि ने अपने अपने ग्रंथों में विवेचन किया है। समय-समय पर साहित्याचार्यों द्वारा निर्धारित महाकाव्य के लक्षणों का अध्ययन करने से ज्ञात है कि—

१. महाकाव्य सर्गबद्ध हो। सर्ग आठ से अधिक हों। आकार सामान्य हो। प्रारंभ प्रणाम, आशीर्वचन एवं विषय निर्देश सहित हो। सर्गान्त में अगले सर्ग की सूचना समाहित हो।
२. प्रत्येक सर्ग में एक ही छंद प्रयुक्त हो परंतु अंतिम छंद भिन्न हो। एकाध सर्ग विभिन्न छंदों वाला भी हो सकता है।
३. महाकाव्य निर्माण में इतिहास-प्रसिद्ध घटना का संयोजन एवं कथावस्तु का विकास नाटकीय संधियों की सहायता से हो।
४. कोई देवता या महानगुणों से युक्त धीरोदात्त क्षत्रिय नायक हो।
५. शृंगार, वीर एवं शांत में से ही कोई अंगी-रस हो, अन्य रस सहायक हों।
६. महाकाव्य का उद्देश्य पुरुषार्थ चतुष्टय (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) में से एक हो।
७. संध्या, सूर्य, चंद्र, प्रभात, वन, नदी, निर्झरादि का सांगोपांग वर्णन हो।
८. कथानक या नायक के नामानुसार अथवा विशिष्ट आधार पर महाकाव्य का नामकरण हो।

महाकाव्य के लक्षणों की विवेचना करने वाले पाश्चात्य काव्य-शास्त्रियों में अरस्तू के बाद प्रमुखत: डब्ल्यु पी. कर, एबरक्रोम्बी, सी. एम. बाबरा, बाल्टेयर तथा मैकनील डिक्सन के नाम लिए जा सकते हैं। इनके अनुसार महाकाव्य में—

''महान उद्‌देश्य, महान प्रेरणा, महान काव्य प्रतिभा, सत्व, गंभीरता एवं काव्य प्रतिभा, महानकार्य, युग जीवन का समग्र चित्र, सुसंबद्ध जीवन

कथानक, महत्वपूर्ण नाटक, पात्रों की महान योजना, गरिमामय उदात्त शैली, तीव्र प्रतिभावान्विति, गंभीर रसयोजना, अनवरत जीवन शक्ति एवं सशक्त प्राणवत्ता हो।''

भारतीय एवं पाश्चात्य महाकाव्य के लक्षणों का सार इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है किं— महाकाव्य में महान उद्देश्य, महती प्रेरणा, महान नायक, जीवन्त कथानक, उदात्त शैली, गंभीर रस व्यजना तथा संपूर्ण योजना सशक्त एवं प्राणवान होनी चाहिए।

त्रिषष्टिशलाकापुरुचरित महाकाव्य तो है ही परंतु साथ ही यह चरितकाव्य भी है अत: हम चरितकाव्य के लक्षणों का संक्षिप्त विवेचन कर रहे हैं।

(६) पौराणिक चरितकाव्य : पौराणिक काव्य, काव्य का एक भेद है जिसकी जानकारी हिन्दी साहित्य कोश में निम्न प्रकार से मिलती है—

''महाकाव्य मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं[1] — १. साहित्यिक परंपरा में विकसित २. लोकमहाकाव्य। अलंकृत महाकाव्य की मुख्यत: ये शौलियां हैं— शास्त्रीय, रोमांसिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, तथा रूपक-कथात्मक, नाटकीय, प्रगीतात्मक, एवं मनोवैज्ञानिक। रामचरितमानस पौराणिक शैली का उदाहरण है।[367]''

पौराणिक शैली के महाकाव्यों की तरह पौराणिक शैली के चरितकाव्य भी माने गए हैं। शैली, उद्देश्य एवं विषयवस्तु की दृष्टि से चरितकाव्य को इस प्रकार वर्गीकृत किया गया है—

शैलीगत वर्गीकरण :

१. पौराणिक शैली के चरितकाव्य
२. ऐतिहासिक शैली के चरितकाव्य-पृथ्वीराज विजय, हम्मीर महाकाव्य आदि।
३. रोमांसिक शैली के चरित काव्य—नवसाहसांक चरित, जसहरचरिउँ आदि।

उद्देश्य व विषय वस्तु वर्गीकरण—

१. धार्मिक-पौराणिक २. प्रतीकात्मक ३. वीरगाथात्मक ४. प्रेमाख्यानक ५. प्रशस्तिमूलक ६. लोकगाथात्मक

''मानस'' धार्मिक-पौराणिक चरितकाव्य का उदाहरण है। प्रबंध काव्य का ही एक रूप है चरितकाव्य।[368] हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार चरित काव्य के निम्न लक्षण है—

१. इसकी शैली जीवन चरितात्मक होती है। नायक के जन्म से मृत्युपर्यन्त की कथा और उसके कई पूर्वभवों की कथा होती है। ये काव्य कथात्मक, कम प्रकृत्ति वर्णन युक्त, शास्त्रीय काव्यों की अपेक्षा स्वाभाविक सरल व लोकोन्मुख होने चाहिए। इसके प्रारंभिक वर्णन ऐतिहासिक होने चाहिए।

इसकी प्रेमकथा के अंतर्गत स्वप्नदर्शन, गुणश्रवण, चित्रदर्शन तथा प्रथम साक्षात्कार आदि वर्णित होते हैं। अनेक समस्याओं को पार कर नायक-नायिका का विवाह होता है। जैन चरितकाव्य का नायक अंत में जैनधर्म में दीक्षित हो जाता है।

३. इन काव्यों की वक्ता-श्रोता योजना के अनेक रूप हैं, यथा— १. धर्मगुरु व शिष्य, कथाविद् और भक्त, श्रावक व श्रोता; २. शुक-शुकी, शुक-सारिका, भृंग-भृंगी, अर्थात् वक्ता पक्षी व मानव श्रोता के बीच; ३. कवि व कविपत्नी या कवि व शिष्य।

४. चरितकाव्यों में ''साहसपूर्ण, आदर्शोत्पादक, रोमांचक एवं अलौकिक कार्यों व वस्तुओं का समावेश व कथानक रूढ़ियों की अधिकता रहती है।''

५. इन काव्यों का कथानक स्फीत, विश्रृंखल, गुँफित एवं जटिल होता है।

६. इनकी उदात्त शैली में सरलता, सादगी व सामान्य जनता के लिए आकर्षण होता है।

७. चरितकाव्य का उद्देश्य-प्रधान काव्य उपदेशात्मक, प्रचारात्मक या प्रशस्तिमूलक प्रतीत होना हैं।

पौराणिक शैली के चरितकाव्यों को महाकाव्य मानकर डॉ. रमाकांत शुक्ल ने अपना वर्गीकरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है। :

प्रबंध काव्य :

- (१) महाकाव्य
  - (क) चरितकाव्य
    - (१) पौराणिक
    - (२) ऐतिहासिक
    - (३) रोमांसिक
  - (ख) चरितेतर काव्य
- (२) खंड काव्य
  - (क) चरितकाव्य
  - (ख) चरितेतर काव्य

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् यह निर्णय सहज ही होता है कि त्रिषष्टिशलाकापुरुष, चरित महाकाव्य के अंतर्गत आने वाले पौराणिक चरितकाव्य का भेद है ।

संस्कृत-पौराणिक काव्य की विशेषताएँ :

संस्कृत के पौराणिक काव्य की विशेषताएँ संक्षेप में निम्न लिखित है—

१. इन काव्यों में धार्मिककता एवं काव्यात्मकता का सामंजस्य होता है। धर्म प्रचार की तीव्र भावना के साथ उच्च काव्यप्रतिभायुक्त इन काव्यों में वर्णन प्रचुरता, निपुणता-प्रकाशन तथा शास्त्रीय विचारधारा की काव्यात्मक अभिव्यंजना रहती है।

२. प्रारंभ प्राय: वक्ता व श्रोता से ही होता है।
३. प्रधान रस शांत, वीर, शृंगारादि अंगी रस अन्य। युद्धादि के बाद पात्रों में वैराग्य भावना की प्रचुरता मिलती है।
४. मुख्य आधिकारिक कथा के साथ सहायक कथाएँ भी निबद्ध रहती हैं। आधिकारिक कथा में किसी अवतार या तीर्थंकर का चरित्र निबद्ध।
५. अलौकिक, अप्राकृतिक व अतिमानवीय शक्तियों, कार्यों का समावेश।
६. स्वधर्म की प्रशंसा के साथ परधर्म से धृणा। सूक्तियों का बाहुल्य।
७. प्रधान छंद प्रमुखत: अनुष्टुप् ही होता है।
८. "अथ" और तत: शब्दों का प्राय: आधिक्य रहता है।
९. कथा-कथन के पूर्ण अनुक्रमणिका दी जाती है।
१०. काव्य के महात्म्य-कथन तथा अपने धर्म ग्रहण के प्रति श्रोता को बाँधने की प्रवृत्ति का इसमें स्पष्ट परिलक्षण होता है।
११. सृष्टि के विकास, विनाश, वंशोत्पत्ति एवं वंशावलियों का वर्णन होता है।
१२. अनेक स्तुतियों की योजना होती है।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित हेमचंद्राचार्यकृत संस्कृत का पौराणिक शैली का काव्य है। इस ग्रंथ में पौराणिक शैलीगत काव्य की निम्नांकित विशेषताएँ मिलती हैं—

१. जैन धर्म का प्रचार कवि का लक्ष्य होने से धार्मिकता व काव्यात्मकता का स्वत: समन्वय हो गया है। वर्णन की प्रचुरता व काव्याभिव्यंजना स्पष्ट है।
२. काव्य का प्रारंभ वक्ता-श्रोता योजना से नहीं हुआ है फिर भी बीच-बीच में गुरु-शिष्य संवाद, वक्ता-श्रोता योजना का ही लघु रूप है।
३. ग्रंथ का प्रधान रस शांत है। वीर एवं शृंगारादि सहायक रस सिद्ध हुए हैं।
४. आधिकारिक कथा के रूप में अवतार राम की कथा है, मध्य में तीर्थंकरों, चक्रवर्ती राजाओं आदि के उपाख्यान भी मौजूद हैं।
५. आलौकिक एवं अतिमानवीय कार्यों का समावेश सामान्य ही हुआ है।
६. जैन धर्म की प्रशंसा में कवि ने कोई कसर नहीं रखी है। अनेक स्थलों पर पर-धर्म निंदा की व्यंजना भी स्पष्ट है। संपूर्ण काव्य को उपदेशपरक कहा जा सकता है। सूक्तियों का बाहुल्य है।

७. ''अनुष्टुप्'' काव्य का प्रधान छंद हैं।
८. ''अथ'' एवं ''ततः'' शब्द भी अनेक पदों में देखनें को मिलते हैं।
९. वंशोत्पत्ति एवं वंशावलियों का भरपूर वर्णन किया गया है।
१०. काव्य में अनेक स्तुतियों की योजना समाहित है।

निष्कर्षतः वक्ता-श्रोता योजना, काव्य का महात्म्य कथन एवं कथा-कथन के पूर्व अनुक्रमणिका के अतिरिक्त पौराणिक शैली की समस्त विशेषताएँ त्रिषिष्टिशलाकापुरुषचरित में प्राप्त होने के कारण यह काव्य ''पौराणिक काव्य'' की श्रेणी में आता है।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित का चरितकाव्यत्व :

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित की शैली जीवनचरित शैली है। काव्य के प्रारंभ में प्रतिवासुदेव रावण के वंशजों के वर्णन हैं। अनेक पात्रों के पूर्वभव वृत्तांत आए हैं। प्रकृति वर्णन सामान्य ही आए हैं। काव्य में वीरता, धर्म एवं वैराग्य का समन्वय मिलता है। नायक राम अंत में विरक्त हो जैन मुनि बन जाते हैं। वक्ता-श्रोता की अल्प योजना भी नजर आती है। अनेक अलौकिक कार्यों को समाविष्ट किया गया है।

कृति का उद्देश्य जैन धर्म का प्रचार-प्रसार ही रहा है अतः इसे प्रचारात्मक ग्रंथ कहा जा सकता है।

चरितकाव्य की कसौटी पर त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित ग्रंथ खरा नहीं उतरता। प्रथमतः यह वर्णनात्मक है, इसे सरल-स्वाभाविक लोकोन्मुख काव्य नहीं कहा जा सकता। द्वितीय, इसमें वक्ता व श्रोता की योजना नहीं है। तृतीय, यह प्रेमकथा नहीं है। चतुर्थ, इस काव्य को गुंफित एवं जटिल नहीं कहा जा सकता तथा पंचम, इसकी शैली चमत्कारपूर्ण, अलंकृत व पाण्डित्य प्रदर्शन युक्त है जो चरितकाव्योचित नहीं है।

इस विवेचन से हम इस सारांश पर पहुँचते हैं कि त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित ''पौराणिक काव्य के लक्षणों से युक्त है परंतु इसे चरितकाव्यों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता जबकि विद्वानों ने इसकी गणना चरितकाव्यों में की है।''

त्रिषष्टिशलाकापुरुष का महाकाव्यत्व :

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित को केवल पौराणिक काव्य अथवा चरितकाव्य अथवा महाकाव्य कहने के स्थान पर ''पौराणकि चरित महाकाव्य'' कहना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता हैं एतदर्थ पौराणिक काव्य एवं चरितकाव्य के रूप में हम जैन रामायण के लक्षणों पर दृष्टि डाल चुके हैं। यहाँ हम त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित के महाकाव्यत्व पर विचार करेंगे।

महाकाव्य के भारतीय एवं पाश्चात्य लक्षणों की जानकारी हम पूर्व में दे चुके हैं। इन लक्षणों पर आलोच्य ग्रंथ कहाँ तक खरा उतरता है यह तथ्य परीक्षणीय है।

"त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित" सर्गबद्ध ग्रंथ है। यह तेरह सर्गयुक्त सामान्य आकार का ग्रंथ है। यह ग्रंथ संस्कृत के लगभग चार हजार श्लोक अपने में समेटे हुए है। काव्यारंभ में हेमचंद्र विषय निर्देश देते हुए लिखते हैं कि "अब मुनि सुब्रतस्वामी के काल में जन्मे हुए राम, लक्ष्मण और रावण (बलदेव, वासुदेव एवं प्रतिवासुदेव) का चरित कहा जा रहा है"।[369] सर्गान्त में परोक्ष रूप से अगली कथा की सूचना भी प्राप्त होती है। आलोच्य ग्रंथ का प्रमुख छंद है— अनुष्टुप्। सर्गान्त में छंद परिवर्तन होने पर कवि ने वसंततिलका, मालिनी, शार्दूलविक्रीड़ित एवं रथोद्धता छंदों का प्रयोग किया है।

रामकथा एतिहासिक घटना है जिसे हेमचंद्र ने अपनी कथा का आधार बनाया है। कथावस्तु का आधार नाटकीय संधियों से युक्त लगता है। "राम" को हेमचंद्र ने नायकत्व प्रदान किया है। कुछ विद्वानों के अनुसार लक्ष्मण नायक हैं। राम एवं लक्ष्मण दोनों ही धीरोदात्त, देवरूप एवं महान गुणों के भंडार हैं। वे क्षत्रीय हैं। काव्य में प्रधान रस शांत है। लगभग साठ हजार राजा-रानियों को जैन धर्म में दीक्षित कर हेमचंद्र ने शांत रस के परिपाक का कीर्तिमान स्थापित कर दिया है। युद्धादि में वीर रस की सुन्दर अभिव्यंजना हुई हैं। शृंगार, भक्ति, करुणादि रस भी इर्द-गिर्द कार्यरत रहे हैं। "धर्म के सोपानों पर आरोहण कर मोक्ष प्राप्त करना ही मानव मात्र का लक्ष्य हो" ऐसा महान उद्देश्य हेमचंद्र का रहा है जो पुरुषार्थ चतुष्टय में से ही एक है।

समयानुसार कवि ने संध्या, प्रभात, रात्रि, अरम्य, जलक्रीडादि का मनोहारी व आकर्षक वर्णन किया है। इस काव्य का सातवां पर्व "जैन रामायण" नाम से विख्यात है। संपूर्ण कृति में तिरसठ महापुरुषों के चरित्रों के सांगोपांग वर्णन है डॉ. रमाकांत शुक्ल लिखते हैं कि इन सभी महापुरुषों में भी "इसके (जैन रामायण के) नायक राम उदात्त (अन्यतम) हैं। काव्य का नामकरण कथानकानुसार उचित ही है। मंजुल अलंकार, दीर्घ कलेवर युक्त, प्रसिद्ध एवं ऐतिहासिक कथानक, वैभवशाली रस, व्यंजना आदि सभी लक्षण महाकाव्योचित हैं।"

पाश्चात्य महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार भी— आलोच्य ग्रंथ की काव्यप्रतिभा महान उद्देश्य एवं महत् प्रेरणा को नकारा नहीं जा सकता। स्वधर्म (जैन धर्म) का प्रचार कवि का प्रथम उद्देश्य रहा। धर्म ही शांतिस्थल है यह महान प्रेरणा दी गई है। जैन धर्म के परिप्रेक्ष्य में इसकी गुरुता, गंभीरता एवं महत्ता सर्वोपरि है। रावण, रूपी अनीति का नाश कर धर्म की पुनर्स्थापना करना महत् कार्य है।

आलोच्य कृति की भाषा, छंद, अलंकार, संवाद, रसादि सभी उत्कृष्टता युक्त हैं जिसका वर्णन हम पूर्व पृष्ठों में कर चुके हैं। विशेषकर रस योजना में तीव्र प्रभावान्विति एवं गंभीरता है। काव्य की विषयवस्तु में नवजीवन शक्ति एवं सशक्त प्राणवत्ता के सहज दर्शन होते हैं।

काव्यशास्त्री हेमचंद्र ने स्वयं की कृति काव्यानुशासन के अध्याय आठ के तेरह सूत्रों में प्रबंध काव्य-भेदों एवं काव्य-लक्षणों पर लेखनी चलाई है। तदनुसार इस कृति में महाकाव्य के संपूर्ण लक्षण विद्यामान हैं निष्कर्षत: त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित (जैन रामायण) सफल पौराणिक काव्य, चरितकाव्य एवं भारतीय व पाश्चात्य लक्षणों से युक्त पूर्ण महाकाव्य है अत: इसे "पौराणिक चरित महाकाव्य" नाम से विभूषित करना इसके काव्य रूप का सही आकलन होगा।

(८) सूक्तियाँ : त्रिषष्टिशलाकापुरुपचरित उपदेशपरक एवं प्रचारात्मक काव्य है। इसमें जनमानस को धार्मिक भावना से जोड़ने के लिए उक्ति चमत्कार का प्रयोग किया गया है। उक्तियों या सुभापितों द्वारा बात को सहज में सम्प्रेषित किया जाता है और इस प्रकार का संप्रेषण अधिक स्थायित्व प्राप्त करता है। यहाँ हमारा लक्ष्य पाठकों को त्रि.श.पु.च. पर्व ७ में आई सूक्तियों का परिचय देना है। इससे पाठकों को जैन रामायण के सूक्ति भंडार की जानकारी मिल सकेगी।

जैन रामायण की सूक्तियाँ :

१. प्राय: तत्वज्ञ पुरुषों का क्रोध सुख से शांत हो जाने वाला होता है।[370]
२. जैसा राजा वैसी ही प्रजा।[371]
३. स्त्री का पराभव असहनीय होता है।[372]
४. सज्जनों को उपकारी साधु विशेष वंदनीय होते हैं।[373]
५. सेनापति से हीन सेना मरी हुई (हारी हुई) ही है।[374]
६. वीरों के साथ लम्बे समय की शत्रुता मौत के लिए ही होती है।[375]
७. बाहुबल युक्त पुरुषों को अन्य विचार (युद्ध के सिवाय) नहीं आते।[376]
८. जय की इच्छा रखने वालों के लिए प्राण प्राय: तिनके के समान होते हैं।[377]
९. एक हाथ से ताली नहीं बजती।[378]
१०. बड़ों के अपराध होने पर भी उन्हें नमस्कार करना ही निवारण है।[379]
११. महापुरुषों का आगमन किसके दु:खों को दूर नहीं करता।[380]
१२. पराक्रमी पुरुषों को युद्ध रूपी अतिथि प्रिय होते हैं।[381]
१३. महान ओजयुक्तों के लिए क्या असाद्य है।[382] (अर्थात् सब कुछ साध्य है।)
१४. राजा किसी के आत्मीय नहीं होते।[383]
१५. सच्ची या झूठी प्रसिद्धि मनुष्यों को विजय प्रदान करने वाली होती है।[384]
१६. सत्यवादियों को क्षोभ नहीं होता।[385]
१७. बिना विचारे किया गया कार्य आपत्तिप्रद होता है।[386]
१८. पुत्र (प्रप्ति) के लिए क्या नहीं किया जाता।[387]
(अर्थात् सभी उपाय किए जाते हैं)

१९. सत्य बोलने वाले प्राण देकर भी असत्य नहीं बोलते। [388]
२०. वीर पुरुष अन्य वीरों के अहंकार के आडंबर को सहन नहीं कर सकते। [389]
२१. सेनापति को जीतने पर सेना स्वत: जीत ली जाती है। [390]
२२. तेजस्वियों का निस्तेज होना मौत से भी दु:सह है। [391]
२३. अभिमानी पुरुष कहीं भी अभिमान को भूलते नहीं। [392]
२४. अपने दु:ख को कहने का मित्र के सिवाय अन्य कोई स्थान नहीं। [393]
२५. पति-पत्नी एकांत में रहते हुए भी चतुर पुरुष पास नहीं रहते। [394]
२६. सेवक स्वामी की तरह स्वामी की संतान पर समान वृत्ति रखने वाले होते हैं। [395]
२७. सज्जन सत्यपुरुषों की आपत्ति नहीं देख सकते। [396]
२८. प्राय: इष्ट जनों को देखकर दु:ख पुन: ताजा बन जाता हैं। [397]
२९. अत्यंत पुण्य या पाप कर्मों का फल नहीं (मृत्युलोक में) मिलता है। [398]
३०. तेज हथियार पास होने पर हाथ से प्रहार कौन करेगा। [399]
३१. सर्वत्र छल बलवान है। [400]
३२. प्राय: धवलगीत (घौल-गीत) की तरह अपहास्य वचन असत्य होते हैं। [402]
३३. महात्माओं का क्रोध प्राणियों के तन (नाश) तक होता हैं। [401]
३४. अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना क्षत्रियों का धर्म है। [403]
३५. उदय हुए सूर्य को कौन छिपाने में समर्थ है। [404]
३६. लोभ से हारे हुए मन वालों का विवेक लंबा नहीं होता। [405]
३७. अन्याय भी अगर राजा की आज्ञा से हो तो उसमें भय नहीं होता। [406]
३८. संसार में सबकी मौत अवश्य होने वाली है। [407]
३९. उत्तम पुरुषों के होते हुए कौन सुख से नहीं जीता। [408]
४०. कामांध व्यक्ति क्या नहीं करता। (अर्थात् सब कुछ कर सकता है) [409]
४१. मात्र एक दिन का व्रत ग्रहण भी स्वर्ग की गति देता है। [410]
४२. विश्व में मनुष्य पर शोक-हर्ष आता जाता है। [411]
५३. महात्माओं की प्रतिज्ञा पत्थर में खुदी रेखा के समान होती है। [412]
४४. महात्माओं की प्रतिज्ञा स्थिर होती है। चलायमान नहीं। [413]
४५. अति बलवान के प्रति कपट ही उपाय हैं। [414]
४६. खलपुरुष सर्वनाशी होते हैं। [415]
४७. अभिमानी पुरुष धर्म-अधर्म को नहीं गिनते। [416]
४८. मंत्रियों के सामर्थ्य से (राजा के) असत्य में भी सत्यता आ जाती है। [417]
४९. शकुन तथा अपशकुन दुर्बल व्यक्तियों की मान्यता है। [418]
५०. सज्जनों को ममता से प्यार होता है। [419]
५१. सामान्य अतिथि भी पूज्य है फिर पुरुषोत्तम अतिथि की तो बात ही क्या। [420]
५२. अत्यधिक शोक में भी स्त्रियों का कामभाव अनिर्वचनीय होता है। [421]
५३. बड़ों के समक्ष प्रार्थियों की प्रार्थना निष्फल नहीं जाती। [422]

५४. शेर का युद्ध में एक भी सहायक नहीं होता। [423]
५५. अन्य पुरुषों की सहायता से प्राप्त विजय बलवान पुरुषों के लिए लज्जारूप है। [424]
५६. प्रतिकूल हुए देव पर किसी का वश नहीं चलता। [425]
५७. सज्जनों का समागम पुण्य से ही होता है। [426]
५८. छींक के सर्वथा नष्ट होने पर सूर्य ही शरण रूप हैं। [427]
५९. महान पुरुषों को स्वयं के कार्य से भी दूसरों के काम की अधिक चिंता रहती है। [428]
६०. भोजन के लिए जिस तरह ब्राह्मण उसी तरह युद्धार्थ वीर आलस नहीं करते। [429]
६१. हिरण को मारने के लिए शेर को दूसरी झपट की आवश्यकता नहीं। [430]
६२. अति बलवान कामावस्था को धिक्कार है। [431]
६३. एक बार जो हो गया (अच्छा-बुरा) वह पुन: वैसा नहीं हो सकता। [432]
६४. न्यायी महात्माओं के पक्ष का आश्रय कौन नहीं लेता। [433]
६५. खल कपट-कुशल होते हैं। [434]
६६. बलवानों को सब अस्त्र रुप है। [435]
६७. धूर्त पुरुष दूसरों के हाथ से अंगारे निकलवाते हैं। [436]
६८. कमलनाल से बंधा हाथी कब तक रहेगा। [437]
६९. महापुरुष पराजित शत्रु पर भी कृपालु ही होते हैं। [438]
७०. राजाओं की आप्त मंत्रियों के साथ विचारणा शुभ परिणामी होती है। [440]
७१. डाकिनी की तरह शत्रु पर भी अकस्मात् विश्वास नहीं होता। [441]
७२. महात्माओं का आदर करना निष्फल नहीं जाता। [442]
७३. पूजनीयों से भय में शर्म कैसी। [443]
७४. राजकार्य में राजाओं को उपाय से ही जगाया जाता है। [444]
७५. वीर पुरुष प्रजा के लिए समान दृष्टि वाले होते हैं। [445]
७६. मुनि लोग एक जगह स्थिर नहीं रहते। [446]
७७. प्राय: अपवादों का निर्माण लोगों के द्वारा ही होता है। [447]
७८. कर्म के अधीन सुख-द:ुख अवश्य भुगतने पड़ते हैं। [448]
७९. आपित्ति में धर्म ही शरण रूप है। [449]
८०. रोगी व्यक्ति दोष को नहीं देखता। [449]
८१. एक धर्म को स्वीकारने वाले सभी परस्पर भाई होते हैं। [450]
८२. आपत्ति में मंत्री की तरह मित्र भी स्मरण के योग्य होते हैं। [453]
८३. भाग्य की तरह दिव्य की गति भी प्राय: विषम होती हैं। [453]
८४. कर्मों की गति विषम हैं। [454]
८५. कर्म फल दुर्गम्य हैं।
८६. मानवों के सौ छिद्रों में सैकड़ों भूत प्रवेश करते हैं। [455]
८७. देहधारियों की गति कर्म के आधीन है। [457]
८८. विवेक के उत्पन्न होने पर रौद्रता नष्ट हो जाती है। [458]

उपर्युक्त सुभाषितों से यह बात निश्चित की जा सकती है कि हेमचंद्र पर उनके पूर्ववर्ती जैन रामकथाकारों का प्रभाव अवश्य पड़ा है। विमलसूरि के पउमचरिय, रविणेश के पद्मचरित एवं स्वयंभू रचित पउमचरितादि अनेक जैन रामकथात्मक ग्रंथावलोकन पर उपर्युक्त तथ्य की सहज पुष्टि हो जाती है।

: संदर्भ-सूची :

१. त्रिशपुच.- पर्व ७, - १/४४-४५, ९७-१०२, २/८४-८१, ३१६-३२५, ३/१०७-१११, ६/३०८ आदि अनेक स्थल।

२. त्रिशपुच. पर्व ७, ३/१०६-१०७-१११

३. वही - २/३१८-३२३

४. त्रिशपुच. पर्व ७, ३/४७-५०, ६५-७५, ९०-९३, ३/२२२-२३२

५. त्रिशपुच. ६, ३६-४०

६. वही - ३/४७-५०

७. जैन रामायण - ६/४०६

८. त्रिशपुच. पर्व ७, - १/४-४१, ५९, ८८, २/१२५, १७०, २२६, ३५७, ३६०, ५०७, ५०९, ५४९, ६४०, ६४८, ३/१७१, ४/२७, २९, ३०, ३७, ७०, २१३, २३०, २३४, ३२२, ३८९, ३९८, ४१४, ५२९, ५/१६२, २२६, २८०, ३०७, ३०९, ३४२, ३६८, ८/३०, ३४, ११३, २४९, १५१, ९९, १९९, २३३, १०/४८, ५०, ६५, ६९, ७७, ८८, १०४, १०६, १११, ११२, १३८, १७७०, १८०, १८१ आदि।

९. वही - ५/३९५, ६/१२०, ७/२२७-२३०, २३४-२३८, ८/४-६, ९/२५-२६. ३०-३४, १०/१३१-१३३ आदि।

१०. वही- ७/२२७-२३०

११. त्रिशपुच. पर्व ७, - ९/२४-२५, ३०

१२. त्रि. ष. पु. च. पर्व ७, - ७२३-३५, ६३-८६, ३१७-३२१, ३६४-३७५

१३. वही - ७/३१७, ३१९-३२०

१४. वही - ७/३६६-३६७

१५. त्रिशपुच. पर्व ७, - १/१९-२०, ४६-५१, ७०-८५, ९४-९५, ११८-१०, २×११५-११९, १३९/१४०, १४५-१४८, २०४-२०८, २१३-२२०, ३२८-३३८, ५७०, ६०४-६२०, ३/२९०-२९८, ४/२७८-२६८, ५/१०७-१०९, ३०-३१, २१९-२२२, ६/७०-८०, १०९-११४, २३९-२४७, २७३-२७५, ३७४-३८४, ७/६१-७६, १९५-२१९, ३६४-३७६, ५६७-५६९ आदि अनेक स्थल।

१६. त्रिशपुच. पर्व ७, - ७/३६४-३७५ और भी देखिये २/६०६-६१८

१७. त्रिशपुच. पर्व ७, - २/४२-५४, ३/१८७-१९१, ६/१४५-
१०/२४७-२४९ अनेक स्थल।
१८. वही - ६/१४५-१४३
१९. त्रिशपुच. पर्व ७, - ७/४९-५१
२०. त्रिशपुच. पर्व ७, - १०/२४७-२४९
२१. त्रि. ष. पु. च. पर्व ७, - ९/१९३-२२५
२२. त्रिशपुच. पर्व ७, - ९/२११-२१२-२१५
२३. वही - ९ / २१८ - २२०
२४. त्रिशपुच. पर्व ७, - १/४, ४०, ५९, २/११९-१२५. १७०.
५०७, ३५६, ८/१४९, १५२, ९/२३३, १०/१०४-१०५, १०
१३५/ १३९, १७५-१८१ आदि।
२५. त्रिशपुच. पर्व ७, - १०/१७३-१७५
२६. वही - १०/१०९- १११
२७. त्रिशपुच. पर्व ७, - ३/४३स २१२-२१३, ४/१८३-२०२ २५ २५६,
९/३५-३८, ४४-४५ आदि।
२८. वही - ४/१९३-१९६
२९. त्रिशपुच. पर्व ७-९/३५-३८
३०. त्रिशपुच. पर्व ७, १/३७-३८, २/२६५-२७८, ४/३५५ - ७/३२७-
३३८, ८/२६७-२६८, १०/१०९ आदि स्थल।
३१. वही - ७/३२८-३३३-३३८ (३३४से ३३६ भी देखिये)
३२. पद्म पुराण एवं मानस - डॉ रमाकांत शुक्ल, पृ. ३७४-३७५
३३. त्रिष्टिशलाकापुरूष पर्व ७ के लगभग सभी श्लोक अनुप्रास के उदारहण माने जा सकते हैं।
३४. यमक के अन्य उदारहण देखिये त्रिशपुच.. पर्व ७, - १/१२, ९२, १०१, १३९, २/१०२, १०४, १०६, १३९, १६४, १७८, ६०६, ४/१८४, २४८, ६/२७, ६८, ७०, ८/२४०, १०/१२०
३५. उषमा के अन्य उदारहण देखिये - वही - १/१, ६८, ७१, ७७, ९२, २/३, ६, ७, १५, ८५, १०१, १०२, १०३, १०४, २३२, २५४, ३१६, ३३४, ३३७, ३४०, ३७५, ४०७, ४४२, ४६२, ४०, ५२२, ५२३, ५३७, ५५५, ५५९, ५८, ५८७, ६०८, ६०७, ६१०, ३/३२, ४७, ५०, ९६, १०७, १६४, १९४, २११,२१८, २२२, ३/२२५, २६४, २८०, २८१, २९१, २९२, २९४, २९५, ४/७, ११-१२, २३, ६२, ६७, ११८, १७०, १७८, १८७, २००, २५४-२५५, २६४, २८५, ३३५, ३४३, ३४४, ३५०, ४१९, ४६२, ४७३, ५३०, ५/१, ५, १७, ३१, ५७, ५८, ७८, ७९, ११५, १६१, १८८, १९६, ४५९, ४६२, ४७३,

५३०, ५/१, ५, १७, ३१, ५७, ५८, ७९, ११५, १६९, १८८, १९६, २२१, ३५१, ३८५, ३९९, ४१२, ४१५, ४२६, ४४०, ४६०, ६/१८, २५, २८, ३३, ५८, ६०, ६९, ७२, ९९, १०४, १०९, १२५, १२७, १५७, २०७, २१५, २२३, २६८, २७०, २७२, २९५, २९९, ३०३, ३२५, ३२८, ३४८, ३४९, ३६६, ३७५, ३८१, ७/७, ३२, ३३, ४६, ४७, ५०, ५१, ६४, ६६, ७०, ७२, ७७, ८८, १३९, १४७, १५५-१५, १६७, १७३, १७५, १८४, १९४, २०१, २०७, २१०, २१८, २४६, २४८, २५५, २५८, २९२, २९३, ३११, ३२८, ३५२, ३६४, ३७१, ३७५, ८/३६, ४२, ४४, ५५, ८६, १०७, ११३, ११८, १४७, २२२, २२२, २२३, १०/७०, ९०, १२०, १२५, १२५, १८५, १९४, २५७, २५८, आदि स्थल।

३७. और भी देखिये - वही - ५/८२, ८७, आदि

३८. और भी देखिये - वही - २/११९-१२०, १३३-१३४, आदि स्थल।

३९. अन्य उदारहण देखिये - वही - १/१४, ६७, ८२, ९९, १३९, २/८७, ११८, १२२, १३०, १३३, १५२, १८३, १८६, १९६, २०२, २०४, २५५, २३१, २५०, २७१, २९९-३०१, ३१८, ३४३-३७१, ३७१, ३७६, ४४१, ५०१, ५६९, ५८६, ५९०, ६०२, ६१३, ६१६, ६१७, ६५४, ३/ ४३, ४७, ६८, १२६, १६०, २४९, २५३, २७१, २७२, २७३, २७४, ४/२०, २२, २६, ६०, ६२, ६५, ७१, ८५, १३२-१३३, १६९, १७८, १८७, २०४, २४९, २५०, २५२, २५४, २५९, २८०, २८१, ४३५, ४४८, ४५४, ४५६, ४६०, ६/१०, २९, ५५, १३३, १५८, १७१, १८९, २३२, २५२, २८१, २८७, २९९, ३०२, ३१३, ३१८, ३२६, ६/३२७, ३५३, ३५५, ३७१, ३८४, ४०५, ७/२८, ४८, ७३-७४, ८८, १५६, ७४, २३७, ३०१, ३११, ३२३, ३११, ३५५, ३६९, ३७०, ३७७, ८/ ८७, ९९, २१८, २३९, ३१५, ९/३८, ६२, ९८, ९९, १२०, १३६, १५९, १०/७, ४४, १०४, ११३, १२०, ११३, १२०, १२२, १३४, १५५, १६७, १९४, २१९, २५५, २३२, २४३ आदि देखे।

४०. वही - २/३५९-३६०, २/५९४-५९५, ३/८१-८३, ५/१५४-१५५, आदि देखे।

४१. और भी देखी - वही - २/४१९, ७/२९१, ९/१४४, १८८ आदि।

४२. और भी देखी - वही - ६/११० आदि।

४३. और भी देखिये - वही - ३/१८७-१८९, ४/१९६, १९८, १९९, ५/१८९, ४२१, ६/६९, ७६, २३९, ३५६, ७/१४९, १०/९६ आदि स्थल।

४४. उपमा व रुपक के समान उत्प्रेक्षा भी अधिक प्रयुक्त हुआ है। वर्णनों में इसका सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। कुछ स्थल उल्लिखित हैं। जैन रामायण -

१/८, १२, १४, १८, २७, ३८, ३९, ४८, ६२, ६४, ६६, ६९, ७०, ७४, ७५, ७६, ८०, ८३, ८५, ८७, ९२, ९४, १२९, १२४, २/९, १२, १७, ४७, ५३, ५६, ७६, ८६, ८७, ९६, ९९, १०४, १०९, ११७, १५३, १५५, १६५, १७६, १८४, १८७, २१६, २१७, २१९, २२९, २३७, २४१, २५९, २९३, २९७, ३०२, ३०९, ३२६, ३४०, ३४५, ३६४, ३७४, ३७५, ४१०, ४११, ५२३, ५४२, ५५३, ५५९, ५७१, ६०८, ६१२, ६१५, ६२२, ६२८, ६२९, ६४३, ३ /४५, ५७, ८६, १३८, १३५, १९६, ४/१९, १६, ५९, ६९, ९६, १२२, १२३, १७६, २०३, २३१, २६१, २८६, २७७, २८७, २७९, २९३, २९५, २९९, ३८७, ४५४, ४६१, ४७०, ४८४, ५/८, २१, ५६, ५७, ५८-६०, ६३, ७१, ७९, १०९, ११५, ११९, १२९, १३२, १६९, १८८, २१६, ५/३२३, ४०३, ४०५, ४२८, ४४०, ४४९, ६/३२, ४३, ६४, ६५, ६९, ७१, ७४, ७७, ८५, १०८, ११२, ११५, १४३, १७१, १७३, १७८, १९४, २१०, २१६, २४२, २७५, २८२, २८६, २८७, २९४-२९७, ३०५, ३०७, ३११, ३१४, ३१६, ३३९, ३४०, ३५१, ३५५, ३७२, ३७७, ३८२, ४००, ४०४, ४०८, ७/१९, ३६, ५३, ५४, ६२, ६७, ७१, ७५, ८९, १३५, १६१, १८०, १९९, २०२, २२४, २६७, ३९८, ८/३८, १७३, २४३, ९/३३, १३९, १४७, २०६, २१५, १०/८, १४२, आदि स्थल।

४५. और देखें - ५/१६४-१६५, ६/१८, ३४४ स्थल।

४६. और देखें - २/४२०

४७ और देखें - २/५६६, ५७३, ६/११४, ४०३ आदि स्थल।

४८. और देखिये - वही - २/४८८, २/५८५-५८७, ३/१२२-१२३, १४९, १५०, १७३, १८७, १८९, ४/९-१०, २५५, ३६८, ३७०, ५/ ५५, १३८, १३९, ३३१-३३२, ३७१, ३८२, ६/१४५ - १४७ आदि स्थल।

४९. और देखिये - ४/२४० - २४२, ४६९, ४७१, आदि

५०. और भी देखे - २/५०७, ४/५१, ५/९३ आदि देखें।

५१. और भी देखिये - वही - २/१९६, १०/१४३ आदि स्थल।

५२. और भी देखिये - वही - २/२५८, २६०, २७४, २८९, ६/२३५, आदि स्थल

५३. और भी देखिये - वही - त्रिशपुच. पर्व ७ - ०/९५, ९६

५४. और भी देखे - वही - २/२२४, ३/१४१ आदि

५५. काव्यलिंग के अन्य उदारहण देखे - वही - २९९, २/३८१, ३/२१७, ४/३६, ५/५३, ३३१-३३२, आदि।

५६. और भी देखिये - वही - २/११२, ५/१०३, ३०९, ६/८४, ९७, १४२, ३०४, ९/१४१, १०/१०९, ११०, आदि स्थल।

५७. और देखे - वही - २/५६१-५६२, ४/४४९, आदि स्थल।

५८. और भी देखे - वही - १/७३-७४, २/१५२-१५३, २९०-२९१, ७/५७-६१, ६३-६४ आदि।

५९. स्वाभावोक्ति के अन्य उदारहण देखिये - ३/९०-९३, ४/१९३, ४/३६८-३७०, ४९६, ५५३, १०२, २६६, ६/४०, १०/२११-२१२, ६/१६८-१७०, २८१, ९/२१८ आदि स्थल।

६०. त्रिशपुच. पर्व ७ -२/२२६-२३०

६१. वही - २/२६६-२७७

६२. वही - २/२६६-२६७

६३. वही - ४/३५५-३५६

६४. वही - ५/१५१-१५४

६५. वही - ७/२७४-२७५

६६. वही - ७/२२९-२३८

६७. वही - १० / २६०

६८. वही - त्रिशपुच. पर्व ७ १/९१-९३

६९. वही - २/१३०

७०. वही - २/५५१-५५७

७१. वही - ४/२६५-२६६

७२. वही - ४/४८७

७३. वही - ४/५३१

७४. वही - ५/१-४

७५. वही - ५/७७-७९

७६. वही - ५/१०१-१०४

७७. वही - ५/१६८-१७०

७८. वही - ५/२४१-२४३

७९. वही - ५/३२२-३२८

८०. वही - ६/६५-७०

८०. वही - ८/७२ - ७४

८१. वही - २/२९९-३१०

८२. वही - ३/१३२-१३६

८३. वही - ३/१८७-१९१

८४. वही - ४/४९६/४९८
८५. वही - ५/१३२-१३३
८६. वही - ५/४६०
८७. वही - ६/११३-१४४
८८. वही - ६/१६७-१७२
८९. वही - ६/२८१-३०८
९०. वही - ६/३०९-३१६
९१. वही - ९/२१८-२२०
९२. वही - १०/१०९
९३. वही - २/१२-१४
९४. वही - १/६३-६७
९५. वही - १/१४६-१५०
९६. वही - २/१०१-१०२
९७. वही - २/१०३-१०४
९८. वही - २/१७९-१८२
९९. वही - २/४६७-४७३
१००. वही - २/६३६-६४५
१०१. वही - ३/१८-१९
१०२. वही - ३/१२१-१२२
१०३. त्रिशपुच. पर्व ७, ३/२०३-२०९
१०४. वही - ४/७९-८३
१०५. वही - ४/१६१-१६४
१०६. वही - ४/२५४-२५७, ३०७, ३११, ५/४१९-४२३
१०७. वही - ४/३३२-३४८
१०८. वही - ४/४२२-४२९
१०९. वही - ५/९२-९८
११०. वही - ५/१७३-१८६
१११. वही - ६/३२५-३२८
११२. वही - ७/२७५-२८१
११३. वही - ८/२६४-२६९
११४. वही - ९/२०-२४
११५. वही - ९/१७४-२११
११६. वही - २२८-११
११७. वही - १/२५-३०
११८. वही - १/३०-४१

११९. वही - १/५५-५८
१२०. वही - १/६१-६२
१२१. वही - १/१०५-१११
१२२. वही - १/१३३-१३४
१२३. वही - १/१५१-१६०
१२४. वही - २/१३-१७
१२५. वही - २/२२-२९, ५८
१२६. वही - २/७४-७८
१२७. वही - २/१३२-१३६
१२८. वही - २/१९५-२०१
१२९. वही - २/२६-२२८
१३०. वही - २/२३८-२४५
१३१. वही - २/५१०-५१४
१३२. वही - २/५२१-५२४
१३३. वही - २/६५१-६५४
१३४. वही - ३/२१५-२१८
१३५. वही - ३/२२३-२३५
१३६. वही - ४/११६-१२०
१३७. वही - ४/२२१-१२६
१३८. वही - ४/२४७-२५०
१३९. वही - ४/२६७-२७०
१४०. वही - ४/२८९-२९१
१४१. वही - २८९/२९१
१४२. वही - ३४२/३४३
१४३. वही - ४/५२२-५२६
१४४. वही - ५/७३-७६
१४५. त्रिशपुच. पर्व - ७, ५/१-५ - ११३
१४६. त्रिशपुच. पर्व - ७, ५/१०५
१४७. वही - ५/१२५-१३१
१४८. वही - ५/२५०-२५५
१४९. वही - ५/३७९-३८७
१५०. वही - ५/४३८-४४२
१५१. वही - ६/२१२-२१७
१५२. वही - ६/२३११-२३६
१५३. वही - ७/८९-९२

१५४. वही - ८/१५५-१५९

१५५. वही - ९/३५-४७

१५६. वही - ९/६६-७०

१५७. वही - १०/९७-९९

१५८. वही - १०/२०९-२१३

१५९. वही - १/४४-४५

१६०. वही - १/९७-१०४

१६१. वही - १/२८१-२८५

१६२. वही - २/३०-३६

१६३. वही - २/८०-८४

१६४. वही - २/८६-९१

१६५. वही - २/२८१-२८५

१६६. वही - २/२८६-२९०

१६७. वही - २/३१६-३२५

१६८. वही - २/५४९-५५४

१६९. त्रिशपुच. पर्व ७, ३ / ४३ - ४६

१७०. वही - ३/११०-१११

१७१. वही - ३/२७१-२७७

१७२. वही - ४/६-८

१७३. वही - ४/१७३-१७४

१७४. वही - ४/१७७-१८४

१७५. वही - ४/३५२-३५४

१७६. वही - ५/२१-२२

१७७. वही - ५/२७-३८

१७८. वही - ८/१६९-७७

१७९. वही - १/६८-७७

१८०. वही - १/७८-८५

१८१. वही - १/९१

१८२. वही - १/११२-११३

१८३. वही - २/४१-५५

१८४. वही - २/९३-१००

१८५. वही - २/१०७-१२२

१८६. वही - २/१३८-१४४

१८७. वही - २/१५०-१५६

१८८. वही - २/१७३-१७४

१८९. वही - २१८-२२३
१९०. वही - ३/२८८-१४४
१९१. वही - २/५९६-६३०
१९२. वही - ३/५२-६०-१२०
१९३. वही - ३/२८३-३००
१९४. वही - ७१/७५
१९५. वही - ४/१०२-११५
१९६. वही - ४/२७३-२८७
१९७. वही - ५/२१०-२२६
१९८. वही - ५/४११-४१६ ६/१२-१५, २६-३३
१९९. त्रिशपुच. पर्व ७, - ६/२७८-२७८
२००. वही - ६/३६५-३७३
२०१. वही - ७/१-६
२०२. वही - ७/४६-५३
२०३. वही - ७/५४-६४
२०४. वही - ७/१९५-२००
२०५. वही - ७ / २००-२२४
२०६. वही - ७/३६३-३७७
२०७. वही - ८/१७०
२०८. वही - ९/११-१५५
२०९. वही - २/२८६-२९०
२१०. वही - २/५३०-५४३
२११. वही - २/५५९
२१२. वही - ३/४७-५०, ६७-७०, ७५-९०
२१३. वही - ३/७८-८७
२१४. वही - ३/१५२-१५८
२१५. वही - ३/२४७-२५६
२१६. वही - ४/५०८
२१७. वही - ५/२३३-२४०
२१८. वही - ५/४४३-४४५
२१९. वही - ६/३५-४२, ३४७-३५१
२२०. वही - ६/११९-१२४
२२१. वही - ६/२२७-२३०, २३४-२३८
२२२. वही - ७/२५०-२५५
२२३. वही - ७/२५६-२५९

२२४. वही - ८/४-५
२२५. वही - १०/११९-१२१, १२७, १३४
२२६. वही - १०/१३९-१४२, १४७-१५३
२२७. वही - २/३६४-३७२, ४१९-४३०
२२८. वही - २/४४३-४४६
२२९. वही - व/४८३-४९४
२३०. वही - ४/५६-६५
२३१. वही - २/३६४-३७२, ४१९, ४३०
२३२. वही - २/४३३-४४६
२३३. वही - २/४८३-४९५
२३४. वही - ४/५६-६५
२३५. वही - ४/२६७-३७०
२३६. वही - ५/३२८-३३४
२३७. वही - ७/२४१-२४६
२३८. वही - १०/२४५-२५२
२३९. त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित पर्व ७ - ६/२८१-३०७
२४०. वही - ४/३३४-३३५
२४१. वही - ४/४५४-४५५
२४२. वही - ४/४२०-४२१
२४३. वही - ४/३०६-३११
२४४. आचार्य हेमचंद्र : डा. वि. भा. मूसलगांवकर, पृ. ७१
२४५. हेम समीक्षा - सघूसुदन मोदी, पृ. - २८९ (गुजराती)
२४६. हेमचंद्राचार्यजीनी कृतिओं - मोतीचंद्र कापड़िया (गुजराती)
२४७. त्रिशपुच. पर्व ७ - १/५६, ७३, ११४ आदि।
२४८. वही - २/३४८-२५१
२४९. त्रिशपुच. पर्व ७ - ३/२४८-२५१
२५०. वही - ६/१४५-१४७
२५१. वही - ७/५७-६०
२५२. वही - ७/३७७
२५३. त्रिशपुच. पर्व ७ देखिये १/३३, २/४२८, ४/२५, १२८, १९०, ६/९७ आदि सूक्तियाँ।
२५४. काव्य दर्शन - फूलचंद पाण्डेय पृ. ५१
२५५. प्राचीन काव्य कलाघर - हजारी लाल शर्मा, संपादकीय से •
२५६. हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतियास - राजनाथ शर्मा, पृ. २७७

२५७. गोस्वामी तुलसीदास : बाबू शिवंदन सहाय पृ. १५९
(पटना से प्रकाशित)
२५८. तुलसीदास व उनकी कविता: रामनरेश त्रिपाठी
(द्वितीय भाग) पृ. ४११
२५९. त्रिशपुच. पर्व ७-१/२५ - ३१
२६०. वही - १/५२-५९
२६१. वही - १/१३३-१४३
२६२. वही - १/१५५-१६९
२६३. वही - २/२-१२
२६४. वही - २/१३-१७
२६५. वही - २/३२-४१
२६६. वही - २/४७-५२
२६७. वही - २/१३७-१४५
२६८. वही - २/१५६-१६२
२६९. वही - २/१८८-२०३
२७०. वही - २/२२०-२२५, २५७-२६५
२७१. वही - २/२७०-२७६
२७२. वही - २/१८८-२०३
२७३. वही - २/३४२-३५८
२७४. वही - २/३६२-३७६, ४५५-५०२
२७५. त्रिशपुच.. पर्व ७-२/२७८-३८१
२७६. वही - २/२८२-४५४
२७७. वही - २/५२०-५४८
२७८. वही - २/५५८-५६२
२७९. वही - २/२८२-४५४
२७९. वही - २/५६३-५६७, ६/१६०-१६६, ७/१७-२२, १५६-१६०
२८०. वही - २/५७४-५७७
२८१. वही - २/५७९-५९५
२८२. वही - २/५९७-६०३
२८३. वही - २/६४३-६३०
२८४. वही - २/६३४-६४७
२८५. वही - ३/५-११
२८६. वही - ३/१३-१५, ३१-४२
२८७. वही - ३/१७-२३, ३१-४२
२८८. वही - ३/२५-२९

२८९. वही - ३/५२-५६
२९४. वही - ३/२२३-२२९
२९५. वही - ४/११-२५
२९६. वही - ४/१७-२६
२९७. वही - ४/४५-५१
२९८. वही - ४/९८-१०१, ४२२-४२६
२९९. वही - ४/१६२-१६४, १६८-१७०
३००. वही - ४/२६०-२७२
३०१. वही - ४/३०१-३१३
३०२. वही - ४/३१६-३२४
३०३. वही - ४/३६२-३७१
३०४. वही - ४/३९१-४१८
३०५. वही - ४/२४८-४४१
३०६. वही - ४/४४४-४५३
३०७. वही - ४/४५४-४६२
३०८. वही - ४/४७२-४८१
३०९. वही - ४/५०३-५१०
३१०. वही - ४/५१५-५२६
३१३. वही - ५/१७-२९
३१४. वही - ५/४८-५९
३१५. वही - ५/६५-७०
३१६. वही - ५/८७-९९
३१७. वही - ५/१११-११२
३१८. वही - ५/१५६-१६३
३१९. वही - ५/१८२-१८५, २३३-२४०
३२०. वही - ५/१९०-१९४
३२१. वही - ५/१९६-२०६, १०/१-१०
३२२. वही - ५/२७०-३१९
३२३. वही - ५/३९९-४१०
३२४. वही - ५/४१६, ६/१२१-१२५
३२५. वही - ५/४५०-४५६, ६/१३८-१४३
३२६. वही - ६/२-६, ८२/९७-३०५
३२७. वही - ६/२१-२७
३२८. वही - ६/९५-९७
३२९. वही - ६/१०४-१०६, ७/३७-४१, २३१-२४०

३३०. वही - ६/१२७-१३७
३३१. वही - ६/१४८-१५९
३३२. वही - ६/१७३-१७८
३३३. वही - ६/२२३-२३६
३३४. वही - ६/४४८-२५०
३३५. वही - ६/३१९-३४
३३६. वही - ६/३३३-३४१
३३७. वही - ६/३४२-३६५
३३८. वही - ६/३८६-४०२
३३९. वही - ७/२३-३१
३४०. वही - ७/२६०-२८१
३४१. वही - ७/३०२-३०८, ३२२-३२५
३४२. वही - ७/३०९-३२१
३४३. वही - ८/५०-५४, ८/७०-७२
३४४. वही - ८/६२-६८
३४५. वही - ८/९१-९६
३४६. वही - ८/९८-१०२
३४७. वही - ८/१५९-१६५
३४८. वही - १९१/२१४
३४९. वही - ८/२३१-२३७
३५०. वही - ८/२५५-२६०, २६५-२६७
३५१. वही - ८/२८०-२८९
३५२. वही - ८/२८०-२८९
३५३. वही - ८/३१०-३२५
३५४. वही - ९/४ - १६
३५५. वही - ९/१९-२६
३५६. वही - ९/६९-७३
३५७. त्रिशपुच. पवज्ञ ७-८/१२०-१२४
३५८. वही - ९/१४९-१५३
३५९. वही - १०/११-१४
३६०. वही - १०/१६४-१७३
३६१. वही - १०/२३०-२४५
३६२. वही - ९/६४-६८
३६३. वही - ३/२२३
३६४. वही - ५/२८

३६५. वही - ६/१३४-१४१
३६६. भारतीय काव्य शास्त्र के सिद्धांत: डॉ. कृष्ण देव शर्मा, पृ. ३१२
३६७. हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृष्ठ - ६२८
३६८. वही, पृ. ३१५
३६९. अथ श्री सुव्रत स्वामी जिन्नद्र स्यांजनद्यते:। हरिवंशमृगाकंस्प तीर्थे सीतगातजन्मन: ॥ १ ॥
बलदेवस्य पद्मस्य विष्णोनारायणस्य च। प्रतिविष्णो रावणस्य चरितं परिकीर्त्यते ॥ २ ॥
३७०. प्रायो विचारचचूना कोप: सुप्रशम: खलु १ त्रिशपुच. पर्व ७-१/२३
३७१. यथा राजा तथा प्रजा:। वही - १/३३
३७२. असह्यो हि स्त्रीपराभव:। वही - १/४६
३७३. वंदनीय: संता साधुर्ह्युपकारी विशेषता:। वही - २/४९
३७४. हत: शोर्य हतुं सेन्यंहयनायकम्
३७५. मृत्येव हि स्पाद्वीरैवेरं चिरादपि। वही - १/९५
३७६. युद्धाय नान्यो मंत्रो हि दोस्यताम्। वही - १/११३
३७७. जयाभिप्रायिणां प्राय: प्राणा हि नृणसन्निमा ॥ वही - १/२८
३७८. तालिका न एक हस्तिका :। त्रिशपुच. पर्व. ७-२/३६
३७९. महतामपराद्वे हि प्राणीपात: प्रतिक्रिया। वही - २/६९
३८०. महतामागमो ह्याशु बलेशच्छेदाय कस्य न। वही - २/१४८
३८१. दोष्मतां हि प्रियो युद्धातिथि खलु। वही - २/२०५
३८२. किम्साध्यं महौजसाम्। वही - २/३१७
३८३. नात्मीय: कस्यचिन्नृषा:। वही - २/४१४
३८४. सत्या वा यदि वा मिथ्या प्रसिद्धिर्जयिनी नृणाम् ॥ वही - २/४१७
३८५. न क्षोम: सत्यभाषिणाम्। वही २/४२६
३८६. अविमृष्य् विद्यातारो भवंति विषदां पद्म। वही - २/४२८
३८७. पुत्रार्थे क्रियते न किम। वही - २/४३०
३८८. प्राणात्यये ड षि शंसन्ति नासत्यं सत्यभाषिण:। वही - २/४३७
३८९. वीरा हिन न सहन्ते ड न्य वीराहंकार डंबरम्। वही - २/६०५
३९०. जिते नाये जिता एवं पदातय:। वही - २/६२०
३९१. तेजस्विनां हि निस्तेजो मृत्युतो ड प्यति दु:सहाम्। वही - २/६३२
३९२. मानिनो ह्यवलेषं न विस्मरन्ति यतस्ततु:। वही - ३/४६
३९३. स्वदु:ख्यान यात्रं हि नापर: सुहृदं विना। वही - ३/८५
३९४. रह: स्थयोर्हि दम्पत्योर्न छेका: पर्श्विवतिन:। त्रिशपुच. पर्व ७-३/११०
३९५. स्वामि वत्स्वाम्यपत्ये ड पि सेवका: समवृत्रय:। वही - ३/१३२

३९६. सन्तुः सतां न विषदं विलोकपितमीश्वराः। वही - ३/१३३
३९७. पुनर्नवीभवे त्प्रायो दुःखमिष्टावलोकनात्म वही - ३/२०२
३९८. अत्युग्रपुण्य पापानामिहैव ह्याप्यते फलम्। वही - ३/२३७
३९९. प्रहरे द्वाहुना को हि तीव्णे प्रहरणे सति। वही - ३/२८४
४००. सर्वत्र बलवच्छम्। वही - ३/२९७
४०१. प्राणिवातान्तः प्रकोषो हि महात्मनाम्। वही - ३/२९९
४०२. उक्तियर्न हि सत्यैव प्रायो धवल गीतवत्। वही - ४/१८
४०३. कुल धर्मः क्षत्रियाणां स्वसन्धापलनं खलु। वही - ४/२५
४०४. प्राप्तोदयं हि तरणिं तिराधातुं क ईस्वरः। वही - ४/३६
४०५. लोभाभिभूतमनसां विवेकः स्यात् कियच्चिरम्। वही - ४/४३
४०६. न हि भीराज्ञया राज्ञामन्यायकरणो ड पि हि। वही - ४/९५
४०७. भाववश्यं तु सर्वस्य मृत्युः संसारवर्तिनः। वही - ४/१२८
४०८. को वा न जीवति सुखम् परुषोत्तम जन्मनि। वही - ५/१८९
४०९. किं न कुर्यात्समरातुरः ११ वही - ४/२१०
४१०. व्रते ह्येकाहमात्रे ड पि न स्वर्गादन्यतो गतिः। वही - ४/२१४
४११. शोको हषश्च संसारे नरमायाति याति च। वही - ४/२१४
४१२. प्रस्तरोत्कीर्ण रेखेव प्रतिज्ञा ही महात्मानाम्। (त्रिशपुच. पर्व ७-४/४२४)
४१३. महतां हि प्रतिज्ञा तु न चलत्यद्रिपाद्वत्। वही - ४/४९४
४१४. नरपतिं मायोपायो बलीयसि। वही - ५/१५
४१५. खलः को ड पि खलः सर्वकषाः खलु। वही - ५/१६
४१६. धर्ममदर्म वा गणयन्ती न मानित वही - ५/३७
४१७. मंत्रिणां मन्त्रसामर्थ्यात्स्यादली के ड पि सत्यता। वही - ५/९३
४१८. शकुनं चाशकुनं च गणयन्ति हि दुर्बलाः। वही - ५/१०३
४१९. सन्तो हि नतवत्सलाः। वही - ५/२२९
४२०. सामान्यो ड प्यतिथिः पूज्यः किं पुनः पुरूषोत्तमः। वही - ५/२५७
४२१. कामोवेशः कामिनीनां शोकोद्रे के ड पि को ड प्योतो। वही - ५/३९८
४२२. महत्सु जायते जातु न वृधा प्रार्थनार्थिनाम्। वही - ५/४०६
४२३. योद्रुं प्रावर्ततैको ड पि न सिंहस्य सखा सुधि। वही - ६/१२
४२४. देवस्य पिरीतस्य के सूर्य को ड परो ड थवा। वही - ६/५०
४२५. देवस्य पिरीतस्य के सूयं को ड परो ड थवा। वही - ६/५०
४२६. सत्तां संगो हि पुण्यतः। वही - ६/९७
४२७. क्षुते हि सर्वधा मूढे तरणिं लु। वही - ६/९७
४२८. स्वकार्यादधिको यत्नः परकार्ये महीयसाम्। वही - ६/१०२
४२९. रणाय नालसांः शूरा भोजनाय द्विजा इव। वही - ६/१०८
४३०. न द्वितीया चपेटा हि हरेर्हरिणमा। त्रिशपुच. पर्व ७-६/११४

४३१. धिगहो, कामा ड वस्था बलीयसी। वही - ६/१४२
४३२. न यद्यप्यन्यथा भावि भावि वस्तु। वही - ६/१६६
४३३. महात्मानां न्यायभाजां क: पक्षं नावलम्बते॥
४३४. छलच्छका: खला: खलु:। वही - ६/३०४
४३५. सर्वमस्त्रं बलीयसाम्। वही - ६/३७१
४३६. अंगारान्वयरहस्तेन कर्षयन्ति हि धूर्तका:। वही - ६/३९२
४३७. बुद्धो हि नलिनीनाले: कियतिष्ठति कुँजर:। वही - ६/४०३
४३८. रिपावपि पराभूते महान्तो हि कृपालव: वही - ७/९
४४०. आप्तेन मंत्रिणां मत्रं शुभोदर्को हि भूजुजाम्। वही - ७/२७
४४१. यथा तथा हि विश्वास: शा किन्यामिव न द्विषि। वही - ७/३६
४४२. न मुधा भवति क्वाऽपि प्रणिपातो महात्मसु। वही - ७/४४
४४३. न ही : पूज्याद्धि बिम्यताम्। वही - ७/१६४
४४४. राजकार्ये ऽ पि राजान् उत्थाप्यन्ते ह्यपायत: वही - ७/२८६
४४५. वीरा हि प्रजासु समदृष्टय:। वही - ८/३
४४६. नैकत्र मुनय: स्थिरा:। वही-८/२९५
४४७. जैन प्राकाशयन् प्रवादा लोकनिर्मिता: १। वही - ८/२६४
४४८. अवश्यमेव भोक्तव्ये कर्माधीनी सुखोसुखे। त्रिशपुच. पर्व ७ - ८/२७३
४४९ धर्म: शरणमापदि। वही - ८/२७४.
न रक्तो दोषमीक्षते। वही - ८/२९२
४५०. एकम् धर्म प्रपन्ना ही सर्वे स्युर्बन्धवो मिथ:। वही - ९/१३
४५१. स्त्रीणां पतिगृहान्यत स्थानं भातृनिकेतनम्। वही - ९/१३
४५२. विधूरेषु हि मित्राणि स्मरणीयानि मंत्रवत्। वही - ९/५२
४५३. दैवस्यैव हि दिव्यस्य प्रायेण विषमा: गति। वही - ०/२०६
४५४. अहो, कर्माणां विषमा गति:। वही - ९/२०६
४५५. प्रविशन्ति छिद्रश्ते नृणां भूतशतानि हि। वही - १०/१४१
४५६. कर्मविपाको दुयति क्रम:। वही - १०/१२३
४५७. गतय: कर्माधीना हि देहिनाम्। वही - १०/२३१
४५८. जसे सविवेके हि न रोंद्रता। वही - ८/१४८

6

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व ७ (जैन रामायण) की नवीन उद्भावनाएँ

अब तक की गई विवेचना से जैन रामायण के बारे में काफी जानकारी मिल चुकी है। इस अध्याय के अंतर्गत हमने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व 7 की नवीन उद्भावनाएं, जो ब्राह्मण परंपरा से एकदम भिन्न तथा नव्य हैं, प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

जैन रामायण के ये नव्य प्रसंग साधारण ब्राह्मण परंपरा के जनमानस के मस्तिष्क पटल तक अभी नहीं पहुँचे हैं। जैन साहित्य को अंधेरी कोठरियों में भर कर उसे बंद रखने की वात हम पूर्व में कह ही चुके हैं। परंतु इस प्रकार के शोध ग्रंथों के सहारे जव ये नवीन प्रसंग तुलसी समर्थक राम भक्तों के कानों तक पहुँचेंगे तो अल्पहृदयी लोग एक बार अवश्य ही कोपाविष्ट हो जायेंगे। दूसरी तरफ साहित्यकार, अनुसंधित्सु, व्याख्याकार एवं विचारवान व चिंतनशील समालोचक पुरुष आश्चर्य युक्त स्मित इन प्रसंगों की तह में पहुँचने का प्रयास करेंगे। इसका कारण यह रहा है कि जैन रामायण के कुछ प्रसंग मानस की पारंपरिक मान्यताओं से शत प्रतिशत प्रतिकूल हैं, साथ ही उन्हें पढकर पाठकों के हृदय में अपने ईष्ट के प्रति अन्याय करने जैसा लगता है। ''लघुचेतसाम्'' व्यक्ति ऐसे प्रसंगो को सहन नहीं कर सकते हैं, हाँ, ''उदारचरितानाम्'' की बात तो अलग ही है क्योंकि वे हताश होने के बदले बाल की खाल निकालने में जुट जाएंगे।

यहां हम त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व ७ के कुछ ऐसे प्रसंग प्रस्तुत करने जा रहे हैं जो वाल्मीकि रामायण से लेकर साकेत एवं राम की शक्तिपूजा

तक भी रामकथा परंपरा में कहीं भी समाविष्ट नहीं हुए हैं। श्रमण परंपरा के ये रामकथात्मक प्रसंग ब्राह्मण परंपरा के पाठकों के लिये नवीन उद्‌भावनाएँ ही कहे जा सकते हैं—

(१) रावण के जन्म से लेकर यौवनवय तक के अनेक प्रसंग : जैन रामायण परंपरा में रावण को महत्ता का दर्जा हासिल है। वह कैकेसी एवं रत्नश्रवा का पुत्र है तथा एक मुख वाला है। [1] जन्म होते ही रत्नश्रवा ने उसका नाम दशमुख दे दिया। जन्मते ही रावण ने एक हीरों के हार को खींचकर गले में डाला एवं अपनी वीरता के भावी संकेत से सबको आश्चर्यचकित कर दिया था। [2] वह पूर्वभव में सावित्री व कुशध्वज का प्रभाव नामक ब्राह्मण पुत्र था। [3] किशोरावस्था में रावण ने अपने लघुभ्राताओं के साथ भीमारण्य में जाकर अष्टाक्षरी एवं षोडशाक्षरी विद्याओं को सिद्ध किया। भयंकर यक्षों के घोर कृत्यों से लोहा लेते हुए रावण ने एक हजार विद्याओं को वश में कर चंद्रहास खड्‌ग को भी सिद्ध किया। [4]

मय पुत्री मंदोदरी से जब रावण का विवाह हुआ तब अन्य छः हजार कन्याएँ भी रावण के रुप पर मोहित हो गईं, उन सबका विवाह भी रावण से ही हुआ। [5] मंदोदरी व इन छः हजार रानियों के अतिरिक्त भी पद्‌मावति, अशोकलता, विद्युतप्रभा, श्रीप्रभा एवं रत्नावली ये सभी रावण की प्रमुख रानियां थीं। [6] बलात् लाई गई अन्य कन्याएँ तो अलग ही थीं। रावण ने दिग्विजय कर अनेक विद्याधरों को अपने वश में कर लिया था। सहस्रांशु को जिन्दा भी पकड़ लिया था। [7] दुर्लंध्यपुर के किले को जीतकर [8] सुदर्शन चक्र प्राप्त किया[9] व यमराज व इन्द्र को पछाडा। [10]

इन सब के अलावा भी रावण से संबंधित अन्य कई नई कथाएं जैन रामायण में वर्णित हैं जो ब्राह्मण राम कथा परंपरा के लिए एकदम नवीन हैं, जैसे, रावण का वैश्रवण से युद्ध[11] रावण का बालि से वाक्‌युद्ध एवं सैन्य युद्ध,[12] रावण के रुदन के कारण उसका नाम ''रावण'' पड़ना, [13] अमोघविजया शक्ति प्राप्त करना, [14] नारद-रावण मिलन, [15] रावण-इन्द्र युद्ध, [16] सहस्रहार राजा की प्रार्थना पर इन्द्र को रावण द्वारा सशर्त रिहा करना, [17] रावण द्वारा केवली-मुनी से अपनी मृत्यु का कारण पूछना, [18] तथा मुनि द्वारा यह कथन कि— ''तुम्हारी मृत्यु परस्त्री-दोष से होगी'' ऐसा कहना, [19] तब परस्त्री की तरफ आँख भी न उठाने की रावण द्वारा दृढ प्रतिज्ञा करना [20] आदि अनेक प्रसंग।

(२) हनुमान की माता अंजना का भावपूर्ण चित्रण : हनुमान रामकथा के प्रमुख पुरुष पात्रों में से एक हैं। तुलसी को राम-दर्शन का लाभ हनुमान के माध्यम से मिला। तुलसी के हनुमान तो ''रामदूत अतुलित बलधामा, अंजनिपुत्र पवनसुतनामा'' से विख्यात हैं। जिन्हें राम से प्यार है उन्हें हनुमान से प्यार स्वतः हो जाता है। मानस के किष्किंधा कांड में

हनुमान का अवतरण होता है। उससे पूर्व वे तुलसी की रामकथा से अलग हैं। परंतु त्रिषष्टिशलाकापुरुष के सातवें पर्व में हेमचंद्र ने हनुमान की माता अंजना का प्रकरण अध्याय तीन के लगभग तीन सौ श्लोको में विस्तारपूर्वक वर्णित किया है। इस अध्याय में अंजना व हनुमान के चरित्र से संबंधित अनेक नए प्रसंग प्रस्फुटित हुए हैं। यह संपूर्ण अध्याय हनुमान की माता अंजना के भावपूर्ण चित्रण एवं हनुमान से संबंधित प्रसंगों से पूर्ण है जिसका संक्षिप्त विवेचन हम नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं।

अंजना महेन्द्रपुर नगर के राजा महेन्द्र की पुत्री थी। [21] उसकी युवावस्था होने पर मंत्रियों आदि की सहायता से आदित्यपुर नगर के राजा प्रह्लाद के पुत्र पवनंजय से अंजना का विवाह तय हुआ। [22] एक बार पवनंजय अपने मित्र प्रहस्ति के साथ गुप्त रीति से अंजना को देखने हेतु सातवें महल में पहुँचा जहाँ अंजना अपनी सखियों के साथ थी। [23] सखियाँ जब अन्य राजकुमार विद्युतप्रभ की प्रशंसा कर रही थीं उस समय अंजना मौन थी। [24] यह देख पवनंजय अति क्रोधित हुआ एवं अंजना से विवाह न करने का फैसला कर लिया। [25] पुन: मित्र के समझाने पर पवनंजय तैयार हो गया एवं दोनों का पाणिग्रहण समय पर हो गया। [26]

विवाह के बाद पवनंजय अंजना से विमुख रहा। [27] अजंना उसके विरह में जलती रही। [28] कुछ ही दिन बाद पवनंजय रावण की सहायतार्थ बिना अंजना से बोले वरुण से युद्धार्थ घर से निकल गया। [29] वहाँ पवनंजय को अपनी भूल का एहसास होने पर वह मित्र सहित आकाशमार्ग से उड़कर सीधा अंजना के महल में पहुँचा। [30] प्रथम प्रवेश प्रहसित ने किया परंतु उसी समय अंजना ने उसे अपमानित कर बाहर निकाल दिया। [31] यह देख पवनंजय प्रसन्न हुआ एवं अंजना से क्षमा मांगकर पूरी रात्रि अंजना के साथ रसयुक्त होकर व्यतीत की। [32] प्रात: काल होते ही जब पवनंजय ने बिदा ली तो अंजना कहने लगी-नाथ शीघ्र आना, मैं ऋतुस्नातता थी। आप समय पर नहीं आए और गर्भ रह गया तो मैं कलंकित हो जाऊँगी। पवनंजय शीघ्र आने का आश्वासन देकर चला गया। [33]

कुछ ही समय में अंजना के द्वारा गर्भ धारण करने का समाचार कलंक-कीर्ति के रुप में चारों और फैल गया। [34] अंजना की सास केतुमति की आज्ञा से अंजना को सेवकों ने राज्य से बाहर निकाल दिया। [35] दु:खी अंजना ने पितृगृह की शरण ली परंतु वहां भी उसे तिरस्कार ही मिला। वह वहाँ से निकाल दी गई। [36] अब वह अपनी सखी वसंततिलका के साथ जंगलों में भटकने लगी। [37] तभी अमितगति मुनि के पास एक गुफा में जाकर अंजना ने अपना संपूर्ण वृत्तांत कहा। मुनि ने अंजना के गर्भ-जीव का एवं अंजना का पूर्वभव सुनाया। [38] मुनि ने अंजना को जैन धर्म में दीक्षित होने की प्रेरणा दी। [39] अंजना ने उस गुफा

में रहते हुए चरण में वज्र, अंकुश व चक्र चिह्न युक्त पुत्र को जन्म दिया। [40] तभी प्रतिसूर्य अंजना को विमान से अपने नगर हनुपुर में लाया। इसी हनुपुर नगर के कारण अंजना के पुत्र का नाम भी हनुमान रखा गया। [41]

इधर जब पवनंजय घर आया तो उसे अंजना को निकाल देने की जानकारी मिलते ही वह उसकी खोज में जंगलों में निकल गया। [42] निराश होकर एक दिन ज्यों ही वह चिता में कूद रहा था तभी राजा प्रह्लाद ने आकर उसे पीछे से पकड़ लिया तथा अंजना को शीघ्र खोजने का आश्वासन दिया। [43] अब विद्याधरों के द्वारा हनुपुर में अंजना के होने की खबर मिली। इधर प्रतिसूर्य एवं अंजना व हनुमान को लेकर भूतवन में पहुँचे जहाँ अंजना व पवनंजय का मिलन हुआ। [44]

विद्याधरों ने महोत्सव का आयोजन किया। महोत्सव के बाद सभी अपने-अपने घर गए। [45] अंजना व पवनंजय के दिन सुखपूर्वक बीतने लगे। हनुमान अब बाल्यकाल से किशोर होता हुआ युवावस्था की ओर बढ़ने लगा। [46] उपर्युक्त वृत्तांत ब्राह्मण रामकथा परंपरा से भिन्न जैन धर्म की सर्वथा नयी मौलिक कल्पना कही जा सकती है।

(३) हनुमान का हजारों कन्याओं से विवाह एवं रतिक्रिड़ा-चित्रण : मानस के हनुमान ब्रह्मचर्य के साक्षात् अवतार हैं, स्त्रियां हनुमान की पूजा अर्चना नहीं कर सकतीं क्योंकि ब्रह्मचर्य के धनी हनुमान नाराज हो जाते हैं। हनुमान के उपासकों को ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक रुप से करना पड़ता है। वे तो "तेज प्रताप महा जग वंदन" हैं, जितेन्द्रिय एवं बुद्धिमानों में वरिष्ठ हैं, बल के धाम हैं, उनका शरीर "हेमशैलाभ सम" है, तथा हनुमान तो सदा ही राम-लक्ष्मण व सीता के हृदय में बसे हुए हैं।

इधर त्रिषष्टिशलाकापुरुष, पर्व ७ में हेमचंद्र ने उपर्युक्त में से कई विशेषणों को शून्य कर दिया। उन्होंने हनुमान को गृहस्थ, हजारों कन्याओं से रमण करने वाला, साहसी एवं विद्याओं के साधक के रुप में चित्रित किया है। त्रिषष्टिशलाकापुरुष, पर्व ७ के अध्याय तीन के अनुसार यौवनवय को प्राप्त कर हनुमान ने सभी कलाओं को प्राप्त किया एवं विद्याओं की सम्यक् साधना की। [46] वीर हनुमान ने रावण के साथ वरुण से युद्धार्थ प्रस्थान किया। देखते ही देखते हनुमान ने वरुण-पुत्रों को पशुओं की तरह बाँध दिया। [47] विजय के पश्चात् वरुण ने अपनी पुत्री सत्यवती हनुमान को सौंपी। [48] रावण ने भी लंका में आकर अपनी बहन चंद्रनखा की पुत्री अनंगकुसुम को भी हनुमान को सौंप दिया। [49] इसी प्रकार सुग्रीव ने पद्मरागा, नल ने हरिमालिनी एवं अन्य राजाओं ने भी अपनी हजारों पुत्रियों को हनुमान को सौंपा। [50]

सीता की खोज के लिए हनुमान जब आकाशमार्ग से लंका जा रहे थे उस समय शलिका विद्या के किले के रक्षक वज्रमुख की पुत्री लंकासुन्दरी से हनुमान का भयंकर युद्ध हुआ। [51] हनुमान ने क्षण भर में ही उसे निःशस्त्र कर दिया। हनुमान की वीरता से आश्चर्यचकित हो वह कामवासना से हनुमान के प्रति आकर्षित हो गई। [52] लंकासुन्दरी ने कहा कि तुम मेरे पिता के हत्यारे हो, तथा तुम ही मुझे वर रुप में प्राप्त होंगे, ऐसी साधुओं की भविष्यवाणी है। अतः हे हनुमान, आप मेरा पाणिग्रहण करो। [53] इसी समय हनुमान ने लंकासुन्दरी से गांधर्व विवाह किया। [54]

उस समय एक तरफ जब हनुमान एवं लंकासुन्दरी रात्रि भर निर्भय होकर रतिक्रीड़ा में मस्त थे [55] तब दूसरी तरफ रजस्वला स्त्री की तरह पति से दूर चक्रवाकी क्रंदन रही थी, कामीजनों को मिलने के लिए उत्सुक दूतियां निश्शंक चेष्टाएँ करने लगी थीं एवं झांझरयुक्त अभिसारिकाएँ श्यामवस्त्रयुक्त कस्तूरी से विलेपित हो घूम रही थीं। [56] इस प्रकार हनुमान ने रात भर लंकासुन्दरी के साथ देहसुख प्राप्त किया। इतना ही नहीं, हनुमान के पुत्र भी था, जिसे राज्य देकर हनुमान ने धर्म रत्न मुनि के पास दीक्षा ली। [57] इस प्रकार हजारों कन्याओं से परिणित होकर पुत्रादि, राज्यादि का सुखोपभोग कर हनुमान को दीक्षित करने की यह कल्पना जैनाचार्यों की नव्य देन है।

(४) राम के पूर्वजों का भव्य इतिहास : रामचरितमानस में तुलसी राजा दशरथ का परिचय करवाते हुए लिखते हैं— "अवधपुरी रघुकुल मनि राऊ। बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊ।[58] परन्तु जैनरामायण में हेमचंद्र ने राम के पूर्वजों का भव्य इतिहास प्रस्तुत किया है। यह इतिहास भले ही ब्राह्मण रामकथात्मक ग्रंथपरंपरा से मेल न खाता हो, परंतु जैनाचार्यों का नवीन कल्पना साहस तो अवश्य है ही। त्रिषष्टिशलाकापुरुष, पर्व ७ के सर्ग चार में राम के पूर्वजों का इतिहास दिया है जिसका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—

अयोध्या में ऋषभदेव स्वामी के शासनकाल में इक्ष्वाकु वंशीय सूर्यवंश में असंख्य राजा हुए। बीसवें तीर्थंकर के समय में विजय नामक राजा के हिमचूला नामक उसकी रानी से वज्रबाहु व पुरंदर नामक दो पुत्र हुए। [59] वज्रबाहु का विवाह नागपुर के राजा इभवाहन की रानी चूड़ामणि से उत्पन्न "मनोरमा" से हुआ। [60] वज्रबाहु को एक मुनि के दर्शन मात्र से वैराग्य हो गया एवं उसने संयम ग्रहण किया। उसके पीछे-पीछे उदयसुन्दर, मनोरमा एवं अन्य राजकुमारों ने भी दीक्षा ग्रहण की। [61] अनुकरण करते हुए विजयराजा ने अपने पुत्र पुरंदर को एवं पुरंदर ने अपने पुत्र कीर्तिधर को राज्य देकर संयम ग्रहण किया। [62] कीर्तिधर ने सुकौशल को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की। [63] सुकौशल ने भी अपनी गर्भस्थ रानी चित्रमाला के उदरपुत्र का राज्याभिषेक कर मुनि कीर्तिधर से संयम ग्रहण किया। [64] चित्रमाला ने हिरण्यगर्भ को जन्म

दिया। हिरण्यगर्भ का विवाह मृगावती से हुआ जिसने नधुष नामक पुत्र को जन्म दिया। [65] हिरण्यगर्भ ने नधुष को राज्य देकर विमलमुनि से संयम ग्रहण किया। [66] नधुष की पत्नी सिंहिका पर एक बार नधुष को संदेह हो गया जिससे उसने उसे त्याग दिया परंतु उसके पतिव्रत धर्म पर नधुष को पुनः विश्वास हो गया व रानी को अपनाने से उसके सौदास नामक पुत्र हुआ। [67] नधुष ने सौदास को राज्यभार देकर व्रत ले लिया। [68]

सौदास नरमांसभक्षी था। [69] मंत्रियों को यह खबर मिलते ही उन्होंने सौदास को राज्य पद से उतारकर जंगल में निकाल दिया व उसके पुत्र सिंहरथ को राजा बनाया। [70] जंगल में भटकते हुए सौदास को एक साधु मिला। धर्म-उपदेश सुनकर तथा मद्यमांसादि को त्यागकर वह श्रावक बन गया। [71] उसके बाद सिंहरथ का पुत्र ब्रह्मरथ, ब्रह्मरथ का चतुर्मुख, चतुर्मुख का पुत्र हेमरथ एवं हेमरथ पुत्र शतरथ राजा हुए। [72]

उसके बाद, क्रमशः उदयपृथु, वीररथ तथा रुद्ररथ राजा हुए तत्पश्चात् व्यरथ, मांधाता व वीरसेना राजा हुए। [73] वीरसेना के बाद प्रतिमन्यु, प्रतिबंधु, रविमन्यु एवं वसंततिलक नाम के राजा हुए। [74] आगे क्रमशः कुबेरदत्त, कंथु, शरभ, द्विरद, सिंहदसन एवं हिरण्याकश्यप राजा हुए। [75] आगे इसी इक्ष्वाकुवंश में पुंजस्थल, ककुस्थ एवं रघु हुए।[76] अनेक राजाओं ने मोक्ष गमन किया फिर भी अयोध्या के लिए स्नेही राजा अनरण्य हुए। अनरण्य के दो पुत्र अनंतरथ एवं दशरथ हुए। [77] राजा अनरण्य ने मात्र एक माह के पुत्र दशरथ पर राज्यभार छोड़ बड़े पुत्र अनंतरथ और सहस्त्रकिरण मित्र के साथ व्रत ग्रहण किया। [78] वही दशरथ युवा होकर महान राजा बना एवं उसने अर्हत (जैन) धर्म को धारण किया। [79] दशरथ का विवाह दर्भस्थल नगर के स्वामी सुकौशल राजा की रानी अमृतप्रभा से उत्पन्न अपराजिता नामक पवित्र कन्या से हुआ। दूसरा विवाह कमलसंकुशल नगर के राजा सुबोध तिलक की रानी मित्रा से उत्पन्न कैकेयी नामक कन्या से हुआ। तीसरा विवाह सुप्रभा नामक राजकन्या से हुआ। [80]

प्रथम रानी अपराजिता के गर्भ से जिस पुत्र का जन्म हुआ उसका नाम दशरथ ने लक्ष्मी का निवास स्थल कमल (पद्म) रखा जो कि लोक में ''राम'' नाम से विख्यात हुआ। [81] सुमित्रा के गर्भ से जो पुत्र हुआ दशरथ ने उसका नाम ''नारायण'' रखा जो संसार में ''लक्ष्मण'' नाम से विख्यात हुआ। [82] इसी तरह कैकेयी ने भरत को तथा सुप्रभा ने शत्रुघ्न नामक पुत्र को जन्म दिया। [83] इसी तरह बीसवें तीर्थंकर के समय के राजा विजय से क्रमशः राम-लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न तक की वंशावली का भव्य इतिहास हेमचंद्र ने जैन रामायण में प्रस्तुत किया है जो ब्राह्मण रामकथा परंपरा के लिए नवीन उपलब्धि कही जा सकती है।

(५) दशरथ की मगध-विजय : त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित का यह प्रसंग रानी कैकेयी से जुड़ा हुआ है। तुलसी के मानस से यह सर्वथ भिन्न एवं नया प्रसंग है जो इस प्रकार है— दशरथ एवं जनक पृथ्वी पर घूमते हुए उत्तरापथ की ओर आए। यहां केतुकमंगल नगर के राजा शुभमीति की रानी पृथ्वीश्री से उत्पन्न द्रोणमेघ की बहन कैकेयी के स्वयंवर के सभा मंडप में दशरथ पहुँचे। साक्षात् लक्ष्मी के समान उस कैकेयी ने अनेक राजाओं की उपस्थिति में भी दशरथ के गले में वरमाला पहना दी। [84]

तिरस्कार को सहन न कर सकने वाले वे सभी राजा दशरथ को अकेले जानकर युद्धार्थ सज्जित हो दशरथ को ललकारने लगे। [85] उस समय दशरथ के पक्ष में केवल शुभमीति के अलावा कोई भी नहीं था।[86] उस समय दशरथ ने कैकेयी से कहा— हे प्रिये, अगर तुम हमारी सारथी बन जाओ तो हम इन सभी राजाओं को हरा सकते हैं। बहत्तर विद्याओं में प्रवीण कैकेयी रथ पर आरूढ़ हुई एवं दशरथ धनुष-बाण लेकर शत्रु से लोहा लेने लगे। कैकेयी ने अति वेग से रथ चलाकर सफल सारथीत्व निभाया। इधर दशरथ ने शत्रुओं को रथों सहित ध्वस्त कर दिया एवं बुरी तरह हरा दिया। [88] इस प्रकार समस्त राजाओं को मात देकर दशरथ ने कैकेयी से विवाह किया। [89] विवाह के पश्चात् प्रसन्न राजा ने रानी को वरदान मांगने हेतु कहा [90] परंतु रानी ने कहा— हे स्वामी, मैं समय पर वरदान मागूँगी, आपके पास इसे मेरी अमानत समझिए। [91] इस प्रकार मगधपति से विजय प्राप्त कर दशरथ राजग्रह नगर में रहे। [92] मगध पर इस प्रकार की विजय का यह प्रसंग भी मानस से सर्वथा भिन्न एवं नवकल्पित है।

(६) राम वनवास के नव्य प्रसंग : हेमचंद्र ने अपनी जैन रामायण में राम वनवास प्रसंगान्तर्गत अनेक नए प्रसंगों का सृजन किया है। ये प्रकरण ऐसे हैं जिनका वाल्मीकि रामायण से ले कर छायावादी निराला की शक्तिपूजा तक कहीं भी समावेश नहीं है। हाँ, रविणेश, स्वयंभू आदि जैन राम कथाकारों ने इन प्रसंगों को अवश्य स्थान दिया है। संक्षिप्त में राम वनवास के ये मानस से भिन्न प्रसंग इस प्रकार है—

१. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित में मंत्री वज्रकर्ण व उसके राजा सिंहोदर का वृत्तांत आता हैं। [93] वज्रकर्ण एक साधु से मुनि के बिना किसी अन्य को नमस्कार न करने का नियम लेता है जिसकी जानकारी उसके स्वामी सिंहोदर को होने पर वह उस पर क्रोधित होता है।[94] सिंहोदर ने वज्रकर्ण पर आक्रमण कर उसके राज्य अवंति को उजाड़ दिया। [95] राम-लक्ष्मण को यह समाचार मिलते ही लक्ष्मण ने सिंहोदर को युद्ध में परास्त कर राम के समक्ष प्रस्तुत किया। राम ने दोनों की संधि करवाई जिससे वे दोनों प्रेम से रहने लगे।[97]

२. दूसरा प्रकरण-कल्याणमाळा : बालिखिल्य— रुद्रभूति का आता है। तदनुसार वन में विचरते लक्ष्मण को एक बार कुबेरपुर के राजा कल्याणमाला ने भोजन हेतु निमंत्रित किया। [98] राम उस स्त्री वेशधारी कल्याणमाला को समझ गए। [99] तब उसने अपना वृत्तांत राम को सुनाया। [100] राम को यह ज्ञात होते ही उन्होंने कल्याणमाला के पिता वलिखिल्य को म्लेच्छों से मुक्त कराया। [101]

३. कपिल ब्राह्मण प्रकरण - वन में भटकते हुए राम-लक्ष्मण एवं सीता जल पीने के लिए कपिल ब्राह्मण के घर गए। [102] कपिल पत्नी सुशर्मा ने उन्हें शीतल जल पिलाया। कपिल घर आते ही रामादि पर क्रोधित होकर उन्हें अपशब्द कहने लगा। [013] अब लक्ष्मण ने क्रोधित हो कपिल को आकाश में घुमाकर राम की आज्ञा से पुन: पृथ्वी पर पटक दिया। [104]

४. राम-लक्ष्मण व सीता वन में एक वृक्ष के नीचे ठहरे जहाँ गोकर्ण नामक एक यक्ष रहता था। [105] आठवे बलभद्र व वासुदेव के आगमन को जानकर उस यक्ष ने इनके लिए रामपुरी नामक भव्य नगरी निर्मित कर डाली। [106] वहाँ वह कपिल ब्राह्मण अपनी रानी सुशर्मा के साथ आया जिसे राम ने क्षमा कर दिया एवं धन देकर बिदा किया। [107] राम जब बिदा हुए तो गोकर्ण यक्ष ने राम को ''स्वयंप्रभ'' हार, लक्ष्मण को दो कुंडल एवं सीता को चूड़ामणि व वीणा भेंट दी।[108]

५. विजयपुर नगरी के राजा महिधर व रानी इन्द्राणी की पुत्री वनमाला ने बचपन से ही लक्ष्मण को पति माना था। [109] वनमाला को यह ज्ञात हुआ कि मुझे पिता ने किसी अन्य पुरुष को दे दिया है तब वह आत्महत्या करने लगी। [110] तभी लक्ष्मण वहाँ पहुँच गए एवं वनमाला को बचाकर उसके पिता महीघर को युद्ध में परास्त किया। [111] तब महीधर ने सस्नेह वनमाला लक्ष्मण को सौप दी।

६. अतीवीर्य राजा भरत को अधीन करने के लिऐ एक दिन ससैन्य रवाना हुआ। [112] राम-लक्ष्मण को यह समाचार मिलते ही उन्होंने अपनी संपूर्ण सेना को स्त्रीवेशयुक्त [113] बनाकर अतिवीर्य को हरा दिया व बंदी बनाया। तब अतीवीर्य ने भरत की सेवा-स्वीकार की। [114]

७. राम-लक्ष्मण व सीता जब क्षेमांजलि नगरी पहुँचे तब उन्हें जितपद्मा के स्वयंवर की जानकारी मिली। [115] राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने शत्रुदमन के पाँचों प्रहारों को सहन कर जितपद्मा से विवाह किया।[116]

८. वंशशैल पर्वत पर होने वाली भयंकर ध्वनि से इस क्षेत्र के लोग कष्ट में थे। राम, लक्ष्मण व सीता उस पर्वत पर गए व अपने तेज से उन उपद्रवी मुनियों को कैवल्य ज्ञान प्राप्त करवाया। [118] उन दोनों मुनियों ने राम की पूजा की एवं वंशस्थल के राजा सुरप्रभ ने आकर उस पर्वत का नाम रामगिरी दिया। [119]

(७) राम का ससैन्य, सेतु निर्माण कर नहीं, आकाशमार्ग से लंका गमन : आज तक लगभग यह सार्वजनिक मान्यता रही है कि राम ने समुद्र पर पत्थरों का सेतु बनाकर उसके सहारे समुद्र पार कर लंका गमन किया। परंतु त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित इस दृष्टि से भी मानस से भिन्न खबर देता है। वह यह कि राम ने आकाशमार्ग से लंका को विजय यात्रार्थ प्रयाण किया। [120] विद्याधरों द्वारा युद्ध के वाद्ययंत्रों को बजाने से उनका जो भयंकर नाद हुआ उससे संपूर्ण आकाश गुंजित हो गया। [121] संपूर्ण आकाशस्थल रथों, अश्वों एवं गजादि वाहनों से भर गया। [122] ससैन्य समुद्र पर प्रयाण करते हुए राम ने बलंधर नगर के राजा समुद्र एवं सेतु दोनों को युद्ध में परास्त किया, फिर वे सुवेल पर्वत पर आए। [123] इस प्रकार आकाश मार्ग से संपूर्ण सेना का लंकागमन जैन रामकथात्मक ग्रंथों की नई कल्पना है।

(८) लक्ष्मण को मेघनाद ने नहीं, स्वयं रावण ने मूर्छित किया : लक्ष्मण-मेघनाद युद्ध मानस का महत्वपूर्ण प्रसंग है। इसका कारण यह है कि वीर लक्ष्मण को रावण पुत्र मेघनाद ने वीरघातिनी शक्ति से मूर्छित कर दिया था। [124] हेमचंद्र ने लक्ष्मण को मूर्छित करवाने का यह कार्य मेघनाद से न करवा कर स्वयं रावण से करवाया है। तदनुसार-रावण ने ज्योंही विभीषण को मारने के लिए अमोधविजया शक्ति फेंकी त्योंही राम के संकेत पर विभीषण को बचाने के लिए लक्ष्मण बीच में आ गए। [125] शक्ति लक्ष्मण के हृदय पर लगते ही वे मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। संपूण सैन्य में हा-हाकार मच गया। रावण को संतोष हुआ कि लघुभ्राता की मौत को कायर राम सहन नहीं कर सकेगा एवं स्वयं मर जाएगा। यह सोच रावण लंका को चला गया। [126]

(९) लक्ष्मण की मूर्छा, हनुमान द्वारा संजीवनी लाने से नहीं, विशल्या के जल स्पर्श से दूर हुई : शक्ति लगने से जब लक्ष्मण घायल एवं मूर्छित हो गए तो एक विद्याधर ने, जो संगीतपुर का राजपुत्र था, लक्ष्मण की मूर्छा दूर करने का उपाय बताया। [127] उसके अनुसार विशल्या का स्नात जल मंगवाने से लक्ष्मण ठीक होंगे। [128] तब राम की आज्ञा से भामंडल, हनुमान एवं अंगदादि वायुवेग से विमान द्वारा अयोध्या भरत के पास गए। भरत सहित वे राजा द्रोणघन से मिले व उसकी पुत्री विशल्या की याचना की, द्रोणघन ने अन्य एक हजार कन्याओं सहित विशल्या को लक्ष्मण के लिए सौंप दिया। विशल्या आई एवं उसके स्पर्शमात्र से वह शक्ति लक्ष्मण के शरीर से बाहर निकल गई। निकलते ही हनुमान ने उसे उछलकर पकड़ लिया तथा उसके क्षमा मांगने पर छोड़ दिया। [129]

(१०) रावण का वध राम ने नहीं लक्ष्मण ने किया : सीता को यह कहकर कि "आज राम-लक्ष्मण को मार कर तुझे बलात्कर से

भोगूँगा''[130] रावण युद्धभूमि में आया। उस दिन राम-रावण का अतिभयंकर युद्ध हुआ। लक्ष्मण रावण पर एक के बाद एक बाण छोड़ने लगा। भयातुर रावण ने विद्या से अपने अनेक रूप युद्ध भूमि में उपस्थित कर दिए। [131] गरुड़ पर आरूढ हो चक्र लक्ष्मण पर फेंका। चक्र ने लक्ष्मण की प्रदक्षिणा की तथा उनके हाथ में स्थिर हो गया। यह देख रावण अति चिंतित हो गया। [132] विभिषण ने जब रावण की ऐसी दशा देखी तो पुन: वह उसे समझाने लगा। इधर लक्ष्मण ने उसी चक्र से रावण की छाती को चीर दिया। [133] ज्येष्ठ मास की कृष्णा एकादशी को रावण मृत्यु को प्राप्त कर चौथे नरक में चला गया। रावण की मृत्यु एवं राम की विजय के उल्लास में वानर सेना नृत्य करने लगी।[134] इस तरह रामकथा का केन्द्रीय भाव ''राम द्वारा रावण का संहार (जैनाचार्यों) ने बदल दिया एवं रावण को लक्ष्मण के हाथों नरक में भिजवाया है।''

(११) राम का सीता समेत रावण के महलों में छः माह तक निवास करना : रावण वध के पश्चात् राम ने सीता को प्राप्त कर लक्ष्मण, अंगद, विभीषण, सुग्रीवादि समस्त कपियों के साथ लंका में प्रवेश किया। [135] फिर भुवनालंकार हाथी पर आरूढ़ हो राम रावण के निवास पर पहुँचे। विभीषण की प्रार्थना पर उसके घर जाकर राम ने देवपूजा, स्नान व भोजनादि क्रियाएं कीं। [136] पुन: रावण के निवास पर जाकर सिंहोदर आदि की कन्याओं के साथ विधिपूर्वक विवाह किए, जो कन्याएँ राम व लक्ष्मण को पूर्व में दी जा चुकी थीं। [137] इस प्रकार विवाहादि के पश्चात् राम ने रावण के महलों का छः माह तक सुखोपभोग किया।

यह प्रसंग जैन रामायण की नव-कल्पना है क्योंकि अजैन परंपरा में रावण वध के पश्चात् राम सीता की अग्नि परीक्षा लंका में ही लेते हैं। [138] ''एवं शीघ्र ही अयोध्या के लिए प्रस्थान कर देते हैं। [139]''

(१२) अयोध्या आगमन पर प्रथम लक्ष्मण का राज्याभिषेक : छ: माह तक लंका में रहने के बाद राम अनुचरों सहित अयोध्या पहुँचे। [140] आनंदोत्सव की समाप्ति पर भरत ने राम को राज्यग्रहण करने का निवेदन किया। [141] वैराग्य उत्पन्न भरत ने एक हजार साधुओं के साथ दीक्षा ग्रहण की। [142] अब नगरजनों, विद्याधरों आदि ने राम को राज्यभिषेक के लिए निवेदन किया। [143] तब राम बोले— तुम प्रथम इस वासुदेव लक्ष्मण का राज्याभिषेक करो। [144] उन सब ने राम की आज्ञा से पालनार्थ ऐसा ही किया। फिर बलदेव राम का भी राज्याभिषेक किया। राम एवं लक्ष्मण— आठवें बलदेव एवं वासुदेव दोनों अयोध्या का राज्य करने लगे। [145]

निश्चित रूप से अयोध्या जाकर प्रथम लक्ष्मण का राज्याभिषेक जैन रामकथाकारों की अपनी मौलिक कल्पना है।

(१३) लक्ष्मण की सोलह हजार तथा राम की भी अनेक रानियों का होना : ब्राह्मण परंपरानुगानी मानस में राम की पत्नी का नाम सीता एवं लक्ष्मण की पत्नी का नाम उर्मिला है। दोनों भाइयों ने अतिरिक्त कोई विवाह नहीं किया था। परंतु हेमचंद्र ने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित में राम व लक्ष्मण के रनिवास का वर्णन निम्न प्रकार से किया है।

लक्ष्मण के सोलह हजार रानियाँ हुईं, जिनमें विशल्या, रूपवती, वनमाला, कल्याणमाला, रत्नमाला, जितपद्मा, अभयवती एवं मनोरमा ये आठ पट्टरानियाँ हुईं। इनसे लक्ष्मण के ढाई सौ पुत्र हुए, जिनमें आठ पट्टरानियों के आठ पुत्र मुख्य थे। ये आठ-पुत्र इस प्रकार थे— विशल्या का श्रीधर, रूपवती का पृथ्वी तिलक, वनमाला का अर्जुन, जित्पदमा का श्रीकेशी, कल्याणमाला का मंगल, तथा मनोरमा का पुत्र सुपार्श्वकीर्ति। रतिमाला का पुत्र विमल तथा अभयवती का सत्यकार्ति नामक पुत्र था। राम की चार रानियाँ थी, जिनके सीता, प्रभावती, रतिनिभा एवं श्रीदामा नाम थे। [146]

(१४) सीता का स्वयं के हाथों केश उखाड़ कर जैन धर्म में दीक्षित होना : तुलसी ने मानस को राम के राज्यभिषेक के साथ ही विराम दिया हैं। वल्मीकि रामायण में लव-कुशकांड के अंतर्गत राम द्वारा सीता का परित्याग एवं सीता के पृथ्वी में समाने तक का वृत्तांत मिलता है। परंतु जैनाचार्य हेमचंद्र ने अपने पूर्ववर्ती जैन रामकथाकारों का अनुगमन करते हुए यह प्रकरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

लोकापवाद को मिटाने के लिए राम ने सीता को लोक के सामने कुछ दिव्य करने का आदेश दिया। [147] तदनुसार सीता ने अग्नि में प्रवेश कर अपने सतीत्व को प्रमाणित कर दिया। [148] तब राम ने सीता से क्षमा मांगी एवं घर चलकर पूर्व की तरह रहने का आग्रह किया।[149] सीता ने कहा— "यह मेरे कर्मों का दोष है। अब मैं दीक्षा ग्रहण करुँगी। [150] यह कह कर सीता ने अपनी मुष्टि से केश उखाड़कर राम को अर्पित किए तथा जयभूषण मुनि से दीक्षा ग्रहण की। [151]"

संसार से सीता की विरक्ति का यह दृश्य जैन समाज की धर्म प्रचारात्मक मौलिक एवं नवीन कल्पना है।

(१५) रामकथा के समस्त पात्रों का जैनधर्म में दीक्षित होना : जैन रामायण की कथा को अगर हजारों ऐतिहासिक एवं कल्पनात्मक पात्रों को जैन धर्म में दीक्षित करने की कथा कही जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। हेमचंद्र ने कथा के प्रारंभ से अंत तक जितने भी पात्रों की कल्पना की है इन सभी को उन्होंने जैन धर्म में दीक्षित कर लिया है। कथा में आए पात्रों के अतिरिक्त भी स्थान-स्थान पर दीक्षा लेने वालों के साथ हजारों राजा-रानियों के जिन शासनान्तर्गत दीक्षित होने के वृत्तांत हेमचंद्राचार्य ने प्रस्तुत

किए हैं। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित एक विशाल ग्रंथ है। इसका सातवां पर्व जैन रामायण नामसे विख्यात है। आश्चर्य है कि केवल इस पर्व में ही लगभग साठ-हजार राजा रानियाँ एवं अन्य लोगों ने जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण की है। तो फिर इस संपूर्ण विशालकाय ग्रंथ के दस पर्वों में दीक्षा लेने वालों की संख्या की कल्पना पाठकवृन्द सहज ही कर सकेंगे।

जैन रामायण के प्रथम अध्याय में वाहन, [152] तडित्केस, [153] नीलकंठ [154] एवं अशनिवेश [155] को दूसरे अध्याय में वैश्रवण, [156] नरेन्द्र[157] (वालि के पिता) बाली [158] सहस्त्राशुं, [159] अनरण्य, [160] ब्रह्मरूचि, [161] कूर्मि, [162] (स्त्री) सुमित्र, [163] आनंदमाली, [164] एवं इन्द्र [165] के दीक्षा लेने का वर्णन आया है। तीसरे अध्याय के अंतर्गत केवल सुकंठ के दीक्षा की चर्चा है। [166] चौथे अध्याय के प्रारंभ में वज्रबाहु, उदयसुन्दर, मनोरमा एवं अन्य पच्चीस राजकुमारों के दीक्षा का विवरण प्राप्त होता है। [167] तदनन्तर इसी अध्याय में विजयराजा, [168] पुरंदर, [169] कीर्तिधर [170] एवं हिरण्यगर्भ [171] दीक्षा ग्रहण करते हैं। सौदास [172] व सूभूति, [173] अनुकोशा, [174] पिंगल, [175] कुंडलमुंडित, [176] चंद्रगति, [177] नंदिवर्धन, [178] कुलनंदन व सूर्यजय [179] तथा दशरथ [180] की दीक्षा का विवेचन भी इसी अध्याय में आया है। पाँचवे अध्याय में कपिल ब्राह्मण, [181] अतिवीर्य, [182] वसुभूति व उसके पुत्र [183] उदित-मुक्ति, कुलभूषण, देशभूषण व महालोचन, [184] सुंदक व उसके पाँच सौ राजपुत्र[185] तथा पुरंदरकश्यय, [186] इन सभी के जैन व्रत धारण करने का वृत्तांत हेमचंद्र ने दिया है।

अध्याय छः एवं सात में दीक्षा का कोई प्रसंग प्राप्त नहीं होता। आठवें अध्याय से दसवें अध्याय तक पुनः दीक्षार्थियों की लम्बी लाइन नजर आती है। आठवें अध्याय में रतिवर्धन, [187] कुंभकर्ण, मंदोदरी, इन्द्रजीत व मेघनाद, [188] ऋषभदेव तथा अन्य चार हजार राजा, [189] भरत व एक हजार राजा [190] तथा भरत की माता कैकेयी [191] के दीक्षा का वर्णन है। नवें अध्याय में केवल जयभूषण मुनि [192] एवं सीता [193] ही दीक्षित हुए हैं।

दसवें अध्याय में भी अनेक दीक्षार्थियों के वृत्तांत हैं। नयनानंद[194], [195] वेगवती, [196] प्रभास, [197] पुनर्वसु, [198] प्रियंवर व शुभंकर [199] तथा राम का सेनापति कृतांतवदन [200] के साधु बनने का वर्णन इसी अध्याय में है। तत्पश्चात् रामकथा के शीर्षपात्रों के दीक्षा लेने का वर्णन आता है। जिनमें— लक्ष्मण के २५० पुत्र, [201] हनुमान, [202] अन्य ७५० राजा-रानियाँ, [203] लवकुश, [204] इन्द्रजीत पुत्र व देवता, [205] शत्रुघ्न, सुग्रीव, विभीषण एवं विराध [206] आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। दीक्षा लेने की अंतिम कड़ी के रूप में स्वयं राम, [207] सोलह हजार राजाओं [208] एवं सैतीस हजार रानियों [209] के साथ जैन धर्म में दीक्षित होकर "राम मुनि" की संज्ञा प्राप्त करते हैं। इस प्रकार जैनाचार्य हेमचंद्र की जैन रामायण के समस्त पात्रों को दीक्षा देने की योजना पूर्ण होती है।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित पर्व 7 में छोटे-मोटे सैकड़ो ऐसे प्रसंग हैं जिन्हें इसी परंपरा में रखा जा सकता है। इस परंपरा की इन नवीन उद्भावनाओं के पीछे जैन धर्म के प्रचार-प्रसार के अतिरिक्त भी कोई विशिष्ट आधार हो सकता है। यह एक स्वतंत्र शोध का विषय भी बन सकता है।

इन जैनरामकथात्मक नवीन प्रतिस्थापित मूल्यों की प्रामाणिकता जब तक संदिग्ध रहेगी तब तक यह तथ्य ब्राह्मण परंपरानुगामी रामकथा पाठकों के गले उतरने वाले नहीं हैं। ऋग्वेद को विद्वानों ने विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ माना है। जब इस मूलाधार स्रोत (वेद) से लेकर वर्तमान तक भी परंपरानुगामी रामकथात्मक मूल्य थे, हैं और रहेंगे। तब, इन जैन मूल्यों को किस प्रकार जगत हृदयंगम करेगा यह एक विचारणीय प्रश्न है। इन मान्यताओं को प्रमाणित करने में जैन परंपरा के बारहवीं शताब्दी के पूर्व के संस्कृत, अपभ्रंश एवं प्राकृत के ग्रंथ ही सहायता देते हैं।

हर युग का अपना साहित्य तत्कालीन विशेषताओं से युक्त होता है, इसमें संदेह नहीं। परंतु लेखक या कवि की सफलता उसके कथ्य के सार्वजनीकरण में छिपी रहती है जिसका हमें आज भी आभास-सा प्रतीत होता है। समाधानार्थ वर्तमान जैन कवि-लेखकों आदि को इस पर विचार करना होगा। इन्हें मध्यम मार्ग अपनाना होगा। अगर रामकथात्मक लेखक ब्राह्मण एवं श्रवण परंपराओं की मान्यताओं को मिलेजुले रूप में एवं व्यावहारिकता से युक्त बनाकर आज भी प्रस्तुत करें तो मैं समझता हूँ, उनके कथ्य को ब्राह्मण परंपरा के लोग भी सर्हष स्वीकार करेंगे। इससे केवल ब्राह्मण परंपरा को ही नहीं श्रमण परंपरा को भी लाभ प्राप्त होगा एवं दोनों परम्पराएँ धार्मिक रूप से एक दूसरे के नजदीक पहुँच सकेंगी।

इसमें सबसे बड़ा फायदा हमारी राष्ट्रीय एकता के निर्माण का होगा, साथ ही सांस्कृतिक समत्व एवं भावात्मक एकता अधिक बलवती होगी। मेरा मानना है कि इन मान्यताओं के पीछे साम्प्रदायिक भाव न हो और गहरे आध्यत्मिक ''ऐतिहासिक रहस्य छिपे हों तो प्रकाश में आने चाहिए। भविष्य में इनपर नवीन शोध से अनेक नव्य तथ्यों का प्रकाशन हो सकता है।''

: संदर्भ-सूची :

१. त्रि. शु. पु. च. पर्व ७ - १/१३१
२. वही - १/१५१, १५८, १५५, १५७
३. वही - १०/६८
४. वही - २/२१, २२, २७, ३०, ३३, ३५, ७३,
५. वही - २/८९-९०
६. वही - २/२७७

७. वही - २/३३७
८. वही - २/५८
९. वही - २/५७२
१०. वही - २/६०४, ६२२
११. वही - २/१, १७, १९, १६०
१२. वही - २/१८६, १९४, २०३, २०४, २१५
१३. वही - २/२५५
१४. वही - २/१७६
१५. वही - २/५०५, ५१७
१६. वही - २/५८०-६००, ६०४, ६२२
१७. वही - २/६२५, ६३१
१८. त्रिशपुच पर्व ७ - २/६५१
१९. वही - २/६५२
२०. वही - २/६५३
२१. वही - ३/३-४
२२. वही - ३/५-१५
२३. वही - ३/१७-२३
२४. वही - ३/२५-२९
२५. वही - ३/३०-३५
२६. वही - ३/३७-४३
२७. वही - ३/४६
२८. वही - ३/४७-५०
२९. वही - ३/५१-५२, ६२-७५
३०. त्रिशपुच पर्व ७ - ३/८२
३१. वही - ३/८९-९७
३२. वही - ३/१०५-१११
३३. वही - ३/११२-११७
३४. वही - ३/१२२-१२३
३५. वही - ३/१३६-१४७
३६. वही - ३/१४९-१५७
३७. वही - ३/१५८-१८३
३८. वही - ३/१८४-१८५
३९ वही - ३/२४१-२५७
४०. वही - ३/१९८-२०९, २१४-२१६
४१. वही - ३/२२०-२३१

४२. वही - ३/२४१-२५७
४३ वही - ३/२६३-२७३
४४. त्रिशपुच पर्व ७-३/२७४-२७८
४५. वही - ३/२७९-२८०
४६. वही - ३/२७९
४७ वही - ३/२८४, २९३
४८. वही - ३/३००
४९. वही - ३/३०१
५०. वही - ३/३०२
५१. वही - ६/२६८-२७५
५२. त्रिशपुच पर्व ७ - ६/२७५-२७६
५३. वही - ६/२७७-२७९
५४. वही - ६/२८०
५५. वही - ६/३०८
५६. वही - ६/२८६, २९७, २९८
५७. वही - ६/१११
५८ वही - मानस - बाल - १८८
५९. त्रिशपुच पर्व ७ - ४ / ३-५
६०. वही - ४/६-७
६१. त्रिशपुच पर्व ७ ७-४/९-२७
६२. वही - ४/२८-२९
६३. वही - ४/३७
६४. वही - ४/४८-५०
६५. वही - ४/६६-६८
६६. वही - ४/७०
६७. वही - ४/७१-८४
६८. वही - ४/८५
६९. वही - ४/९३-९४
७०. वही - ४/९६-९७
७१. वही - ४/८९-१००
७२. वही - ४/१०६
७३. वही - ४/१०७
७४. वही - ४/१०८
७५. वही - ४/१०९
७६. वही - ४/११०

७७. वही - ४/१११
७८. त्रिशपुच पर्व ७-४/११३-११४
७९. वही - ४/११६-१२०
८०. वही - ४/११२-१२५
८१. वही - ४/१७७-१८४
८२. वही - ४/१८७-१९२
८३. वही - ४/२०४-२०५
८४. त्रिशपुच (गुजराती भाषांतर) पृ. ४३
८५. त्रिशपुच पर्व ७ - ४/१६०
८६. वही - ४/१६१
८७. वही - ४/१६२
८८. त्रिशपुच. पर्व ७-४/१६३-१६६
८९. वही - ४/१६७
९०. वही - ४/१६८
९१. वही - ४/१६९
९२. वही - ४/१७३
९३. वही - ५/५-६
९४. वही - ५/११-१८
९५. वही - ५/२९-३३
९६. वही - ५/४५-६०
९७. वही - ५/६१-६४
९८. वही - ५/७७-८१
९९. वही - ५/८२-८७
१००. वही - ८५-९५
१०१. त्रिशपुच पर्व ७-५/१२०-१२१
१०२. वही - ५/१२४-१२५
१०३. वही - ५/१२७ - १२८
१०४. वही - ५/१२९-१३०
१०५. वही - ५/१३६
१०६. वही - ५/१३७-१३९
१०७. वही - ५/१५५-१६०
१०८. वही - ५/१३६
१०९. वही - ५/१६८-१७१
११०. वही - ५/१७३-१८२
१११. वही - ५/१८५-१८९

११२. वही - ५/११२-११३
११३. वही - ५/१५-१६
११४. वही - ५/२०९-२१०
११५. वही - ५/२१८-२२२
११६. वही - ५/२४२-२४५
११७. त्रिशपुच. पर्व ७-५/२५९-२६२
११८. वही - ५/२६३-२६९
११९. वही - ५/३२०-३२१
१२०. वही - ७/१
१२१. वही - ७/४
१२२. वही - ७/५
१२३. वही - ७/६ - ११
१२४. मानस लंका ०-५२-५४
१२५. त्रिशपुच. पर्व ७-७/२१२-२१३
१२६. वही - ७/२२०-२२४
१२७. त्रिशपुच पर्व ७-७/२६३-२६८
१२८. वही - ७/२८२-२८३
१२९. वही - ७/३५-३५५
१३०. वही - ७/२८४-३०२
१३१. वही - ७/३५६-३६६
१३२. वही - ७/३६७-३७१
१३३. वही - ७/३७२-३७६
१३४. वही - ७/३७७
१३५. वही - ८/३६
१३६. वही - ८/४५-४९
१३७. वही - ८/५५-५६
१३८. मानसं लंका - १०८
१३९. वही - ८/- ११६ क से ११८ तक
१४०. वही - ८/७५-७७
१४१. वही - ८/१५५
१४६. त्रिशपुच. गुजराती (पृष्ठ. १२९)
१४७. त्रिशपुच पर्व ७-९/१८४-१८६
१४८. वही - ९/१८७-२१२
१४९. वही - ९/२२८
१५०. वही - ९/२२९-२३०

१५१. वही - १/२३१-२३३

१५२. त्रिशपुच. पर्व ७-१/४

१५३. वही - १/४२

१५४. वही - १/५९

१५५. वही - १/८८

१५६. वही - २/१२५

१५७. वही - २/१७०

१५८. वही - २/२६६

१५९. वही - २/३५७

१६०. वही - २/३६०

१६१. वही - २/५०७

१६२. वही - २/५०९

१६३. वही - २/५४३

१६४. वही - २/६४०

१६५. वही - २/६४८

१६६. वही - २/१७१

१६७. वही - २/२७

१६८. वही - २/२९

१६९. वही - ४/३०

१७०. वही - ४/३७

१७१. वही - ४/७०

१७२. वही - ४/१००

१७३. वही - ४/२१३

१७४. वही - ४/२३०

१७५. वही - ४/२३४

१७६. वही - ४/३८९

१७७. वही - ५/३९८

१७८. वही - ५/४१४

१७९. वही - ५/३२२

१८०. वही - ५/५२९

१८१. वही - ५/१६२

१८२. वही - ५/२२६

१८३. वही - ५/२८०

१८४. वही - ५/३०७, ३०९

१८५. वही - ५/३४२

१८६. वही - ५/३६८

१८७. त्रिशपुच. पर्व ७ - ८/३०

१८८. वही - ८/३४

१८९. वही - ८/११३

१९०. वही - ८/१४९

१९१. वही - ८/५१

१९२. वही - ८/१९९

१९३. वही - ८/२३३

१९४. वही - १०/४८

१९५. वही - १०/५०

१९६. वही - १०/६५

१९७. वही - १०/९६

१९८. वही - १०/७७

१९९. वही - १०/८६

२००. वही - १०/८८

२०१. वही - १०/१०४

२०२. वही - १०/१११

२०३. वही - १०/११२

२०४. वही - १०/१३८

२०५. वही - १०/१०६

२०६. वही - १०/१७७

२०७. वही - १०/१७७

२०८. वही - १०/१८०

२०९. वही - १०/१८१

7
उपसंहार

चिरकालीन भारतीय आदर्शों तथा समसामयिक मूल्यों के बीच रामकथ्यात्मक यात्रा भारतीय मनीषा की बौद्धिक एवं भावनात्मक प्रेरणाओं की एक विशिष्ट दिशा का संकेत प्रदान करती है। सतत परिवर्तनशील युग और परिवेश के प्रश्नों तथा अनेक प्रकार की समस्याओं के समाधानार्थ व्यक्तित्व के मौलिक गुण अनिवार्यत: रामकथा के ही केन्द्रीय पात्रों के मौलिक तथा अवान्तर चरित-सूत्रों से घटित हुए प्रतीत होते हैं। समय विशेष के अंतर्गत राष्ट्र निर्माण के लिए जो प्रसंग एवं पात्र आधार रहते हैं, उन्हें एक सच्चा साहित्यकार अपनी लेखनी से वंचित कैसे कर सकता है? इस दृष्टि से रामकाव्य हमारे जातीय जीवन की अनवरत सफलता का प्रतीकात्मक इतिहास है इसमें संदेह की गुँजाइश नहीं।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व 7 (जैन रामायण) पर आधारित रामकथात्मक साहित्य के मानमूल्यों का वैचारिक प्रयास पूर्व के अध्याय में किया गया है। निश्चित है कि रामकथात्मक शोध का क्षेत्र अत्यंत विशाल एवं भव्य है। अब तक ऐसे अनेक कार्य हो चुके हैं। वैसे मूलत: मेरा पी.-एच. डी. का शोधग्रंथ तुलनात्मक है जिसमें मैंने, जैन कवि स्वयंभूकृत पदमचरित व मानस का तुलनात्मक अध्ययन (दिक्षित ओमप्रकाश), ''पदमचरित व मानस का तुलनात्मक अध्ययन'' (शर्मा देवनारायण), पदमचरित व मानस का तुलनात्मक अध्ययन (डॉ. प्रा. नरसिंह गजानन साठे), पद्मपुराण और रामचरितमानस (डॉ. रमाकांत शुक्ल) आदि के समानांतर साहित्यिक शोध का प्रयास किया है। परंतु इस कृति का अपना विशेष महत्व यह है कि जैनाचार्य हेमचंद्र जैन साहित्य के प्रकांड विद्वान एवं महान कवि रहे हैं। परंतु राष्ट्रभाषा में उनके व्यक्तित्व एवं

कृतित्व पर आज दिन तक कोई पुस्तक सामने नहीं आई। इसके साथ ही साथ जैन रामायण (त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व ७) जैसा रामकथात्मक साहित्य शोध के अभाव में जनमानस से लुप्तप्राय रहा। मैंने इस श्रेष्ठ रचना को सरल कथावस्तु के सहारे आम आदमी तक पहुँचाने का लघु प्रयास किया है। ऐसे प्रयास अंतिम नहीं होते। वर्तमान शोध में भावी शोध का अप्रत्यक्ष दर्शन एक सहज अनुभूति है। प्रथम अध्याय 'जैन रामकथा परंपरा' के अंतर्गत रामकथात्मक जैन साहित्य का प्रारंभ से अंत तक सांक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया गया है। यह अनुच्छेद जैन परंपरा में रामकथा की व्यापकता को उजागर करता है। व्यक्तित्व एवं कृतित्व नामक दूसरे अध्याय में जैनाचार्य हेमचंद्र के जीवन मूल्यों की जानकारी के साथ-साथ इनकी महान काव्य सृजन प्रतिभा के दर्शन भी होते हैं। तीसरा अध्याय त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व ७ का दार्शनिक पक्ष स्पष्ट करता है। इस अध्याय में जैन दर्शन का कुछ विस्तारपूर्वक एवं स्पष्ट विवेचन करने का लक्ष्य रहा हैं ताकि जैन दर्शन के तत्वों की जानकारी अजैन पाठकवृन्दों को भी हो सके।

चौथा अध्याय केन्द्रीय है, जिसमें श्रमण परंपरा की रामकथात्मक मान्यताएं उजागर हुई हैं। यह अध्याय कृति की आत्मा है। कथावस्तु नामक इस अध्याय में त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व ७ के लगभग ३००० श्लोकों को कथाबद्ध कर विभिन्न शीर्षकों में सरल रुप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। पंचम अध्याय 'काव्य सौष्ठव' में काव्य कला के समस्त अंगों, यथा— रस, छंद, अलंकार, वर्णन, भाषा, संवाद, काव्यरुप, आदि पर सोदारहण विवेचना की गई है। अंत में जैन रामायण की सूक्तियों के अंतर्गत कृति में आए सुभाषितों की लम्बी सूची प्रस्तुत कर नीतिपरक महत्ता को दर्शाया गया है। अध्याय छः में कुछ ठोस जैन रामकथात्मक नवीन मान्यताओं को प्रस्तुत किया गया है। यह अध्याय मेरी दृष्टि से अधिक महत्व पूर्ण रहेगा क्योंकि ब्राह्मण तथा श्रमण परंपरा की भिन्न मान्यताओं का चित्र इससे स्पष्ट हो जाता है तथा नए शोधार्थियों के लिए चिंतन का मार्ग प्रशस्त होगा। रामकथा परंपरा वैदिक काल से अनवरत चली आ रही है। ऋग्वेद, वाल्मीकि रामायण, महाभारत (रामोपाख्यान), योगवासिष्ठ, अध्यात्म रामायण, आनंद रामायण, महा रामायण आदि में रामकथा के महान मूल्य समाविष्ट हुए हैं। संस्कृत के काव्यग्रंथों— रघुवंश, जानकीहरण, प्रतिमा, अभिषेक, महावीरचरित, उत्तमरामचरित, रावणवध, अनर्धराघव, बालरामायण, हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव आदि को भी रामकथात्मक कहा जा सकता है। जैन व बौद्ध विद्वानों ने भी राम को क्रमशः महापुरुष एवं बोद्धित्सव मानकर साहित्य सृजन किया। पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, वायुपुराण, ब्रह्मपुराण आदि में भी संक्षिप्त रामकथा विवेचन है।

हिन्दी साहित्य के समस्त कालों में राम काव्य-चितेरे रहें। भक्तिकाल में रामानंद, अग्रदास, ईसरदास, विष्णुदास, सूरदास आदि रामकाव्य के प्रणेता थे। तुलसी इस काल के रामकाव्य के प्रधान सुमेरु थे। रीति एव वर्तमान काल में भी कवियों का रामकथात्मक सृजन जनमानस के लिए नव प्रेरणाओं का स्रोत रहा।

इन कविवृन्दों में हेमचंद्र ने त्रिषष्टिशलाकापुरुषों में राम को स्थान देकर महान साहित्यिक योगदान किया है।

जैनाचार्य हेमचंद्र के व्यक्तित्व का अंकन मेरे लिए तो पंगु के गिरी लांघने जैसा होगा। क्योंकि जिस महान प्रतिभा ने राज्यसत्ता को धर्मानुसार अनुसरण करवाया हो तथा शैव व वैष्णव राजाओं (कुमारपाल, सिद्धराज आदि) को जैन धर्म में समन्वित कर जैन सिद्धांतों को समस्त राज्य में लागू करवाने का सफल प्रयत्न किया हो, ऐसे गंभीर व्यक्तित्व को किन शब्दों में आंका जाए। गुर्जर भूमि को अहिंसामय बनाने का एक मात्र श्रेय हेमचंद्राचार्य को ही जाता है। उनके लिए तेजस्वी, कवि, आकर्षक साहित्योपासक, शास्त्रवेता, आत्मनिवेदक, योगी, धर्मप्रचारक, मातृ-पितृ भक्त आदि सभी विशेषण भी अपूर्ण लगते हैं। मेरी राय में हेमचंद्र के लिए देशोद्धारक, ज्ञानसागर, गुजरात के चेतनदाता एवं कलिकाल सर्वज्ञ जैसे विशेषण ही व्यक्तित्व के परिचायक सिद्ध होंगे।

हेमचंद्र का साहित्यिक योगदान अप्रतिम है। अंग ग्रंथ, वृत्तियाँ, व्याकरण, योगशास्त्र, द्वयाश्रय, छंडोऽनुशासन, काव्यानुशासन, नामसंग्रह, सिद्धहेम शब्दानुशासन, नामसंग्रह तथा त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित जैसे कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना कर आपने संस्कृत में नव आकर्षण उपस्थित किया। वस्तुतः आपकी साहित्यिक प्रतिभा असंदिग्ध है।

हेमचंद्र महाकवि होने के साथ महान दार्शनिक भी थे। इनका दार्शनिक अंचल असीम, अमूल्य एव महत्वपूर्ण है। इनका दर्शन जैन दार्शनिक मान्यताओं से अभिप्रेरित भले ही रहा हो पर विध्वंसात्मक नहीं है। इन्होंने माया, जगत, ईश्वर, जीव, भक्ति, मोक्ष, नामजप, स्वर्ग-नरक, भाग्यवाद, अहिंसा, सत्संग, गुरुभक्ति आदि मुद्दों पर विचार प्रस्तुत कर रामकथात्मक दार्शनिक व्यापकता में वृद्धि की है।

हेमचंद्र ने जैन रामायण में रामकथा का विवेचन करते हुए श्रमण परंपरा का प्रतिनिधित्व किया है। इनकी रामकथा आख्यानों का इन्द्रजाल है। इसमें अनेक लघु-वृहद् आख्यान, जिनमें वंशावलियों का तालमेल प्रस्तुत किया है, पाठकों के लिए भार-रुप भी बन सकते हैं। हेमचंद्र ने वाल्मीकि रामायण के अनुकरण पर राम के राज्याभिषेक के बाद भी कथा को कथ्य का अंग बनाया है। विषय वस्तु के प्रस्तुतिकरण का हेमचंद्र का अपना दृष्टिकोण रहा

है। वे अष्टम बलभद्र राम की कथा के माध्यम से जैन-धर्म की भावनाओं को पाठकों तक पहुँचाना चाहते हैं।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व ७ कलापक्ष का सुंदर नमूना है। संस्कृत भाषा की इस रचना का कलापक्ष शास्त्र संपादित रस व्यंजना, संक्षिप्त छंद विधान तथा विस्तृत एवं अलंकारिक वर्णन से स्वतः स्पष्ट है। हेमचंद्र की संस्कृत भाषा में उपाख्यानों एवं संवादों की भरमार है। काव्य रुप की दृष्टि से त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित सफल पौराणिक चरित काव्य पर खरा उतरता है। हाँ, संस्कृत जैसी अप्रचलित भाषा के कारण यह ग्रंथ जनमानस की लोकप्रियता से दूर रहा। वर्तमान में इसके गुजराती, हिन्दी आदि अनुवाद आने से यह जन-जन तक पहुँच रही है।

अंतिम अध्याय में जैन रामकथा की नवीन उद्‌भावनाओं की विस्तार से चर्चा की गई है। ये नवीन कल्पनाएँ जैन श्रमण परंपरा के अतिरिक्त अन्य लोगों के लिए किस प्रकार मान्य होंगी, यह प्रश्न सामने है।

लेखक के हाथ में जब तक कृति होती है तब तक वह व्यक्तिगत, सांप्रदायिक या जातीय हो सकती है। परंतु लेखक या कवि के हाथ से छूटकर जब वह जन-मन के सम्मुख आती है तो सार्वजनिक कृति का रुप धारण कर लेती है। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व ७ (जैन रामायण) आज जन-जन का ग्रंथ है और जन-जन इसे तब स्वीकारेगा जब इसकी नव कल्पनाएँ प्रमाणित हों।

तथापि कोई ठोस आधार सत्य-प्रच्छन्न भी हो सकता है। श्री कृष्ण की भांति श्री राम भी एक से अधिक हुए हों और एक ही कथा दूसरे से अथवा अनेक की कथा एक से जुड़ गई हो, जोड़ने के प्रयास में साहित्यकार ने भी नव कल्पनाएँ की हों। कल्पना साहित्य का प्राणतत्व है, प्रत्येक काव्यकार को कल्पना करने का अधिकार भी है। हाँ, मर्यादा और परंपरा की बात अलग है। अतः यह विषय नए शोधार्थियों को भी एक चुनौती दे रहा है।

वर्तमान मानव मानवता से अलग-थलग पड़ गया है। करोड़ों की जनसंख्या में इन्सानियत खोजने पर भी नजर नहीं आती। व्यक्ति शरीर चेतना युक्त होकर भी आत्मा जड़ होती जा रही है। अकर्मण्यता ने उसे दबोच लिया है। धर्म की कल्पना वह भूल-सा गया है। नास्तिकता का जामा सहज में ही मानव ने पहन लिया है। इन्सान ने ''अर्थ'' को आज का सर्वोपरि मूल्य समझ लिया है। ''चरित्र'' शब्द से आम आदमी नफरत करने लगा है। समाज परिवारों में एवं परिवार दो-दो व्यक्तियों (पति-पत्नी) में बदलता जा रहा है। ''आदर्श'' शब्दमात्र रह गया है, उसे व्यवहार में लाना कल्पना से परे की वस्तु मान ली गई है।

ऐसी परिस्थितियों में आवश्यक है राम द्वारा प्रतिस्थापित आदर्श को प्रत्येक जन के ग्रहण करने की। अगर हम स्वच्छ समाज की संरचना चाहते

हैं, देश को सांप्रदायिकता के कीचड़ से ऊपर उठाना चाहते हैं, नैतिक मूल्यों की ठोस पुर्नस्थापना चाहते हैं एवं रामराज्य की स्थापना करना चाहते हैं तो हमें सर्वप्रथम राम के चरित्र को सर्वोपरि महत्ता देकर उसके सांस्कृतिक मूल्यों को अपनाना होगा। ये आदर्श एवं सांस्कृतिक मूल्य भावी लोककल्याण के अमोघ अस्त्र होंगे। चाहे वाल्मीकि रामायण हो, दशरथ जातक हो या जैन रामायण हो, सभी में अत्याधुनिक युगीन मानव के चरित्र को ऊपर उठाने की क्षमता मौजूद है। आज रामकथा का स्थान हिन्दुस्थान में ही नहीं संपूर्ण विश्व में अत्यंत महत्वपूर्ण है। रामकथा में आदर्श गृहस्थ जीवन, आदर्श राजा, धर्म, आदर्श पारिवारिक जीवन, आदर्श पातिव्रत धर्म एवं आदर्श मातृप्रेम के साथ-साथ सर्वोच्च भक्ति ज्ञान, त्याग, वैराग्य तथा सदाचार की शिक्षा कूट-कूट कर भरी हुई है। भक्ति, ज्ञान, नीति व सदाचार का जितना प्रचार-प्रसार रामकथा से जन-जन में हुआ उतना कदाचित् विश्व के किसी अन्य महापुरुष की कथा से हुआ होगा। विभिन्न रामकथाओं में कुछ प्रसंग वैभिन्य मिलता है। कथानक में नव्योद्‌भावना की एक प्रेरणा पुनरुत्थानवादी चेतना से भी मिली है, जिसमें रामकथा को अनार्य संस्कृति पर आर्य संस्कृति की विजय के रुप में अंकित किया गया है। इस दृष्टि से रामकथा भले ही किसी भी परंपरा में हो, वह आज के लिये प्रासंगिक है।

रामकथा की महत्ता पर डॉ. फादर कामिल बुल्के ने लिखा है— ''लोकसंग्रह का भाव एक प्रकार से रामकथा का सर्वस्व है। अत्यंत विस्तृत रामकथा साहित्य में कथावस्तु का पर्याप्त मात्रा में परिवर्तन तथा परिवहन हुआ है किंतु सीता का पातिव्रत्य, राम का आज्ञापालन, भरत व लक्ष्मण का मातृप्रेम, दशरथ की सत्यसंघता, कौशल्या का वात्सल्य आदि जीते जागते आदर्शों के कल्याणकारी प्रभाव की जितनी प्रशंसा की जाए थोड़ी है। इस प्रकार रामकथा आदर्श जीवन का दर्पण है जिसे भारतीय प्रतिभाएँ शताब्दियों से परिष्कृत करती चली आ रही हैं।''

इस प्रकार पतनोन्मुख युग में मर्यादा पुरुषोतम राम का चरित्र आदर्श एवं मात्र इस पतन के बचाव का साधन है। आवश्यकता है उसे अपनाकर अपने जीवन को परजनहिताय बनाने की। हेमचंद्रकृत त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व ७ (जैन रामायण) राम के इन आदर्शों के प्रचार-प्रसार की महत्वपूर्ण सामग्री होने से स्वयं हेमचंद्र तथा यह ग्रंथ स्वतंत्र व महान व्यक्तित्व के जन्मदाता कहे जा सकते हैं। ऐसे ही ग्रंथों के अध्ययन से भावी राम जन्म लेंगे तथा वर्तमान जन-मन राम के आदर्श चरित्र को ग्रहण करेगा।

अत: हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में संस्कृत का जैन रामायण ग्रंथ असाधारण योगदान कर रहा है। इसमें कोई दो राय नहीं कि रामकथात्मक ऐसे काव्य भारतीय संस्कृति की परंपराओं को युगीन संदर्भों के स्तर पर

पुनर्व्याख्यायित ही नहीं करते, बरन् भारत की बहुमुखी विविधता की बुनियाद में स्थित अखंडता को आलोकित भी करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

हिन्दी ग्रंथ

सं.	नाम ग्रंथ	लेखक
	हिन्दी ग्रंथ	
१.	आचार्य हेमचंद्र	डॉ. मुसलगाँवकर
२.	आचार्य हेमचंद्र और उनका शब्दानुशासन	नेमिचंद शास्त्री
३.	काव्य दर्शन	फूलचन्द पान्डेय
४.	घट रामायण	संत तुलसी साहब
५.	जैन धर्म का प्राण	पं. सुखलाल
६.	जैन साहित्य का इतिहास	नाथूराम प्रेमी
७.	जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी साहित्य को देन	डॉ. हरीश शुक्ल
८.	जैनाचार्य रविणेशकृत पद्मपुराण और तुलसीकृत मानस	डॉ. रमाकांत शुक्ल
९.	तुलसी पूर्व राम साहित्य	डॉ. अमरपाल सिंह
१०.	दर्शन व चिंतन	पं. सुखलाल संघवी
११.	न्याय सिद्धांत मंजरी	जयकृष्णदास
१२.	भारतीय दर्शन की रुप-रेखा	पं. बलदेवप्रसाद मिश्र
१३.	भारतीय दर्शन की भूमिका	आ. बलदेव उपाध्याय
१४.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	पुष्करदेव शर्मा
१५.	संस्कृत के चार अध्याय	दिनकर
१६.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामनाथ शर्मा
१७.	हिन्दी साहित्यका इतिहास	डॉ. शुक्ल
१८.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. नगेन्द्र
१९.	हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास	जॉर्ज ग्रियर्सन
२०.	हिन्दी भाषा की रुचि	डॉ. रामकुमार वर्मा
२१.	हेमचंद्राचार्य का जीवन चरित	कस्तूरमल बांढिया
२२.	हेमचंद्राचार्य	ईश्वरलाल जैन
२३.	हिन्दी जैन भक्तकवि और काव्य	डॉ. प्रेमसागर जैन
	संस्कृत ग्रंथ	
२४.	अभिध्यान चिंतामणि	हेमचंद्र

२५.	कुमारपाल प्रतिबोध	मुनि जिनविजय
२६.	कुमारपाल चरित	जयसिंह सूरि
२७.	काव्यानुशासन	हेमचंद्र
२८.	काव्यप्रकाश	मम्मट
२९.	त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व ७	हेमचंद्र
३०.	पद्मपुराण	रविणेश
३१.	महापुराण	रविणेश
३२.	संक्षिप्त पद्मपुराण	जयदयाल गोयंदका
३३.	हरिवंश पुराण	जिनसेना
३४.	सिद्ध हेम शब्दानुशासन	हेमचंद्र

अंग्रेजी ग्रंथ

३५.	देशीनाममाला इन्ट्रोडक्शन	डॉ. पिशेल
३६.	हिस्ट्री ऑफ इंडिया	झलियट
३७.	हिस्ट्री ऑफ इंडिया लिट्रेचर	एस. विंरनलिज
३८.	इन्ट्रोडक्शन ऑफ देशीनाममाला	डॉ. बनर्जी
३९.	इन्डियन फिलॉसफी	डॉ. राधाकृष्णन्
४०.	लाइफ ऑफ हेमचंद्र	डॉ. वूलर
४१.	स्थविरालिचरित (इन्ट्रोडक्शन)	जे. एन. फर्क्यूहर
४२.	स्थविरावालिचरित	डॉ. जेकोबी

गुजराती

४३.	कलिकाल सर्वज्ञ ऐटले शुं	हीरालाल कापड़िया
४४.	जैन रामायण, भाग १ अने २	मुनि भद्रगुप्त विजय
४५.	जैन साहित्य नो सं. इतिहास	मो. द. देसाई (१९३३)
४६.	त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व ७, ८, ९	(गुज. अनुवाद)
४७.	त्रिषष्टिशलाकापुरुपचरित, पर्व ७	(जैन रामायण) गुणभद्रा
४८.	त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व	जैन धर्म पु. समा (भावनगर)
४९.	हेम समीक्षा	मधुसूदन मोदी
५०.	हेमचंद्राचार्य नी कृतिओं	मोतीलाल कापड़िया
५१.	जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	देसाई (१९२६)
५२.	जनसत्ता (गुजराती)	

•••

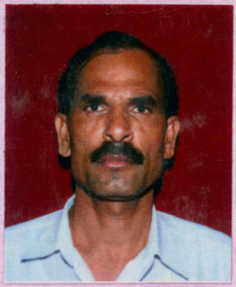

डॉ. विष्णुदास वैष्णव

जन्म	: १–७–१९५७.
शिक्षा	: बी. ए. द्वितीय श्रेणी, राजस्थान विश्वविद्यालय, १९८१. बी. एड. प्रथम श्रेणी, जोधपुर विश्वविद्यालय, १९८३. एम.ए. (हिन्दी) प्रथम श्रेणी, राजस्थान विश्वविद्यालय, १९८७. पीएच. डी., उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, १९९२.
अध्यापन	: १९७५ से अध्यापन सेवा। १९९१ से महाविद्यालयीय प्राध्यापन सेवा।
शोध	: 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित (जैन रामायण) हेमचंद्र एवं तुलसी के मानस का तुलनात्मक अध्ययन'।
प्रकाशन	: अनेक कविताएँ, निबंध एवं शोधपत्र विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित
अभिरुचि	: साहित्य, संगीत एवं नेतृत्व अध्यात्म।
सम्प्रति	: अध्यक्ष एवं प्रभारी प्राध्यापक स्नातक, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, श्री अंबाजी आर्ट्स कॉलेज, कुम्भारिया, अंबाजी (उत्तर गुज.) शोध मार्गदर्शक (एम.फिल.) उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय।
स्थायी पता	: श्री रामसदन, शोमालेश्वर मंदिर के पास, साँचोर–३४३०४१. (राज.)
सम्पर्क	: बी/८, कोटेज हॉस्पिटल कॉलोनी, अंबाजी (उत्तर गुज.)